उत्तर प्रदेश
राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

MAPS-104
लोक प्रशासन

खण्ड

1

लोक प्रशासन का विकास

इकाई 1
लोक प्रशासन का अर्थ, परिभाषा, प्रकृति एवं क्षेत्र 5

इकाई 2
लोक प्रशासन के विकास के चरण 16

इकाई 3
नवीन लोक प्रशासन 26

विशेषज्ञ समिति

प्रो. आर.के. मणि त्रिपाठी अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर	**विषय विशेषज्ञ**
प्रो. एल.डी. ठाकुर अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष राजनीतिशास्त्र विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ	**विषय विशेषज्ञ**
प्रो. एस.एम. सईद राजनीतिशास्त्र विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	**विषय विशेषज्ञ**
डॉ. मंजूलिका श्रीवास्तव रीडर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली	**दूरस्थ शिक्षा निशेषज्ञ**
प्रो. एस. के. द्विवेदी राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ	**सम्पादक**

परामर्श समिति

प्रो. केदार नाथ सिंह यादव, कुलपति	**अध्यक्ष**
डॉ. हरीश चन्द्र जायसवाल, वरिष्ठ परामर्शदाता	**कार्यक्रम संयोजक**
प्रो. के. पी. सिंह, वरिष्ठ परामर्शदाता	**सदस्य**
डॉ. अर्जुन तिवारी, वरिष्ठ परामर्शदाता	**सदस्य**
प्रो. ए.एन. द्विवेदी, वरिष्ठ परामर्शदाता	**सदस्य**
डॉ. रत्नाकर शुक्ला, कुलसचिव	**सचिव**

PGPS-05 :– लोक प्रशासन

लेखक मण्डल

खण्ड एकः **प्रो. ए .एन दूबे**, राजनीति शास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी 3 इकाई

खण्ड दोः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड तीनः **डॉ. आर.के. जायसवाल**, रीडर, राजनीति शास्त्र वि., के.एस. साकेत महावि., फैजाबाद 3 इकाई

खण्ड चारः **डॉ. मनूका खन्ना**, रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड पाँचः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

डॉ. वी.के. राय, रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, इला. विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुति अनुमन्य नहीं

दूरस्थ शिक्षा परिषद, नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के अनुमति से पुनः मुद्रित। उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित, 2024

मुद्रक : सिग्नस ईन्फार्मेशन सल्यूसन प्रा0 लि0, लोढ़ा सुप्रिमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई

IOST-036

MAPS-104/2

खण्ड - 1 का परिचय : लोक प्रशासन का विकास

लोक प्रशासन आधुनिक सभ्य राज्य का एक अनिवार्य तत्व है। लोक प्रशासन केवल सभ्य जीवन का संरक्षक ही नहीं, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक न्याय तथा सुधार-संशोधन का प्रमुख साधन भी है। वास्तव में यह आधुनिक सभ्यता का हृदय है। लोक प्रशासन 'पुलिस राज्य' की निषेधात्मक अवधारणा की दीवारों को तोड़ते हुए जनकल्याणकारी राज्य और प्रशासकीय राज्य के पड़ाव तक पहुँच चुका है। यही कारण है कि प्रो० डोनहम के इस विचार से असहमत नहीं हुआ जा सकता कि "यदि हमारी सभ्यता असफल हुई तो उसके लिए प्रशासन की असफलता ही मुख्य रूप से उत्तरदायी होगी।" आज लोक प्रशासन न केवल लोकतांत्रिक पद्धति वाले देशों का बल्कि पूँजीवादी, साम्यवादी, विकसित तथा विकासशील, सभी प्रकार के राष्ट्रों का आधार बन गया है, क्योंकि इन राष्ट्रों की सरकारें अपनी नीतियों और योजनाओं का क्रियान्वयन स्थायी प्रशासन के द्वारा ही करती हैं।

वर्तमान समय में लोग जीवन के सभी क्षेत्रों में लोक प्रशासन की सहायता के आकांक्षी हैं, क्योंकि यह सामाजिक व्यवस्था कायम रखने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। सामाजिक जीवन में अव्यवस्था, उथल-पुथल तथा नये-नये आंदोलन होते रहते हैं, सरकारें आती-जाती रहती हैं किन्तु लोक प्रशासन सामाजिक व्यवस्था में स्थिरता लाकर सामाजिक प्रगति के लिए दृढ़ आधारभूमि तैयार करता है। अतःवर्तमान समय में लोक प्रशासन का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत खण्ड की इकाई-1 में अध्ययन की एक विधा के रूप में लोक प्रशासन के अर्थ, प्रकृति तथा अध्ययन-क्षेत्र की विवेचना की गई है। लोक प्रशासन का एक विषय के रूप में विकास उतार-चढ़ाव भरा रहा है। एक विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास के विभिन्न चरणों का वर्णन इकाई-2 में किया गया है।

1960 के दशक से लोक प्रशासन को एक नवीन स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया जाने लगा और इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन के विचार का सूत्रपात हुआ। इकाई-3 से नवीन लोक प्रशासन के मूलभूत तत्वों को समझने में सहायता मिलेगी।

इकाई - 1: लोक प्रशासन का अर्थ, परिभाषा, प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 लोक प्रशासन का अर्थ

1.3 लोक प्रशासन की परिभाषा

1.4 लोक प्रशासन की प्रकृति

1.5 लोक प्रशासन का क्षेत्र

1.6 सारांश

1.7 उपयोगी पुस्तकें

1.8 संबंधित प्रश्न

1.9 प्रश्नोत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- लोक प्रशासन की परिभाषा व अर्थ की विवेचना कर सकेंगे,
- लोक प्रशासन की प्रकृति एवं क्षेत्र की व्याख्या कर सकेंगे।
- जनता की प्रशासन में भागीदारा, लाल-फीताशाही तथा भ्रष्टाचार पर विचार विमर्श कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

लोक प्रशासन मुख्य रूप से शासकीय क्रियाकलापों में प्रयुक्त तन्त्र एवं प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है। 'लोक प्रशासन' प्रशासन का वह भाग है जो एक विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करता है। वस्तुतः यह सरकार के कार्य का वह भाग है, जिसके द्वारा सरकार के उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति होती है, जैसे- उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्माण करना, योजना बनाना एवं निर्णय लेना, संगठनों का निर्माण एवं पुनर्निर्माण करना, कर्मचारियों को आदेश एवं निर्देश देना तथा उन्हें नेतृत्व प्रदान करना, जन- समर्थन प्राप्त करने के लिए विधायिका एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ कार्य करना आदि।

1.2 लोक प्रशासन का अर्थ

लोक प्रशासन 'प्रशासन' की व्यापक अवधारणा का एक बड़ा और महत्वपूर्ण भाग है। लोक प्रशासन एक संयुक्त शब्द है जो दो शब्दों 'लोक' और 'प्रशासन' से मिलकर बना है। 'लोक' का अर्थ किसी राज्य की जनता से है। राज्य की सीमा में रहने वाले पुरूष, नारी, बच्चे, वृद्ध, बीमार, पागल सभी 'लोक' में आ जाते हैं। अर्थात् 'लोक' राज्य में रहने वाले उन लोगों के समूह को कहते हैं, जिनके प्रति राज्य अपने दायित्वों को पूरा करता है और लोग भी उसके प्रति कर्तव्यों को पूरा करते हैं और सरकार के प्रति विश्वास रखते हैं। इस

प्रकार लोक प्रशासन में 'लोक' शब्द का विश्लेषण इसे सरकारी कार्यों तक सीमित कर देता है और निजी कम्पनियों के निजी प्रशासन से अलग कर देता है।

'प्रशासन' मूल रूप में संस्कृत का शब्द है, जो 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'शास्' धातु से बना है। इसका अर्थ है उत्कृष्ट रीति से शासन करना। वैदिक काल में यज्ञादि कराने वाले महर्षि लोग अपने ऋषि-शिष्यों को सामान आदि लाने के लिए आदेश देते थे, तो उसे 'प्रशास्ता' कहा जाता था, जो आगे चलकर राजाओं के लिए प्रयोग में लाया जाने लगा। अन्ततः यही शब्द 'प्रशासन' के रूप में परिणत हो गया।

'प्रशासन' के लिए अंग्रेजी में 'एडमिनिस्ट्रेशन' (Administration) शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह मूलतः 'एड' (Ad) उपसर्गपूर्वक सेवा करने का अर्थ देने वाली लैटिन की धातु 'Ministrere' से बना है। इसका मूल अभिप्राय एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति के हित की दृष्टि से उसकी सेवा का कोई कार्य करना है। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में प्रशासन शब्द की 'कार्यों के प्रबन्ध अथवा उनको पूर्ण करने की एक क्रिया' के रूप में व्याख्या की गयी है। इसी आधार पर ग्लैडन ने कहा है कि प्रशासन का अर्थ है, "..... लोगों की सेवा करना या देखभाल करना, कार्यों का प्रबन्ध करना .....।" आधुनिक विचारकों के मतानुसार प्रशासन एक सुनिश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्यों द्वारा परस्पर सहयोग से की जाने वाली एक सामूहिक क्रिया है। इससे स्पष्ट है कि प्रशासन के लिए अनेक व्यक्तियों का सहयोग, संगठन और सामाजिक हित का उद्देश्य अवश्य होना चाहिए। साइमन ने प्रशासन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है, "अपने व्यापक रूप में प्रशासन की व्याख्या उन समस्त सामूहिक क्रियाओं से की जा सकती है जो सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सहयोगात्मक रूप में प्रस्तुत की जाती हैं।"

'लोक' तथा 'प्रशासन' दोनों शब्दों के अर्थ को अलग-अलग समझ लेने के बाद 'लोक प्रशासन' के अर्थ को समझना सरल है। जैसा कि स्पष्ट है कि जब कुछ लोग निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आपस में मिलकर कार्य करते हैं, तब उसे प्रशासन कहा जाता है। यदि ये कार्य व्यक्तिगत हित के लिए नहीं बल्कि सार्वजनिक हित अर्थात राज्य में रहने वाले सभी लोगों के हित के लिए किए जाते हैं तो उसे लोक प्रशासन कहा जाता है। चूँकि किसी राज्य की सरकार की क्रियाएँ सार्वजनिक अथवा लोकहित के लिए सम्पन्न की जाती हैं, अतःसाधारण शब्दों में सरकारी कार्यों के प्रशासन को ही 'लोक प्रशासन' कहा जाता है। उदाहरण के लिए, वाणिज्य-कर-अधिकारी द्वारा करों की वसूली, पुलिस द्वारा शांति और सुव्यवस्था बनाए रखना तथा सार्वजनिक सड़कों और पुलों का निर्माण आदि लोक प्रशासन के अंतर्गत आते हैं। इन सभी कार्यों का मुख्य उद्देश्य सभी लोगों का हित कहा जा सकता है।

1.3 लोक प्रशासन की परिभाषा

लोक प्रशासन के सभी विद्वान इस संबंध में तो एकमत हैं कि लोक प्रशासन राज्य अथवा सरकार की गतिविधियों का अध्ययन है। किन्तु इन गतिविधियों में सरकार की तीनों शाखाओं- व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका- के कार्यों को शामिल किया जाए या मात्र कार्यपालिका शाखा के कार्यों को, इस सम्बन्ध में उनमें मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार प्रशासन की समस्याएं सरकार की तीनों शासाओं में पायी जाती है, अतः लोक प्रकाशन का संबध भी तीनों शाखाओं से होना चाहिए। दूसरी ओर कुछ विद्वानों ने लोक प्रशासन के अध्ययन को सरकार की कार्यपालिका शाखा तक ही सीमित रखना चाहा है। कुछ विद्वानों के मतानुसार लोक प्रशासन का संबंध केवल सार्वजनिक नीति को लागू करने तथा पूरा करने से

है। इसे इसके व्यापक या संकुचित परिप्रेक्ष्य में देखती हैं। विलोबी ने लोक प्रशासन की दो परिभाषाएँ दी हैं- एक व्यापक और दूसरी संकुचित। विलोबी के शब्दों में, "अपने व्यापक अर्थ में लोक प्रशासन उस कार्य का प्रतीक है जो सरकारी कार्यों के वास्तविक संपादन से सम्बद्ध क्यों न हो ..... अपने संकुचित अर्थ में वह केवल प्रशासकीय शाखा की कार्यवाहियों की ओर संकेत करता है।"

यदि लोक प्रशासन के संकुचित अर्थ को लिया जाए, तो स्पष्ट होता है कि यह केवल सरकार की कार्यपालिका शाखा की क्रियाओं से ही सम्बद्ध है। इस अर्थ में लोक प्रशासन को स्वीकार करने पर यह परिभाषा उचित प्रतीत होती है कि "लोक प्रशासन का सम्बन्ध लोक नीतियों को कार्यान्वित करने से है।" विलोबी, मार्क्स और साइमन ने लोक प्रशासन की इसी परिभाषा को उपयुक्त माना है। इसी तरह का विचार वुडरो विल्सन ने इन शब्दों में व्यक्त किया है- "लोक प्रशासन विधि अथवा कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप में कार्यान्वित करने का नाम है। विधि को कार्यान्वित करने की प्रत्येक क्रिया एक प्रशासकीय क्रिया है।"

किन्तु बहुत से विद्वान लोक प्रशासन के संकुचित अर्थ की परिभाषा को उपयुक्त नहीं मानते। एल0 डी0 ह्वाइट ने लोक प्रशासन की परिभाषा व्यापक अर्थ में की है। उनके अनुसार "लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।" इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि लोक प्रशासन के अंतर्गत सरकार के विभिन्न अंगों की वे सभी क्रियाएँ शामिल की जाती हैं, जो कानून, सामाजिक कल्याण आदि के क्षेत्र में सम्पन्न की जाती हैं। ह्वाइट ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा है, "लोक प्रशासन की व्यवस्था उन सभी कानूनों, नियमों, क्रियाओं, संबंधों, संहिताओं और रीति-रिवाजों का मिश्रण है, जो सार्वजनिक नीति को पूरा करने अथवा क्रियान्वित करने के लिए किसी भी समय, किसी भी सरकार के अधिकार-क्षेत्र में प्रचलित होते हैं। उसी तरह का विचार पिफनर ने भी व्यक्त किया हैं। उनके मतानुसार, "लोक प्रशासन का अर्थ है सरकार का कार्य-संपादन करना, चाहे वह कार्य स्वास्थ्यशाला में एक्स-रे मशीन के संचालन का हो अथवा टकसाल में सिक्के बनाने का .....। प्रशासन से तात्पर्य है लोगों के कार्यों में सामंजस्य उत्पन्न करना जिससे वे किसी पूर्वनिश्चित लक्ष्य के प्रयासों को जुटा सकें।" पर्सी मैकक्वीन के शब्दों में, "लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के कार्यों से है, चाहे वे केंद्र द्वारा संपादित हों अथवा स्थानीय सरकार द्वारा।" ग्लैडन ने लोक प्रशासन की परिभाषा और व्यापक दृष्टिकोण से करते हुए कहा है, "प्रशासन का संबंध संपूर्ण मानवीय संबंधों से है। इसका संबंध व्यक्ति से होता है, वस्तु से नहीं।" किन्तु इस सम्बन्ध में फेलिक्स ए0 निग्रो की व्याख्या सर्वाधिक व्यापक है, क्योंकि उसमें अन्य सभी पक्षों के अलावा लोक प्रशासन तथा राजनीतिक व सामाजिक प्रणाली के आपसी सम्बन्ध को भी शामिल किया गया है। निग्रो के अनुसार-

(1) लोक प्रशासन समाज में सहयोगी एवं सामूहिक प्रयास है।

(2) लोक प्रशासन में कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका और इन तीनों के परस्पर संबंध शामिल हैं।

(3) लोक प्रशासन की लोक नीति की रचना में प्रमुख भूमिका है और इस प्रकार यह राजनीतिक प्रक्रिया का अंग है।

(4) वर्तमान समय में लोक प्रशासन अध्ययन तथा व्यवहार के क्षेत्र में मानवीय सम्बन्ध मूलक दृष्टि से अधिक प्रभावित हुआ है।

(5) लोक प्रशासन समाज की सेवा करने के क्रम में अनेक निजी समूहों और व्यक्तियों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लोक प्रशासन सरकार का अराजनीतिक अधिकारीतन्त्र है, किन्तु यह राजनीतिक सन्दर्भ के भीतर ही कार्य करता है। यह राजनीतिक निर्णय करने वालों के नीतिगत निर्णयों के क्रियान्वयन का साधन है।

1.4 लोक प्रशासन की प्रकृति

अध्ययन की एक विधा के रूप में लोक प्रशासन एक नवीन विषय है। अतःलोक प्रशासन की प्रकृति के विषय में विद्वानों में मतभेद है कि लोक प्रशासन विज्ञान है अथवा कला या दोनों। डा0 अवस्थी तथा माहेश्वरी के शब्दों में, "लोक प्रशासन का प्रयोग दो अर्थों में किया जा सकता है। प्रथम अर्थ में लोक प्रशासन का शासकीय मामलों के संचालन की विधि अथवा प्रक्रिया के रूप में प्रयोग किया जाता है। द्वितीय अर्थ में यह बौद्धिक अन्वेषण का क्षेत्र भी माना जाता है। अपने प्रथम रूप में लोक प्रशासन एक प्रक्रिया है तथा दूसरे रूप में अध्ययन का विषय। एक प्रक्रिया के रूप में लोक प्रशासन निश्चित ही कला है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या शासकीय मामलों के अध्ययन के विषय के रूप में लोक प्रशासन को विज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है?"

1.4.1 लोक प्रशासन का विज्ञान :-

लोक प्रशासन विज्ञान है अथवा नहीं यह अत्यधिक विवादास्पद प्रश्न है। समाज विज्ञान की अन्य शाखाओं की ही भाँति लोक प्रशासन के विज्ञान के समर्थन में भी तर्क हैं और विरोध में भी। विज्ञान ज्ञान की वह शाखा है जो तथ्यों को एकत्रित करती है तथा उनके पारस्परिक कार्य-कारण सम्बन्ध को प्रदर्शित करते हुए कुछ मान्य निष्कर्षों तक पहुँचने का प्रयत्न करती है। गार्बर ने विज्ञान की परिभाषा देते हुए कहा है कि,"विज्ञान किसी विषय से संबंधित उस ज्ञान-राशि को कहते हैं, जो विधिवत् पर्यवेक्षण, अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर प्राप्त की गयी हो और जिसके तथ्य परस्पर सम्बद्ध, क्रमबद्ध और वर्गीकृत किए गए हों।" इसका तात्पर्य यह है कि विज्ञान में पर्यवेक्षण (Observation), वर्गीकरण (Classification), सारणीकरण (Tabulation), अनुसन्धान (Investigation), प्राक्कल्पना (Hypothesis), सह-सम्बन्ध (Co-relation), यथार्थता (Exactness), पूर्वानुमान (Predictability) तथा सही निष्कर्ष (Exact Conclusion) आदि बातों का होना आवश्यक है।

लोक प्रशासन को विज्ञान मानने के कारण :-

लोक प्रशासन में यद्यपि वैज्ञानिक विशेषताएँ पूर्णतया परिलक्षित नहीं होती हैं, फिर भी इसके अध्ययन में वैज्ञानिक तर्कों का प्रयोग सफलता एवं सार्थकता के साथ किया जाता है। यही कारण है कि विलोबी, लूथर गुलिक, एल0 उर्विक, चार्ल्स ए0 बेयर्ड तथा वुडरो विल्सन ने लोक प्रशासन को विज्ञान माना है। विलोबी ने कहा है, "प्रशासन में भी विज्ञान के विशिष्ट लक्षणों के अनुरूप कुछ मूलभूत सिद्धान्त हैं।" निम्नलिखित तर्कों के आधार पर लोक प्रशासन को विज्ञान माना जा सकता है-

1. **क्रमबद्ध अध्ययन** :- चूँकि क्रमबद्ध अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान को विज्ञान माना जाता है अतः लोक प्रशासन को भी विज्ञान माना जाना चाहिए। लोक प्रशासन एक ऐसा सामाजिक-शास्त्र है जिसका क्रमबद्ध ढंग से अध्ययन किया जाता है।

2. **वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग** :- विज्ञान की ही भाँति लोक प्रशासन के अध्ययन में भी वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। विज्ञान की भाँति इसमें भी तथ्यों एवं

आंकड़ों का एकत्रीकरण, वर्गीकरण, अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है; कुछ निश्चित परिणामों तक पहुँचा जाता है और अन्ततः सामान्य नियमों का निर्माण किया जाता है। इस आधार पर लोक प्रशासन एक विज्ञान है।

3. पूर्वानुमान की संभावना :- यदि परिस्थितियाँ समान हों और पूर्व में प्रशासन द्वारा उठाए गए कदमों के अच्छे परिणाम सामने आए हों तो इस आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि आगे अच्छे परिणाम आएँगे। चार्ल्स ए0 बेयर्ड इस मत के समर्थक हैं।

4. आधारभूत सिद्धान्तों का संकलन :- विज्ञान की ही भाँति लोक प्रशासन में भी कई ऐसे आधारभूत सिद्धान्त विकसित हुए हैं जो सर्वमान्य हैं। जैसे- आदेश की एकता, नियंत्रण का क्षेत्र, आंतरिक नियन्त्रण इत्यादि। टेलर एवं फेयोल के वैज्ञानिक प्रबन्ध सिद्धान्त ने लोक प्रशासन की वैज्ञानिकता को और मजबूत बनाया है।

5. शोध और नये प्रयोग :- जिस प्रकार विज्ञान में नये-नये प्रयोग और शोध किए जाते हैं, उसी प्रकार लोक प्रशासन के क्षेत्र में भी नये-नये प्रयोग किए जा रहे हैं। इस प्रकार प्रशासनिक तकनीक से संबंधित विषयों पर शोध करके नयी संभावनाओं का पता लगाया जा रहा है।

लोक प्रशासन को विज्ञान न मानने के कारण :-

ड्वाइट वाल्डो और ग्राहम वालास जैसे अनेक विचारक इस मत के समर्थक हैं कि लोक प्रशासन न तो विज्ञान है और न ही कभी बन सकता है। लोक प्रशासन को विज्ञान न मानने के निम्नलिखित कारण बताए जाते हैं-

1. निश्चितता का अभाव :- प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों में पाई जाने वाली निश्चितता के विपरीत लोक प्रशासन में निश्चितता एवं पूर्णता का अभाव है। लोक प्रशासन द्वारा प्रतिपादित नियम समय और स्थान के अनुसार बदलते रहते हैं। इसका कारण यह है कि इसका सम्बन्ध मनुष्यों से है और मनुष्यों के व्यवहार में अत्यधिक भिन्नता पाई जाती है। फलतः लोक प्रशासन में निश्चित नियम नहीं बनाए जा सकते।

2. सार्वभौमिक सिद्धान्तों का अभाव :- लोक प्रशासन में ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण नहीं किया जा सका है जिन्हें सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया हो। ह्वाइट ने कहा भी है कि लोक प्रशासन के प्रत्येक सिद्धान्त के विपक्ष में उतना ही मान्य दूसरा सिद्धान्त प्रस्तुत किया जा सकता है। स्पष्ट है कि सर्वसम्मत सिद्धान्तों के अभाव में लोक प्रशासन को विज्ञान बताना उचित नहीं है।

3. पर्यवेक्षण एवं परीक्षण का अभाव :- जिस प्रकार विज्ञान में पर्यवेक्षण तथा परीक्षण का सहारा लिया जाता है वैसा लोक प्रशासन में संभव नहीं है। लोक प्रशासन के पास ऐसे कोई प्रयोगशाला नहीं है जहाँ तथ्यों की सत्यता स्थापित करने के लिए प्रयोग किए जा सकें। लोक प्रशासन का संबंध चेतन मनुष्यों और उनके मानवीय व्यवहारों से है। इसीलिए लोक प्रशासन के विभिन्न तथ्यों को मानव समाज से पृथक करके प्रयोगशाला में उस विधि से जाँचा-परखा नहीं जा सकता, जिस विधि से रसायनशास्त्र और भौतिकशास्त्र आदि के नियमों की वैज्ञानिकता की जाँच की जा सकती है।

4. पूर्ण पूर्व-कथनीयता का अभाव :- लोक प्रशासन में कोई निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। यदि भविष्यवाणी की भी जाती है तो उसके पूर्ण सत्य होने का दावा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि लोक प्रशासन मनुष्य के आचरण एवं क्रियाओं से प्रभावित होता है

और मनुष्य के व्यवहार में पूर्ण एकरूपता नहीं पायी जाती।

5. आदर्शात्मक :- विज्ञान में नैतिक मूल्यों तथा आदर्शों का कोई स्थान नहीं होता। प्राकृतिक विज्ञान अनिवार्य रूप से तथ्यपरक होते हैं तथा उनमें दृष्टिकोण की निरपेक्षता संभव होती है। जबकि लोक प्रशासन में नैतिक मूल्यों, भावनाओं, मानवीय व्यवहारों तथा आदर्शों को स्थान प्राप्त होता है। लोक प्रशासन को विज्ञान इसीलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें आदर्शात्मकता तथा नैतिकता का पुट रहता है।

उपरोक्त तर्कों से स्पष्ट होता है कि लोक प्रशासन को विज्ञान का स्तर प्रदान नहीं किया जा सकता। किन्तु जैसा कि डा0 एम0 पी0 शर्मा ने कहा है, "इन तर्कों का ध्येय यह सिद्ध करना है कि लोक प्रशासन न तो प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति कोई यथार्थ और सुनिश्चित विज्ञान है और न भविष्य में उसके वैसा बन जाने की कोई संभावना है। यह निष्कर्ष केवल लोक प्रशासन के बारे में नहीं बल्कि सभी सामाजिक शास्त्रों के बारे में निकाला जा सकता है। फिर भी जब तक सामान्य व्यवहार में अन्य सामाजिक शास्त्रों के लिए 'विज्ञान' शब्द का प्रयोग होता है तब तक लोक प्रशासन को भी विज्ञान मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

1.4.2 लोक प्रशासन की कला :-

कला व्यवस्थित अभ्यास है। ज्ञान को यथार्थ जीवन में व्यवहृत करना कला है। ग्लैडन के अनुसार, "कला में ज्ञान की आवश्यकता होती है, किन्तु यह सिद्धान्त की अपेक्षा अभ्यास पर बल देती है। अतः कलाकार के लिए उस शास्त्र का विद्वान होने की अपेक्षा उस कार्य को करने में कुशल होना चाहिए।

लोक प्रशासन को अनेक विद्वानों ने कला माना है। प्रशासन का अभिप्राय किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए विभिन्न व्यक्तियों से काम करवाना या काम लेना है। अतः इसमें क्रिया पक्ष की प्रधानता है तथा इसमे वही व्यक्ति सफल हो सकता है जो दूसरे से कार्य करवाने का ढ़ंग जानता हो। डा0 एम0 पी0 शर्मा के शब्दों में, "प्रशासन अपने आप में निश्चय ही एक ललित कला है ..... लोक प्रशासन चिरकाल से एक कला विशेष के रूप में जाना जाता रहा है। कौटिल्य, अकबर, बिस्मार्क, सरदार पटेल जैसे प्रतिभासम्पन्न प्रशासकों ने अपने शासन कौशल से चमत्कार कर दिखाया है और प्रशंसकों ने उन्हें महानतम् कलाकारों की श्रेणी में रखा है।" प्रशासन की कला को रूचि और परिश्रम के माध्यम से सीखा जा सकता है। लूथर गुलिक के अनुसार, "एक अच्छे प्रशासक को पोस्डकार्ब (POSDCORB) तकनीकों में पारंगत होना चाहिए।"
लोक प्रशासन को निम्नलिखित तर्कों के आधार पर कला माना जा सकता है-

1. योग्यता एवं अनुभव :- किसी भी कलाकार की सफलता योग्यता एवं अनुभव पर निर्भर है। अच्छी कला का प्रदर्शन करने वाला योग्य एवं कुशल कलाकार होता है। कुशल प्रशासक भी अपनी योग्यता एवं अनुभव द्वारा सफलतापूर्वक प्रशासन का संचालन करता है।

2. प्रशिक्षण एवं अभ्यास :- किसी भी कला में कुशलता प्राप्त करने के लिए कलाकार को योग्य एवं अनुभवी विशेषज्ञों से प्रशिक्षण लेना पड़ता है और उसके अनुसार कठिन अभ्यास करना पड़ता है। प्रशासन की कला भी एक प्रकार का कौशल है। एक अच्छा प्रशासक बनने के लिए प्रशिक्षण और अभ्यास की आवश्यकता होती है।

3. चातुर्य एवं युक्ति :- एक कलाकार अपने चातुर्य तथा युक्ति के बल पर अपनी कला को आकर्षक बनाता है। उसी प्रकार लोक प्रशासन में भी एक कुशल प्रशासक अपनी बुद्धिमत्ता एवं युक्ति के बल पर सफल प्रशासक बन सकता है। यह प्रशासक की योग्यता

और क्षमता पर निर्भर करता है कि वह प्राप्त अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार करे कि आशाजनक परिणाम आ सके।

4. विकास की प्रक्रिया :- जिस प्रकार कला का विकास धीरे-धीरे होता है और संभावनाएँ बनी रहती हैं, उसी प्रकार लोक प्रशासन का विकास भी धीरे-धीरे क्रमिक रूप से हुआ है और उसमें भी विकास की संभावनाएँ बनी हुई हैं।

5. परिवर्तनशीलता :- जिस प्रकार अन्य कलाएँ और उनकी प्रक्रिया अथवा पद्धतियाँ परिवर्तनशील हैं, उनमें समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। उसी प्रकार लोक प्रशासन की प्रक्रियाएँ भी समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। अतः लोक प्रशासन एक कला है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो प्रश्न प्रत्येक सामाजिक शास्त्र के सामने आता है, कि वह विज्ञान हो सकता है या नहीं, वही प्रश्न लोक प्रशासन के समक्ष भी है। इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम विज्ञान को क्या अर्थ देते हैं। विज्ञान और कला में विरोधाभास प्रदर्शित किया जाता है और यह कहा जाता है कि विज्ञान एक व्यवस्थित ज्ञान है जबकि कला एक व्यवस्थित अभ्यास। निःसन्देह कला एक व्यवस्थित अभ्यास है, किन्तु उसे व्यवस्थित ज्ञान के द्वारा ही अनुप्राणित किया जाना चाहिए। कोई भी महत्वपूर्ण कला किसी न किसी विज्ञान अथवा विज्ञानों पर आधारित होती है, जो उसी कला के नाम से या किसी भिन्न नाम से जाने जाते हैं। जैसे संगीत कला है, वैसे ही संगीत विज्ञान भी है। ठीक इसी तरह लोक प्रशासन भी कला और विज्ञान दोनों ही है।

1.5 लोक प्रशासन का क्षेत्र

लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में भी लोक प्रशासन की परिभाषा और प्रकृति की तरह विद्वानों में मतैक्य का अभाव है। चूँकि लोक प्रशासन एक गतिशील और विकासशील विषय है इसलिए इसे विद्वानों ने अलग-अलग दृष्टिकोण से देखा और समझा है। राज्य समस्याओं से निबटने के लिए नयी-नयी तकनीकों और साधनों का प्रयोग कर रहे हैं। प्रत्येक नयी तकनीक और नये साधन राज्य का बढ़ता हुआ एक कार्य है और राज्य का बढ़ता हुआ कार्य लोक प्रशासन का बढ़ता हुआ क्षेत्र है। अतः लोक प्रशासन के क्षेत्र को किसी निश्चित सीमा रेखा में नहीं बाँधा जा सकता हैं। लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में प्रमुख दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं-

1.5.1 व्यापक दृष्टिकोण :- व्यापक दृष्टिकोण कि समर्थक विचारक यह मानते हैं कि लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत सरकार के तीनों अंगों- व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका- द्वारा किए जाने वाले समस्त कार्यों का अध्ययन किया जाता है। इसके अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में वे सभी क्रियाकलाप आते हैं जिनका प्रयोजन लोक नीति को पूरा करना या उसे लागू करना होता है। इस अर्थ में डाक-तार विभाग में पत्रों को छाँटने और बाँटने के काम से लेकर विभाग की नीति और प्रबन्ध के उच्चतम सभी कार्य प्रशासन में आ जाते हैं। विलोबी, मार्क्स, ह्वाइट, निग्रो आदि इस विचार के समर्थक हैं।

परन्तु अनेक अन्य विद्वानों के अनुसार व्यापक अर्थ में लोक प्रशासन का अध्ययन अव्यावहारिक है, क्योंकि ऐसा करने से लोक प्रशासन का क्षेत्र अस्पष्ट हो जाता है।

1.5.2 संकुचित दृष्टिकोण :- कुछ विद्वानों जैसे साइमन, लूथर गुलिक आदि ने लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में संकुचित दृष्टिकोण अपनाया है। इनके अनुसार लोक प्रशासन

का सम्बन्ध शासन की केवल कार्यपालिका शाखा से है। यह दृष्टिकोण प्रशासन में संगठन के सभी कार्यों को शामिल नहीं करता बल्कि केवल उन्हीं कार्यों को शामिल करता है जिनका सम्बन्ध प्रबन्ध की विधियों, तकनीकों तथा पद्धतियों से होता है और जो सभी संगठनों में सामान्य रूप से पाए जाते हैं। साइमन ने कहा है कि "लोक प्रशासन से अभिप्राय उन क्रियाओं से है, जो केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों की कार्यपालिका शाखाओं द्वारा सम्पादित की जाती हैं।" साइमन आदि विचारक लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि वह निष्पादक या प्रशासकीय शाखा के क्रियाकलापों के ही अनुरूप हो।

1.5.3 पोस्डकॉर्ब दृष्टिकोण :- लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र के संबंध में पोस्डकार्ब दृष्टिकोण लूथर गुलिक की देन है। लूथर गुलिक से पहले उर्विक तथा हेनरी फेयोल आदि ने भी पोस्डकॉर्ब दृष्टिकोण अपनाया था, परन्तु इन विचारों को सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय गुलिक को ही जाता है। पोस्डकार्ब शब्द अंग्रेजी के सात शब्दों के प्रथम अक्षरों को मिलाकर बनाया गया है। वे शब्द इस प्रकार हैं-

P- Planning (योजना बनाना)

O- Organising (संगठन बनाना)

S- Staffing (कर्मचारियों की व्यवस्था करना)

D- Directing (निर्देशन करना)

CO- Co-Ordinating (समन्वय करना)

R- Reporting (प्रतिवेदन देना)

B- Budgeting (बजट तैयार करना)

इन शब्दों की व्याख्या निम्न प्रकार है-

(1) योजना बनाना - बिना योजना के लक्ष्य प्राप्त करना कठिन होता है। किए जाने वाले कार्यों की रूपरेखा तैयार करना और निर्धारित लक्ष्य के लिए रीतियों एवं नीतियों का चयन इसके अन्तर्गत किया जाता है।

(2) संगठन बनाना - प्रशासकीय ढाँचे को इस प्रकार संगठित किया जाना आवश्यक है कि कार्यों का विभाजन उचित ढंग से हो सके। प्रशासकीय चार्ट, संगठन के सिद्धान्त एवं कार्यों का बँटवारा, इनके बीच सन्तुलन बनाए रखना संगठन का एक प्रमुख कार्य है।

(3) कर्मचारियों की व्यवस्था करना - कर्मचारियों के माध्यम से ही लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। कर्मचारियों की भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, पदोन्नति एवं कार्य करने की अनुकूल दशाओं का निर्माण करना इसके अन्तर्गत आता है।

(4) निर्देशन प्रदान करना - लोक प्रशासन का कार्य प्रशासन सम्बन्धी कार्यों का विश्लेषण करके निर्णय लेना और निर्णय के अनुसार कर्मचारियों को निर्देश देना है। उचित निर्देशन के अभाव में प्रशासन अपने लक्ष्य से भटक जायेगा।

(5) समन्वय स्थापित करना - प्रशासकीय कार्यों के सम्पादन में समन्वय एक आवश्यक तत्व है। कार्यों का विभाजन करके उचित कार्य उचित व्यक्ति को देना और उसमें तालमेल बैठाना या समन्वय करना एक बहुत बड़ी समस्या है। समन्वय के द्वारा कार्यों के दोहराव को भी रोका जाता है।

(6) प्रतिवेदन देना - इसका अर्थ है प्रशासकीय कार्यों की प्रगति से संबंधित सूचनाएँ उन लोगों को प्रदान करना जिनके प्रति संगठन उत्तरदायी है। प्रशासन की उपलब्धियों, कमियों तथा समस्याओं के संबंध में प्रतिवेदन देकर ही हम प्रशासन को उत्तरदायी बना सकते हैं।

(7) बजट तैयार करना - प्रशासन के लिए वित्त ही प्राण है। बिना समुचित वित्त की व्यवस्था के लोक प्रशासन शिथिल हो जाएगा। आय-व्यय का लेखा-जोखा तैयार करना, वित्तीय योजनाओं का निर्माण, करारोपण और अंकेक्षण के माध्यम से नियन्त्रण रखना इसके अन्तर्गत शामिल है।

उपर्युक्त 'पोस्डकॉर्ब' क्रियाएँ लोक प्रशासन में सभी संगठनों में पायी जाती हैं। ये प्रबन्ध सम्बन्धी सामान्य समस्याएँ हैं, जो प्रत्येक अभिकरण में पायी जाती हैं। लोक-प्रशासन के कार्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में 'पोस्डकार्ब' विचार को सामान्यतया स्वीकार किया जाता है।

आलोचना - लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में 'पोस्डकार्ब' एक संकुचित दृष्टिकोण है तथा प्रशासन के लिए कुछ महत्वपूर्ण आवश्यक बातों की उपेक्षा करता है। पोस्डकार्ब दृष्टिकोण की आलोचना दो आधारों पर जाती है। सर्वप्रथम, गुलिक का यह विचार स्वयं को तकनीकों तक सीमित कर और विषय-ज्ञान की उपेक्षा कर अपने को अधूरा बना देता है क्योंकि किसी भी अभिकरण के प्रभावपूर्ण प्रशासन के लिए विषय-वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। लेविस मेरियम ने अपनी पुस्तक 'पब्लिक सर्विस एण्ड स्पेशल ट्रेनिंग' में कहा भी है कि "यह सिद्धान्त अत्यन्त स्वेच्छाचारी काल्पनिक एवं संकुचित है, जिसमें प्रशासन के तत्वों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इस सूत्र (POSDCORB) में पाठ्य-विषय के ज्ञान के तत्व को गौण माना गया है।"

इस दृष्टिकोण पर दूसरा आक्षेप यह है कि इसमें मानवीय तत्व की उपेक्षा की गयी है। लोक प्रशासन के अन्तर्गत कार्यरत व्यक्तियों की मनोदशाओं, आदतों, चरित्र, स्वास्थ्य, उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा महत्वाकांक्षाओं आदि का प्रभाव संगठन पर पड़ता है। जबकि इस विचारधारा में मानवीय सम्बन्धों को कोई स्थान नहीं दिया गया है।

अतः लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में वही विचार अधिक उपयुक्त माना जा सकता है, जिसमें प्रशासनिक सिद्धान्त, व्यावहारिक प्रशासन और मानवीय सम्बन्ध, तीनों को उचित अनुपात में शामिल किया गया हो।

1.5.4 आधुनिक दृष्टिकोण :- लोक प्रशासन के क्षेत्र से सम्बन्धित आधुनिक दृष्टिकोण के समर्थक राज्य और लोक प्रशासन में अधिक अन्तर नहीं मानते। उनके अनुसार वर्तमान में राज्य लोक कल्याणकारी है, अतः लोक प्रशासन भी लोक कल्याणकारी है। दोनों का लक्ष्य एक ही है- जनहित। इस दृष्टिकोण के समर्थक यह मानते हैं कि, "आज लोक प्रशासन सभ्य जीवन का रक्षक मात्र नहीं है बल्कि वह सामाजिक न्याय तथा सामाजिक परिवर्तन का महान साधन भी है।" यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों में लोक प्रशासन की संकीर्णता और अधूरेपन को दूर करके इसे अधिक व्यापक तथा सामाजिक बनाने का प्रयास किया गया है।

वाकर ने प्रायोगिक लोक प्रशासन को दस मुख्य कार्यों- राजनीतिक, वैधानिक, वित्तीय, प्रतिरक्षा, शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, विदेशी, साम्राज्य सम्बन्धी तथा स्थानीय प्रशासन- पर आधारित माना है। इसी प्रकार फेयोल ने लोक प्रशासन के क्षेत्र में निम्नलिखित तत्वों को शामिल किया है- तकनीकी, व्यावसायिक, वित्तीय, सुरक्षा, लेखा और प्रशासकीय। किन्तु इन तत्वों को सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

वास्तव में **जैसे-जैसे** राज्य का कार्यक्षेत्र बढ़ता जाता है वैसे-वैसे लोक-प्रशासन का क्षेत्र भी बढ़ता जाता है। जनहित में किया गया प्रत्येक कार्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में शामिल है। सामान्य रूप से लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में निम्नलिखित विषय आते हैं- सामान्य प्रशासन, संगठन सेविवर्ग, बजट तथा वित्त, पद्धति तथा प्रक्रिया, साधन-सामग्री और पूर्ति, प्रशासकीय उत्तरदायित्व, मानवीय तत्व, उद्देश्य, नीति नियोजन, निर्णय, समन्वय, पर्यवेक्षण, नियन्त्रण, गृह-नीति,वैदेशिक नीति, सामाजिक सुरक्षा, कल्याणकारी योजनाएँ तथा उनका क्रियान्वयन आदि। फिर भी लोक प्रशासन जैसे गतिशील एवं विकासशील विषय को किसी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता है। आज इसके व्यापक दृष्टिकोण को अपनाना समय की माँग है।

1.6 सारांश

विगत अध्ययन में हमने देखा कि किस प्रकार मूल रूप से लोगों की सेवा करने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला 'ऐडमिनिस्ट्रेशन' (प्रशासन) शब्द जब राज्य द्वारा निश्चित की गई सार्वजनिक नीतियों को सम्पादित करने के उत्तरदायित्व से जुड़ जाता है तो उसे 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' (लोक प्रशासन) की संज्ञा मिल जाती है। किन्तु यह निश्चित करना कठिन है कि हम राज्य अथवा सरकार की सभी गतिविधियों को लोक प्रशासन मानें या मात्र किसी शाखा विशेष (कार्यपालिका) की गतिविधियों को। चूँकि इस सम्बन्ध में दोनों ही दृष्टिकोण प्रचलित हैं, अतः विभिन्न विद्वानों में लोक प्रशासन की परिभाषा तथा उसके विषय-क्षेत्र को लेकर मतभेद पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति लोक प्रशासन की प्रकृति के संबंध में भी विद्वान एकमत नहीं हो सके हैं। लोक प्रशासन विज्ञान है, लोक प्रशासन विज्ञान नहीं है या लोक प्रशासन एक कला है- यही मतभेद के बिन्दु हैं। यद्यपि इस समस्या का कोई निश्चित उत्तर दे पाना कठिन है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि ज्ञान की एक विधा के रूप में लोक प्रशासन विज्ञान है तथा एक व्यवस्थित क्रिया के रूप में यह कला है।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ/ उपयोगी पुस्तकें

(1) Charlsworth, J.C. (ed.) : Tehory and Practice of Public Administration: Scope, Objectives and Bethods.

(2) Gladden, E.N. : An Introduction to Public Administration.

(3) Pfiffner and Presthus : Public Administration.

(4) Tead Ordway : Administration: Its Purpose and Performance.

(5) White, L.D. : Introduction to the Study of Public Administration.

1.8 संबंधित प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

(1) 'लोक प्रशासन' शब्द से आप क्या समझते हैं?

(2) लोक प्रशासन को परिभाषित कीजिए?

(3) लोक प्रशासन को विज्ञान न मानने वाले विद्वान अपने मत के समर्थन में क्या तर्क देते हैं?

(4) लोक प्रशासन के क्षेत्र से सम्बन्धित पोस्डकार्ब दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

(1) "लोक प्रशासन लोकनीतियों के कार्यान्वयन से संबंधित है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

(2) लोक प्रशासन की प्रकृति तथा क्षेत्र की व्याख्या कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) एक स्वतन्त्र अध्ययन विषय के रूप में लोक प्रशासन का प्रारम्भ कब हुआ?

क. 1812 ई0

ख. 1887 ई0

ग. 1926 ई0

घ. 1927 ई0

(2) लोक प्रशासन को व्यापक एवं संकुचित- दोनों रूपों में किसने परिभाषित किया है?

क. एल0 डी0 ह्वाइट

ख. पिफनर

ग. विलोबी

घ. ग्लैडन

(3) हर्बर्ट साइमन ने लोक प्रशासन के क्षेत्र सम्बन्धी किस दृष्टिकोण का समर्थन किया है?

क. संकुचित

ख. व्यापक

ग. पोस्डकार्ब

घ. आधुनिक

(4) पोस्डकार्ब विचार किसकी देन है?

क. हर्बर्ट साइमन

ख. एल0 डी0 ह्वाइट

ग. एल0 उर्विक

घ. लूथर गुलिक

1.9 प्रश्नोत्तर

1. ख
2. ग
3. क
4. घ

इकाई - 2: लोक प्रशासन के विकास के चरण

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 लोक प्रशासन का विकास : प्रारम्भिक काल

2.3 लोक प्रशासन का विकास : आधुनिक काल

2.3.1 प्रथम चरण

2.3.2 द्वितीय चरण

2.3.3 तृतीय चरण

2.3.4 चतुर्थ चरण

2.3.5 पंचम चरण

2.4 भारत में लोक प्रशासन के अध्ययन का विकास

2.5 सारांश

2.6 उपयोगी पुस्तकें

2.7 संबंधित प्रश्न

2.8 प्रश्नोत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- लोक प्रशासन के विकास पर टिप्पणी कर सकेंगे,
- लोक प्रशासन के विकास को पाँच चरणों में विभाजित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

लोक प्रशासन एक क्रिया तथा अध्ययन का विषय या विधा दोनों ही है। एक क्रिया के रूप में यह उतना ही प्राचीन है जितना कि स्वयं सामाजिक जीवन। परन्तु स्वतन्त्र अध्ययन के विषय के रूप में इसका विधिवत् विवेचन एवं व्यवस्थित अध्ययन 18वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से आरम्भ हुआ। इसी कारण लोक प्रशासन के बारे में यह कहा जाता है कि यह प्राचीनतम कला तथा नवीनतम विज्ञान है।

2.2 लोक प्रशासन का विकास: प्रारम्भिक काल

लोक प्रशासन प्रबन्ध की क्रिया तथा ज्ञान की पृथक शाखा या विषया दोनों है। एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन ने आरम्भ में प्राचीन मिस्र, चीन, भारत और मेसोपोटामिया की नदी-घाटी सभ्याताओं में ही मूर्त रूप ग्रहण किया। प्रतियोगिता परीक्षाओं द्वारा भर्ती की जाने

वाली लोक सेवाओं का विकास चीन में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में ही हो गया था। प्राचीन भारत में प्रशासन की कला राजशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र का ही भाग समझी जाती थी तथा गंगा एवं सिन्धु घाटी के ग्रामों, गणराज्यों तथा राज्यतन्त्रात्मक राज्यों में हमें इस बात के प्रमाण मिल जाते हैं कि वहाँ बहुत प्राचीन काल से एक पर्याप्त सुविकसित प्रशासकीय व्यवस्था विद्यमान थी।

प्राचीन यूनान के नगर राज्यों में भी लोक प्रशासन का संगठित रूप देखने को मिलता है। रोमन शासकों ने लोक प्रशासन को वैधानिक मानदण्ड एवं स्वरूप प्रदान किए। मध्यकालीन सामन्तवाद ने यद्यपि प्रशासन के क्षेत्र में एक अराजकतापूर्ण विकेन्द्रीकरण का समावेश किया किन्तु फ्राँस, इंग्लैण्ड, प्रशा व रूस के नए उदित एवं विकसित हुए राजतन्त्रों ने उसे पुनः संगठित व समायोजित कर दिया। इस प्रकार से राजा की सत्ता के विस्तार तथा केन्द्रीकरण का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि राज्य के कर्मचारियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती चली गयी। इसके फलस्वरूप राज्य के प्रशासन कार्य को मन्त्रालयों, विभागों और उसके क्षेत्रीय क्रियाकलापों में संगठित कर लिया गया और एक ऐसी लोक सेवा की रचना हुई जिसके कर्मचारियों को पूर्णतया सिफारिश के आधार पर भर्ती किया जाता था। प्रशा संसार का सबसे पहला ऐसा देश था जिसने अपनी लोक सेवा के कर्मचारियों को योग्यता व गुणों के आधार पर भर्ती किया। इस प्रकार गठित की जाने वाली लोक सेवा की सफलता ने अन्य देशों का ध्यान भी अपनी ओर खींचा तथा आगे चलकर उन्होंने भी इसी पद्धति का अनुसरण करना आरम्भ किया।

किन्तु जहाँ तक लोक प्रशासन के अध्ययन की बात है लम्बे समय तक प्रशासन को राजनीति, कानून तथा नीतिशास्त्र के अन्तर्गत ही रखा गया। हिन्दू महाकाव्यों रामायण और महाभारत में प्रशासन के विचारों को विस्तृत रूप से राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही प्रस्तुत किया गया है। 'स्मृति' ग्रन्थों में प्रशासन की व्याख्या न्यायिक क्षेत्र के अन्तर्गत की गयी है। हिन्दुओं की राजनीतिक पुस्तकें राज्य के सैद्धान्तिक आधारों के स्थान पर प्रशासन की समस्याओं पर ही ज्यादा बहस करती हुई प्रतीत होती हैं। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में हमें अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन है। उसमें शासन के विभिन्न पदाधिकारियों के कर्तव्यों और दायित्वों का पूर्ण विवरण है तथा सरकारी अधिकारियों और लगान वसूली से जुड़े कर्मचारियों की भर्ती और प्रशिक्षण के संबंध में विस्तार से चर्चा की गयी है। इसी प्रकार चीन में भी कन्फ्यूशियस के उपदेशों में अनेक प्रशासनिक गतिविधियों के वर्णन मिलते हैं। अरस्तू की 'पालिटिक्स' के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। मैकियावेली द्वारा लिखी गई पुस्तक 'प्रिन्स' सरकार और प्रशासन की कला पर एक शोध-प्रबन्ध है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही अनेक ऐसी पुस्तकें लिखी जाती रही हैं जिनमें लोक प्रशासन का वर्णन किया गया हो। किन्तु यह भी सत्य है कि लोक प्रशासन विषय का अध्ययन लम्बे समय तक अन्य विषयों के साथ ही होता रहा और इसकी अलग से कोई पहचान स्थापित नहीं की जा सकी। संभवतः अलग एवं स्वतन्त्र विचारों की दृष्टि से इसका पर्याप्त विशिष्टीकरण नहीं हो सका था।

2.3 लोक प्रशासन का विकासः आधुनिक काल

एक क्रिया के रूप में तो लोक प्रशासन काफी प्राचीन है फिर भी एक अध्ययन विषय के रूप में इसका उदय आधुनिक काल में ही संभव हुआ है। आधुनिक काल के प्रारम्भ में भी राजनीतिशास्त्र के ग्रन्थों तथा राजनीतिज्ञों के संस्मरणों में समय-समय पर प्रशासनिक विषयों की

विवेचना की गई- परन्तु लोक प्रशासन को अध्ययन का स्वतन्त्र विषय नहीं माना गया। 17वीं शताब्दी तक तो 'लोक प्रशासन' शब्द का प्रयोग भी नहीं किया गया था। अमेरिका में 18वीं शताब्दी के अन्त में प्रकाशित विश्वकोश 'फेडरलिस्ट' के 72वें परिच्छेद में अमेरिका के पहले वित्तमंत्री अलेक्जेण्डर हैमिल्टन ने लोक प्रशासन के अर्थ और क्षेत्र को सुस्पष्ट व्याख्या किया। सन् 1812 में फ्रांसीसी चार्ल्स जीन बोनिन ने 'लोक प्रशासन के सिद्धान्त' (Principles D'Administration Publique) नामक इस विषय की पहली पुस्तक लिखी। फ्रांस में कई और रचनाएँ भी प्रकाशित हुईं जिनमें 1859 में प्रकाशित विवेयन की पुस्तक 'एडमिनिस्ट्रेटिव स्टडीज' उल्लेखनीय है। फिर भी लोक प्रशासन का जनक अमरीकी विद्वान वुडरो विल्सन को ही माना जाता है और इस विषय का जन्म 1887 ई0 में हुआ मानते हैं।

वस्तुतः सामाजिक विज्ञानों में लोक प्रशासन एकदम नया विषय है। पिछले 118 वर्षों में लोक प्रशासन ने अनेक चरणों को पार किया है, जिन्हें निम्नलिखित प्रकार से समझना सरल है-

1. प्रथम चरण : 1887- 1926 (राजनीति प्रशासन द्विभाजन)
2. द्वितीय चरण : 1927- 1937 (प्रशासन के सिद्धान्तों पर बल)
3. तृतीय चरण : 1938- 1946 (प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती)
4. चतुर्थ चरण : 1947- 1970 (अन्तर्विषयक अध्ययन पर बल)
5. पंचम चरण : 1971- वर्तमान (नवीन लोक प्रशासन एवं नवीन लोक प्रबन्ध परिप्रेक्ष्य)

2.3.1 प्रथम चरणः 1887-1926 (राजनीति-प्रशासन द्विभाजन):- यह लोक प्रशासन का आरम्भिक चरण है। इसी चरण में एक विषय के रूप में लोक प्रशासन का सन् 1887 में अमेरिका में जन्म हुआ। वुडरो विल्सन ने, जो उस समय प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापक थे, 1887 में 'पॉलिटिकल साइन्स क्वार्टरली' नामक पत्रिका में एक लेख प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था 'प्रशासन का अध्ययन' (A Study of Administration)। विल्सन के इस लेख को लोक प्रशासन के विकास के संबंध में प्रथम युग प्रवर्तक घटना माना जाता है। इस लेख की विषय-वस्तु का उद्देश्य प्रशासन को राजनीति से अलग एक स्वतन्त्र विषय के रूप में प्रतिष्ठित करना था। उनके अनुसार कानून के क्रियान्वयन से प्रशासन घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। विल्सन ने बताया कि संविधान बनाने की अपेक्षा उसको चलाने का कार्य अधिक कठिन है। पहले सरकारी कार्यों के अध्ययन में वैज्ञानिक व्यवस्था और कानून के अनुशीलन पर बल दिया जाता था, किन्तु सामाजिक-आर्थिक जीवन में जटिलताएँ बढ़ने तथा राज्य के कार्यों में वृद्धि होने से अब यह आवश्यक हो गया है कि प्रशासन के ऐसे विज्ञान का निर्माण किया जाए जो शासन के पथ को प्रशस्त करे, इसके संगठन को सुदृढ़ और विशुद्ध बनाए। यही कारण है कि प्रो0 वाल्डो ने वुडरो विल्सन को 'एक विद्या के रूप में लोक प्रशासन का जनक' माना है।

राजनीति और प्रशासन के पृथक्करण के साथ जुड़ा हुआ दूसरा नाम कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रशासनिक कानून के प्राध्यापक फ्रैंक जे0 गुडनाउ का है। गुडनाउ ने सन् 1900 में अपनी पुस्तक 'राजनीति तथा प्रशासन' लिखी। इसमें उन्होंने नीति-निर्माण तथा नीतियों के क्रियान्वयन के पृथकता के सिद्धान्त को विस्तारपूर्वक समझाने का प्रयास किया है। उनके कथनानुसार, "राजनीति राज्य की इच्छा को प्रतिपादित करती है जबकि प्रशासन नीतियों के **क्रियान्वयन से सम्बन्धित है।" अतः** नीति-निर्माण का कार्य जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिकाओं द्वारा किया जाना चाहिए और उसके क्रियान्वयन का कार्य राजनीतिक रूप से तटस्थ, योग्य एवं तकनीकी दक्षता से युक्त प्रशासनिक कार्यों में निपुण शासकीय अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए।

लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से पृथक् अध्ययन के रूप में प्रतिष्ठित करने में एल0 डी0 ह्वाइट की रचना 'इण्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इसमें राजनीति व प्रशासन के बीच विभाजन को मानते हुए तथा सरकारी प्रशासन पर विशद विचार करते हुए प्रशासन के मानवीय पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। ह्वाइट की इस पुस्तक को लोक-प्रशासन विषय पर लिखी गई प्रथम पाठ्य-पुस्तक माना जाता है।

इस प्रकार लोक प्रशासन के बढ़ते महत्व एवं क्षेत्र को देखकर अनेक अमेरिकी विश्वविद्यालयों ने इसके अध्ययन एवं अध्यापन में रूचि लेना प्रारम्भ किया और कालान्तर में लोक प्रशासन को अध्ययन के एक अलग विषय के रूप में स्वीकार किया।

2.3.2 द्वितीय चरण: 1927-1937 (प्रशासन के सिद्धान्तों पर बल):- लोक प्राशासन विषय के विकास के इस दौर की प्रधान विषयवस्तु 'लोक प्रशासन के सिद्धान्त' हैं तथा लोक प्रशासन के विद्यार्थियों का काम इन सिद्धान्तो का पता लगाना और इनके क्रियान्वयन को प्रोत्साहन देना है। इस नयी मान्यता को लेकर डब्ल्यू0 एफ0 विलोबी की पहली पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' (1927) प्रकाशित हुई। ये इस बात में पूर्ण विश्वास रखते थे कि लोक प्रशासन मे अनेक सिद्धान्त हैं और इनको कार्यान्वित करने से लोक प्रशासन में सुधार हो सकता है। इसके पश्चात् इस दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने वाली रचनाओं में मूने तथा रैले द्वारा लिखित 'प्रिंसिपल्स ऑफ आर्गेनाइजेशन' हेनरी फेयोल की 'इण्डस्ट्रियल एण्ड जनरल मैनेजमेण्ट' लूथर गुलिक तथा उर्विक की 'पेपर्स ऑन दि साइंस ऑफ ऐडमिनिस्ट्रेशन' (1937) तथा मेरी पार्कर फॉलेट द्वारा लिखित 'क्रिएटिव एक्सपीरियन्स' प्रमुख हैं।

इन विद्वानों के मतानुसार प्रशासन में सिद्धान्त होने के कारण यह एक विज्ञान है। सिद्धान्त सभी जगह कार्यान्वित होते हैं, चाहे वह क्षेत्र लोक' हो या 'निजी'। अतः प्रशासन के आगे लोक' शब्द लगाना व्यर्थ है। गुलिक ने इन सिद्धान्तों को 'पोस्डकार्ब' शब्द के द्वारा समझाया है। यह विचार किया गया था कि प्रशासन की अपनी कुछ तकनीकें होती हैं जो क्रियाकलापों के सामलों में स्वतन्त्र हैं। प्रशासन के 'वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन' को फ्रेडरिक टेलर ने 19वीं सदी के अन्त में प्रारम्भ किया था। प्रबन्ध से सम्बन्धित इस नवीन मत ने शुद्ध रूप से वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल दिया था। इसमें यह स्वीकार किया गया कि यदि राजनीतिक क्षेत्र से प्रशासन को अलग कर दिया जाए तो यह भी प्राकृतिक विज्ञान की ही तरह परिणाम देगा। इस प्रकार, राजनीति एवं प्रशासन की प्रारम्भिक द्विविभाजक विचारधारा पर माल दिया गया परन्तु इसकी अध्ययन-तकनीक कानूनी से वैज्ञानिक ढाँचे की ओर खिसक गयी। वैज्ञानिक प्रबन्ध के विभिन्न तरीकों की मदद से लोक प्रशासन के नेताओं ने प्रशासन की एक ऐसी परिभाषा खोज निकालने का प्रयास किया जो व्यापक तौर पर स्वीकार्य हो। उस अवधि के दौरान यह माना जाता था कि लोक प्रशासन का विज्ञान काफी प्रासंगिक है। इसी कारण इस चरण को लोक प्रशासन के सिद्धान्तों का 'स्वर्णकाल' कहा जाता है।

1.3.3 तृतीय चरण: 1938-1946(प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती):- लोक प्रशासन के विकास के तीसरे दौर का प्रारम्भ दूसरे चरण में प्रतिपादित यान्त्रिक दृष्टिकोण जिससे एक श्रमिक को मशीनी औजारों और उपकरणों की तरह ही समझा जाता है) के विरूद्ध हुई प्रतिक्रिया से हुआ। प्रशासन के तथाकथित सिद्धान्तों को चुनौती दी गई और इन्हें कहावतें' कहा गया। उसी समय सामाजिक शक्तियों और आवश्यकताओं के निरन्तर दबाव के कारण उद्योगों में भी वैज्ञानिक प्रबन्ध को व्यापक और मानवीय बनाने की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान एल्टन मेयो के हॉथोर्न प्रयोगों का रहा।

कार्य दलों पर केन्द्रित इन प्रयोगों ने कामगारों के उत्पादन पर सामाजिक और मनोवैज्ञानिक उपकरणों के शक्तिशाली प्रभाव का स्पष्ट प्रदर्शन करके वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन पर कठोर आघात किया। संगठनात्मक विश्लेषण के इस दृष्टिकोण ने लोगों का ध्यान औपचारिक संगठन में अनौपचारिक संगठन का प्रभाव, नेतृत्व, संगठन के वातावरण में गुटों के बीच पारस्परिक संघर्ष और सहयोग की ओर खींचा। इसने संगठनात्मक चिन्तन की मशीनी धारणा की सीमाएँ बताकर संगठनों में मानवीय सम्बन्धों के अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप को दर्शाया।

1938 में चेस्टर आई0 बर्नार्ड की कार्यपालिका के कार्य' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने संगठनात्मक विश्लेषण के लिए मनोवैज्ञानिक एवं व्यवहार पर आश्रित उपकरणों पर बल दिया। 1946 में हर्बर्ट साइमन ने अपना एक लेख 'प्रशासन का क्रिया-विशेषण' प्रकाशित किया। इस लेख में उन्होंने प्रशासन के सिद्धान्त की सत्यता पर सन्देह व्यक्त किया। एक वर्ष बाद ही उन्होंने अपनी पुस्तक 'प्रशासकीय व्यवहार' लिखी, जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया कि प्रशासन में सिद्धान्त नाम की कोई चीज नहीं है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि प्रशासन केवल यान्त्रिक ही नहीं बल्कि अनिवार्य रूप से मानवीय सम्बन्धों की एक समस्या है, इसलिए प्रशासन के अध्ययन से पहले हमें मानवीय व्यवहारों का अध्ययन करना होगा। साधारणतया इसे लोक प्रशासन का मानवीय व्यवहार सम्बन्धी स्कूल माना जाता है। इसके अनुसार प्रशासन एक गतिशील सामाजिक तत्व है, जो संस्थागत सम्बन्धों के जाल के द्वारा बाहरी समूहों और एजेंसियों से जुड़ा हुआ है। वे ही इसके वातावरण को तैयार करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

1947 में राबर्ट डहल ने भी प्रशासन के सिद्धान्तों की मान्यताओं को चुनौती दी। उन्होंने अपने पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए-

(1) विज्ञान मूल्यों से स्वतन्त्र है, किन्तु प्रशासन के साथ यह बात लागू नहीं होती।

(2) प्रशासन मानवीय व्यवहारों से संबंधित है और मानवीय स्वभाव में विभिन्नता होती है। अतः किसी ऐसे सिद्धान्त की खोज असम्भव है जिसे विभिन्न प्रशासनिक स्थितियों में प्रयोग में लाया जा सके।

(3) न सिर्फ दो राष्ट्रों के प्रशासन के सामाजिक ढाँचे में अन्तर होता है बल्कि एक ही राष्ट्र के विभिन्न स्थानों पर भी यह अन्तर दिखाई देता है। अतः सभी प्रकार की परिस्थितियों के लिए प्रशासन के मौलिक सिद्धान्तों की स्थापना असंभव ही दिखाई देती है।

2.3.4 चतुर्थ चरण: 1947-1970 (अन्तर्विषयक अध्ययन पर बल):- यह चरण लोक प्रशासन के इतिहास में संकट का काल रहा है। लोक प्रशासन जिन-जिन उपलब्धियों की बात कर रहा था वे सभी पूरी तरह से निरर्थक सिद्ध कर दी गईं। सिद्धान्तवादी विचारधारा हर्बर्ट साइमन की आलोचना के फलस्वरूप अविश्वसनीय प्रतीत होने लगी। इस शास्त्र के विज्ञान होने का दावा भी चुनौतियों व आलोचनाओं का सामना कर रहा था। अतः लोक प्रशासन का क्या स्वरूप है- यही अब सन्देह का विषय बन गया। इसी कारण कुछ विद्वानों ने इसे 'स्वरूप की संकटावस्था भी कहा है।

हर्बर्ट साइमन की रचना 'प्रशासकीय व्यवहार' (1947) लोक प्रशासन के विकास की यात्रा में मील का पत्थर है। साइमन के दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन को मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा राजनीतिकविज्ञान से जोड़कर इसके अध्ययन-क्षेत्र का विस्तार कर दिया। उसने श्रेणीगत प्रशासन सिद्धान्त तथा राजनीति-प्रशासन द्विविभाजन दोनों को प्रशासनिक चिन्तन और व्यवहार में अस्वीकार कर दिया। साइमन ने दो धारणाओं का प्रतिपादन किया। एक धारणा प्रशासन का एक विशुद्ध विज्ञान विकास करने में लग गयी, जिसके लिए मनोविज्ञान का

सहारा लिया जाना आवश्यक था और दूसरी धारणा प्रशासन के मानवीय पक्षों तथा लोक नीति के आदेशीकरण से जुड़ी रही। इसके लिए राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र का व्यापक ज्ञान आवश्यक समझा गया। इस प्रकार लोक प्रशासन में अन्तर्विषयक अध्ययन का प्रारम्भ हुआ। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि लोक प्रशासन तथा राजनीतिविज्ञान पुनः एक-दूसरे से जुड़ गए। और दोनों ही 'उत्तर-व्यवहारवादी युग' में प्रवेश कर गए।

लोक प्रशासन में इसी युग में रिग्स का प्रवेश हुआ, जिन्होंने प्रशासनिक व्यवस्था के व्यापक, व्यवस्थित तथा पर्यावरणीय ढाँचे पर आधारित क्रियाकलाप के मॉडल के द्वारा 'पारसांस्कृतिक प्रशासनिक शोध' प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त क्रिस आर्जीरिस, रेंसिस लेकार्ट तथा डगलस मैकग्रेगर ने एक 'नये मानवीय सम्बन्धों' के दृष्टिकोण को स्थापित किया।

2.3.5 पंचम चरण: 1971-वर्तमान (नवीन लोक प्रशासन एवं नवीन लोक प्रबन्ध परिप्रेक्ष्य):- लोक प्रशासन के विकास के इस चरण में प्रशासन को मुख्य रूप से किसी संगठन के भीतर के लोगों और उससे बाहर के लोगों के बीच निश्चित अवधि के भीतर होने वाली अनवरत अन्तः क्रिया की प्रक्रिया के रूप में देखा जाने लगा। इसके अतिरिक्त अब लोक प्रशासन के अध्ययन में राजनीतिक अथवा नीति-निर्धारक प्रक्रियाओं तथा विशेष लोक कार्यक्रमों के अध्ययन पर ध्यान दिया जाने लगा है। 1968 के बाद लोक प्रशासन के अध्ययन को 'नवीन लोक प्रशासन' के विकास ने समृद्ध किया है। नवीन लोक प्रशासन के उदय एवं विकास में निम्नलिखित घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं-

1. 1967 में सार्वजनिक सेवाओं सम्बन्धी उच्च शिक्षा पर हॅनी प्रतिवेदन।
2. दिसम्बर, 1967 में फिलाडेल्फिया में हुआ लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धी सम्मेलन।
3. 1968 में आयोजित मिन्नोब्रुक सम्मेलन।
4. 1971 में फ्रेंक मेरीनी के सम्पादन में प्रकाशित 'नवीन लोक प्रशासन की दिशाएँ- मिन्नोब्रुक परिप्रेक्ष्य' (Toward a New Public Administration- The Minnobrook Perspective)
5. 1971 में ड्वाइट वाल्डो द्वारा सम्पादित 'उथल-पुथल के काल में लोक प्रशासन' (Public Administration in a Time of Turbulance) का प्रकाशन।

'नवीन लोक प्रशासन' लोक प्रशासन की मूल्य युक्त व्याख्या को अस्वीकृत करता है। यह राजनीति-प्रशासन के द्विविभाजन को भी अस्वीकार करता है तथा यान्त्रिक दृष्टिकोण का विरोधी है। यह मानवीय सम्बन्धों तथा प्रशासन एवं सामाजिक परिवर्तनों के बारे में नए रचनात्मक दृष्टिकोण पर विशेष बल देता है।

इसके पश्चात् 1980-90 के दशक में लोक प्रशासन के पारम्परिक प्रतिमान की कमियों के कारण नवीन प्रबन्धकीय दृष्टिकोण का उदय हुआ, जिसे विभिन्न नाम दिए गए। जैसे- प्रबन्धवाद, नवीन लोक प्रबन्ध परिप्रेक्ष्य, बाजारोन्मुखी लोक प्रशासन आदि। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य दक्षता, मितव्ययिता तथा प्रभावशीलता (Efficiency, Economy and effectiveness) को प्राप्त करना है।

2.4 भारत में लोक प्रशासन के अध्ययन का विकास

स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व भारत में लोक प्रशासन के अध्ययन की सुविधाएँ नाम-मात्र की ही थीं। केवल दो-तीन विश्वविद्यालयों में ही लोक प्रशासन एवं स्थानीय प्रशासन में डिप्लोमा कोर्स

चलाए जाते थे। वस्तुतः लोक प्रशासन का अध्यापन राजनीति विज्ञान, इतिहास अथवा अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रमों में शामिल कर लिया जाता था। प्रशासन पर इस काल में जो भी पुस्तकें लिखी गयीं वे अधिकतर लोक सेवा के अधिकारियों ने ही लिखीं, जैसे-ओस मैले की 'इण्डियन सिविल सर्विस' तथा डी० एन० बनर्जी की 'अर्ली ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ दी ईस्ट इण्डिया कम्पनी इन बंगाल' आदि।

भारत में लोक प्रशासन को स्वतन्त्र विषय बनाकर अध्ययन करने का प्रयास 1941 ई० में प्रारम्भ किया गया, जब संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उ० प्र०) सरकार की पहल पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने स्थानीय सरकार के प्रशासन के विषय में एक स्नातकोत्तर डिप्लोमा का पाठ्यक्रम बनाने का निश्चय किया। इसका उद्देश्य उच्च श्रेणी के स्थानीय शासन अधिकारियों को प्रशिक्षित करना था। इस दिशा में लोक प्रशासन के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० महादेव प्रसाद शर्मा का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने ही सबसे पहले स्थनीय सरकार कि प्रशासन का पाठ्यक्रम तैयार किया। पुनः 1950 ई० में नागपुर विश्वविद्यालय ने भी अपने यहाँ स्थानीय शासन-डिप्लोमा पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए डॉ० महादेव प्रसाद शर्मा को ही आमंत्रित किया। उनकी सलाह से ही 1950 ई० में नागपुर विश्वविद्यालय में एक स्वतन्त्र 'लोक प्रशासन तथा स्थानीय स्वशासन विभाग' की स्थापना की गई, जिसमें एम० ए० की डिग्री देने की व्यवस्था की गई। तत्कालीन भारत में अन्यत्र कहीं भी यह व्यवस्था नहीं थी। इस प्रकार, स्वतन्त्र विधा के रूप में भारत में लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास की दिशा में यह सबसे महत्वपूर्ण कदम माना जाता है और लोक प्रशासन के विकास में डा० शर्मा का वही स्थान स्वीकार किया जाता है जो अमेरिका में वुडरो विल्सन का है।

भारत में लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास की दूसरी कड़ी 1954 ई० से शुरू होती है, जब एक स्वायत्तशासी संस्था के रूप में 'भारतीय लोक प्रशासन संस्थान' (Indian Institute of Public Administration) की स्थापना की गई। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य प्रशासन-संबंधी विषयों पर अनुसंधान करना तथा उनके संबंध में सूचना एकत्र करना एवं प्रसारण की व्यवस्था करना था। इस संस्थान के अंतर्गत ही 1955 ई० में Indian school of Public Administration की स्थापना की गई, जिसमें दो तरह के पाठ्यक्रम लागू किए गए- कनिष्ठ (Junior) एवं वरिष्ठ (Senior)। कनिष्ठ पाठ्यक्रम की अवधि एक वर्ष निश्चित की गई, जिसमें राजनीति विज्ञान, लोक प्रशासन और समाजशास्त्र की पढ़ाई की गई। वरिष्ठ पाठ्यक्रम इसके बाद लागू होता था, जिसमें प्रशासन की संगठन एवं प्रणाली जैसी तकनीकी शाखाओं के विशेष अध्ययन का प्रबंध किया गया था। 1967 ई० में इस स्कूल को बन्द कर दिया गया, किन्तु भारतीय लोक प्रशासन संस्थान अभी भी कार्य कर रहा है। इसकी देखरेख में अनेक शोध-कार्य तथा पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य भी किया जा रहा है। संस्थान का मुख-पत्र 'इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' देश में लोक प्रशासन में रूचि रखने वाले व्यक्तियों के बीच विचार-विमर्श तथा वैचारिक आदान-प्रदान का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गया है। इस प्रकार, लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास हेतु वर्तमान में सबसे अधिक कारगर कदम इस संस्थान द्वारा ही उठाए जा रहे हैं।

आज सम्पूर्ण भारत में 30-35 विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन में स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती है तथा कुछ विश्वविद्यालयों में एम० फिल० पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ किए जा सके हैं। ऐसे विश्वविद्यालयों में ककातिया विश्वविद्यालय, वारंगल; नागार्जुन विश्वविद्यालय, नागार्जुन न ए श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरूपति; हिमाचल पदेश विश्वविद्यालय, शिमला; कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र तथा मगध विश्वविद्यालय, बोधगया के नाम प्रमुख हैं। वस्तुतः भारतीय विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन तुलनात्मक रूप से एक नया शैक्षणिक विषय है, किन्तु इसके

भावी विकास के लक्षण और संभावनाएँ अन्य सामाजिक विज्ञानों की तुलना में अधिक हैं। 1987 ई० में लोक प्रशासन विषय को संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सिविल सेवा प्रतियोगिता परीक्षा में वैकल्पिक विषयों की सूची में शामिल किए जाने से इसकी लोकप्रियता में वृद्धि हुई। इसके पश्चात् अनेक राज्यों के लोक सेवा आयोगों ने भी राज्य स्तरीय प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए लोक प्रशासन को वैकल्पिक विषयों की सूची में शामिल कर लिया है, जिससे इसका महत्व बढ़ता जा रहा है।

स्पष्ट है कि लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास पर भारत में भी पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। इस संबंध में डॉ० एम० पी० शर्मा ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि "भारत में प्रशासन-विषयक अध्ययन का भविष्य बहुत उज्जवल एवं आशापूर्ण है। इस दिशा में बहुत कार्य हो चुका है। आशा है भविष्य में भी समय के साथ प्रगति के चरण और तीव्र होते जाएँगे। भारत जिस प्रकार के लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करना चाहता है, उसमें प्रशासन का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है और उसकी उपेक्षा से देश की क्षमता और हितों को निश्चय ही गंभीर हानि पहुँच सकती है।"

2.5 सारांश

मानव के सामाजिक जीवन की आज तक की विभिन्न उपलब्धियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि 'राज्य' का गठन है। राज्य के साथ-साथ एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन का भी प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु एक स्वतन्त्र अध्ययन विषय के रूप में लोक प्रशासन बहुत पुराना नहीं है और अभी भी परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। एक अध्ययन विषय के रूप में लोक प्रशासन विकास की विभिन्न अवस्थाओं से होता हुआ वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। राजनीतिविज्ञान से लोक प्रशासन का पृथक्करण ही लोक प्रशासन के विकास की पहली अवस्था थी। इसके पश्चात् प्रशासन के कुछ सिद्धान्तों का निर्माण किया गया, किन्तु शीघ्र ही अनेक विद्वानों ने इन सिद्धान्तों पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। यह लोक प्रशासन के लिए संकट की अवस्था थी। लोक प्रशासन को इस अवस्था से बाहर निकालने के लिए अन्तर-अनुशासनात्मक अध्ययन पर बल दिया गया। इसके साथ ही साथ विद्वानों ने लोक प्रशासन का सामाजिक परिवर्तनों के साथ तादात्म्य बनाए रखने के लिए मूल्य-सम्बद्धता तथा मानवीय दृष्टिकोण को आवश्यक माना और इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन तथा प्रबन्धवाद का विकास हुआ।

भारत में भी स्वतन्त्रता के बाद से ही लोक प्रशासन को एक स्वतन्त्र अध्ययन विषय के रूप में विकसित करने के प्रयास गंभीरता से किए गए हैं और वर्तमान समय में देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन-अध्यापन किया जा रहा है।

2.6 उपयोगी पुस्तकें

(1) Albert Lepawsky : Administration

(2) Robert T. Golembiewski : Public Administration as a Developing Discipline

(3) Sharma, M.P. : Public Administration- Theory and Practice

(4) Simon, Herbert A. : Administrative Behaviour

2.7 संबंधित प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

(1) अभी तक के लोक प्रशासन के विकास को कितने चरणों में बाँटा जाता है?

(2) लोक प्रशासन के सिद्धान्तों के 'स्वर्णकाल' के रूप में किस चरण को मान्यता प्रदान की गई है?

(3) 1947-70के काल को लोक प्रशासन की संकटावस्था क्यों कहा जाता है?

(4) भारत में लोक प्रशासन के विकास में 'भारतीय लोक प्रशासन संस्थान' की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

(1) अध्ययन की एक स्वतन्त्र विधा के रूप में लोक प्रशासन के विकास की व्याख्या कीजिए।

(2) भारत में लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास की व्याख्या कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) लोक प्रशासन का जनक किसे माना जाता है?

क. चार्ल्स जीन बोनिन

ख. वुडरो विल्सन

ग. एल0 डी0 ह्वाइट

घ. एल0 उर्विक

(2) लोक प्रशासन के विकास के तृतीय चरण की मुख्य विशेषता क्या थी?

क. राजनीति-प्रशासन द्विभाजन

ख. प्रशासन के सिद्धान्तों पर बल

ग. अन्तर्विषयक अध्ययन पर बल

घ. प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती

(3) वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन के जनक कौन थे?

क. फ्रेडकि टेलर

ख. एल्टन मेयो

ग. हर्बर्ट साइमन

घ. लूथर गुलिक

(4) 'क्रिएटिव एक्सपीरिएन्स' की रचना किसने की है?

क. मूने तथा रैले

ख. हेनरी फेयोल

ग. एल0 उर्विक

घ. मेरी पार्कर फॉलेट

2.6 प्रश्नोत्तर

1. ख
2. घ
3. क
4. घ

इकाई - 3 : नवीन लोक प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 नवीन लोक प्रशासन के उद्भव के कारण

3.3 नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य

3.4 नवीन लोक प्रशासन का विकास

3.5 नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ

3.6 नवीन लोक प्रशासनः संभावनाएँ

3.7 मूल्यांकन

3.8 सारांश

3.9 उपयोगी पुस्तकें

3.10 संबंधित प्रश्न

3.11 प्रश्नोत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- नवीन लोक प्रशासन के उदय पर टिप्पणी कर सकेंगे,
- नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य एवं विशेषताओं की विवेचना कर सकेंगे,
- इसके विकास का भी विवरण कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

लोक प्रशासन को अपने प्रारम्भिक समय में जिन अनेक संकटों एवं चुनौतियों के दौर से गुजरना पड़ा, उसे पिछली इकाई में स्पष्ट किया जा चुका है। आज लोक प्रशासन अनेक बाधाओं, संकटों और उतार-चढ़ाव को पार करता हुआ ऐसे मुकाम पर पहुँच चुका है, जहाँ इसे 'नवीन लोक प्रशासन' के नाम से पुकारा जाने लगा है। पुराने लोक प्रशासन ने नवीन लोक प्रशासन का रूप कब धारण कर लिया, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहना मुश्किल है। वैसे 1941-42 के आसपास का समय नये और पुराने लोवप्रशासन के बीच का संक्रमण काल था। 1968 के पश्चात् लोक प्रशासन के क्षेत्र में नवीन विचारों का सूत्रपात हुआ और इन विचारों को नवीन लोक प्रशासन की संज्ञा दी गई ।

3.2 नवीन लोक प्रशासन के उद्भव के कारण

1960 के दशक के अन्त में अमरीकी समाज विघटन के दौर से गुजर रहा था। परम्परागत लोक प्रशासन अमरीकी समाज के इस संकट को समझने में असफल रहा। सामाजिक-आर्थिक

संकटों से उत्पन्न नई माँगों और चुनौतियों का सामना करने में यह अपने आपको असमर्थ पा रहा था। परमाणु शस्त्रों से उत्पन्न आतंक, गृहयुद्ध, सामाजिक विभेद, जो विश्व की नैतिक अन्तरात्मा पर प्रहार कर रहा था, ने अमरीकी बुद्धिजीवियों को हिला कर रख दिया। इन परिस्थितियों ने अमरीका के युवा बुद्धिजीवियों को तो और भी बेचैन कर दिया, क्योंकि एक ओर न तो शासन के सुस्थापित केन्द्र कुछ कर पा रहे थे और न मान्यता प्राप्त शिक्षा के केन्द्रों में कोई हलचल दिखाई दे रही थी। अतः सामाजिक विज्ञान के अन्य विषयों की तरह लोक प्रशासन जैसा विषय भी सामाजिक उथल-पुथल के इस दौर में स्थिर न रह सका। समाज के समक्ष खड़ी इन चुनौतियों का उत्तर नए विचारों और नए नारों में ढूँढना आवश्यक हो गया। ऐसा ही एक नया नारा, नया आन्दोलन 'नवीन लोक प्रशासन' के रूप में सामने आया।

वस्तुतः नवीन लोक प्रशासन आन्दोलन लोक प्रशासन के युवा विद्वानों का आन्दोलन है। यह आन्दोलन 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ हुआ और लगभग एक दशक तक सामाजिक जागरण का उत्प्रेरक बना रहा।

1.3 नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य

नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य इस प्रकार हैं-

1. **प्रासंगिकता-** 1960 के दशक में समाज विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं से जूझ रहा था। इन परिस्थितियों में कार्यकुशलता और मितव्ययिता के लोक प्रशासन के पारम्परिक सिद्धान्त अपर्याप्त लगने लगे। यह कहा गया कि इस विषय के पास समकालीन समाज की समस्याओं से जूझने की क्षमता नहीं रही थी। अतः परिस्थितियों के अनुसार यह विषय अप्रासंगिक लगने लगा था।

इसीलिए नवीन लोक प्रशासन ने 'प्रासंगिकता' के रूप में अपना नया लक्ष्य निश्चित किया। इसका तात्पर्य है कि लोक प्रशासन का ज्ञान एवं शोध समाज की आवश्यकता के सन्दर्भ में प्रासंगिक तथा संगतिपूर्ण होना चाहिए। ड्वाइट वाल्डो ने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि लोक प्रशासन उन मामलों से अछूता नहीं रह सकता जिनका सामना समाज को करना है। इसमें ऐसे परिवर्तन करने होंगे, जिससे यह समाज के नजदीक आ सके।

2. **मूल्य-** नवीन लोक प्रशासन स्पष्ट रूप से आदर्शात्मक है। यह परम्परागत लोक प्रशासन के मूल्यों को छिपाने के व्यवहार तथा प्रक्रियात्मक तटस्थता को अस्वीकार करता है मानववाद, विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन, व्यक्तिगत वृद्धि तथा वैयक्तिक गरिमा आदि करता है। वह नागरिक सहभागिता और अधिकारीतन्त्र पर नियन्त्रण का समर्थन करता है। चूंकि लोक प्रशासन के कार्यों का विस्तार हो रहा है, अतः यह आवश्यक है कि सार्वजनिक पदाधिकारियों के क्रियाकलापों में नैतिकता के प्रति चेतना लाई जाए। नैतिक मूल्यों के प्रति फिर से जोर देने के कारण अनेक महत्वपूर्ण परिणम सामने आए हैं, जिनका लोक प्रशासन के अध्ययन पर प्रत्यक्ष एवं महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। इससे लोक प्रशासन में उत्तरदायित्व और नियंत्रण की भावना के प्रति फिर से रूचि बढ़ाने में मदद मिली है।

3. **सामाजिक समानता-** परम्परागत लोक प्रशासन यथास्थितिवादी स्वरूप का था, जबकि नवीन लोक प्रशासन सामाजिक समता के सिद्धान्त पर बल देता है। अब यह माना जाता है कि लोक प्रशासन को समाज के दलित एवं वंचित वर्ग के लोगों की आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पीड़ा को समझना चाहिए तथा उन्हें उनका हक दिलाने के लिए उचित कदम उठाने चाहिए। अर्थात् नवीन लोक प्रशासन को सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का उत्प्रेरक होना

चाहिए। फ्रैंक मोरिनी ने कहा है कि "लोक संगठनों का उद्देश्य लोगों की आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं में कमी लाकर उनके लिए जीवन अवसरों की वृद्धि होना चाहिए।"

4. परिवर्तन- सामाजिक समानता के लिए सामाजिक परिवर्तन आवश्यक है। समाज का वर्तमान ढाँचा तथा संस्थाएँ निहित स्वार्थों के कारण अपने विशेषाधिकार के त्याग के लिए तैयार नहीं होते। बल्कि वे अपनी मजबूत स्थिति को बनाए रखना चाहेंगे तथा उनकी यह भी इच्छा रहेगी कि विकास का फल गरीबों को न मिले। जब तक लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक समानता के लिए कार्य नहीं करेगा तब तक विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की पकड़ से छुटकारा मिल पाना असंभव ही प्रतीत होता है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन के लिए एक मजबूत अभिमुखता ही नवीन लोक प्रशासन का अनिवार्य लक्ष्य है।

3.4 नवीन लोक प्रशासन का विकास

1968 ई0 के बाद लोक प्रशासन के अध्ययन-क्षेत्र में नए विचारों का सूत्रपात हुआ और इन विचारों को 'नवीन लोक प्रशासन' की संज्ञा दी गयी। 1967 में सार्वजनिक सेवाओं सम्बन्धी उच्च शिक्षा पर 'हनी रिपोर्ट' के प्रकाशन के साथ ही 'नए लोक प्रशासन' को मान्यता प्राप्त हुई। नवीन लोक प्रशासन को आगे बढ़ाने में 'लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार संबंधी सम्मेलन' (1967), 'मिन्नोब्रुक सम्मेलन' (1968) की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही। नवीन लोक प्रशासन को उद्घाटित करने में फ्रेंक मेरीनी की पुस्तक 'टुवार्ड ए न्यू पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशनः मिन्नोब्रुक पर्सपेक्टिव' (1971) तथा ड्वाइट वाल्डो की रचना 'पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ए टाइम ऑफ टरबुलेशन्स' (1971) का प्रशंसनीय योगदान रहा है। फ्रेंक मेरीनी, जार्ज फ्रेडरिक्शन, जोसेफ उवाजेस, चार्ल्स लिण्डब्लोम तथा विन्सेन्ट ओस्ट्रोम इस विचारधारा के अग्रणी लेखक हैं।

1. हनी रिपोर्ट

1966 में लोक प्रशासन की अमरीकी सोसायटी ने सिराक्यूज विश्वविद्यालय के श्री जॉन सी0 हॅनी से आग्रह किया कि वह 'अमरीका के विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन के अध्ययन का मूल्यांकन' विषय पर अध्ययन करें। अध्ययन के उपरान्त 1967 में हनी ने अपना प्रतिवेदन दिया। इस प्रतिवेदन की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें लोक प्रशासन की वास्तविक स्थिति को उजागर किया गया। प्रतिवेदन में लोक प्रशासन के क्षेत्र को व्यापक बनाने पर बल दिया गया और सम्पूर्ण शासकीय प्रक्रिया-कार्यकारी, विधायी और न्यायिक- को इस विषय के अध्ययन में शामिल करने की सिफारिश की गई। इस प्रतिवेदन में चार समस्याओं की पहचान की गयी थी-

1. साधनों की अपर्याप्तता।
2. विषय की स्थिति पर बौद्धिक तर्क अर्थात् लोक प्रशासन एक विषय।
3. संस्थागत कमजोरी अर्थात् अपर्याप्त लोक प्रशासन विभाग।
4. लोक प्रशासन के विद्वानों एवं सेवारत प्रशासकों में अंतराल।

इन समस्याओं के निराकरण हेतु प्रतिवेदन में निम्नलिखित सुझाव दिए गए थे-

(1) प्रतिवेदन में लोक सेवा शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय आयोग की स्थापना पर बल दिया गया। शासन के लिए आवश्यक शिक्षित मानव-शक्ति उपलब्ध कराना इस आयोग का दायित्व

निश्चित किया गया।

(2) स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों की व्यापक व्यवस्था होनी चाहिए। ये छात्रवृत्तियाँ उन छात्रों को दी जानी चाहिए जो लोक सेवा को जीविका के रूप में अपनाने के लिए तैयार हों।

(3) लोक सेवा को जीविकोपार्जन के रूप में अपनाने वाले छात्रों के लिए संघीय, राज्य एवं स्थानीय शासन के स्तरों पर प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए।

(4) विश्वविद्यालयों में सार्वजनिक मामलों के शिक्षण-कार्य में संलग्न अध्यापकों को शासन-कार्य का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के अवसर दिए जाने चाहिए।

(5) शासकीय एवं सार्वजनिक मामलों संबंधी शोधकार्य में संलग्न व्यक्तियों को आर्थिक एवं अन्य सहायता दी जानी चाहिए।

(6) नवीन लोक प्रशासन के लिए नवीन परामर्शदात्री सेवा प्रारम्भ की जानी चाहिए।

(7) लोक सेवा सम्बन्धी प्रशिक्षण एवं शिक्षा की दृष्टि से विश्वविद्यालयों की समीक्षा की जानी चाहिए, जिससे यह पता चल सके कि विभिन्न संस्थाएँ किस प्रकार सेवा, शिक्षा एवं अन्य दायित्वों की व्यवस्था करती है और किस प्रकार नवीन विकास किया जा सकता है तथा कौन-कौन सी कमियाँ हैं।

अमेरिका में हनी रिपोर्ट पर मिश्रित प्रतिक्रिया हुई, क्योंकि प्रतिवेदन मे यद्यपि महत्वपूर्ण मुद्दे उठाए गए थे किन्तु जो मुद्दे नहीं उठाए गए थे वे उनसे भी अधिक महत्वपूर्ण थे, जैसे- इस प्रतिवेदन में लोक प्रशासन की भूमिका, विशेषकर विभाजित एवं उथल-पुथल से युक्त समाज में, के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया था। अतः इस प्रतिवेदन ने अनेक विद्वानों को समाज में लोक प्रशासन की भूमिका के सम्बन्ध में गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए प्रेरित किया।

2. लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार संबंधी सम्मेलन (1967)

लोक प्रशासन में शीघ्र विकास और संश्लेषण की आवश्यकता को अनुभव करते हुए अमेरिकी राजनीतिशास्त्र एवं समाजशास्त्र परिषद ने दिसम्बर 1967 में एक सम्मेलन आयोजित किया। इसमें विचारणीय विषय था–'लोक प्रशासन का सिद्धान्त एवं व्यवहार–उसका कार्यक्षेत्र उद्देश्य एवं अध्ययन-पद्धति'। इसे 'फिलाडेल्फिया सम्मेलन' भी कहा जाता है। जेम्स सी० चार्ल्सवर्थ ने सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। उन्होंने कहा कि "इस सभा में भाग लेने वालों द्वारा इस भावना की अभिव्यक्ति हुई है कि लोक प्रशासन के सम्बन्ध में दृढ़ एवं संक्षिप्त उपागम को अपनाना चाहिए और उन्होंने व्यापक–दार्शनिक सन्दर्भ में लोक प्रशासन के महत्व का आकलन करने पर बल दिया। इस पर भी विचार किया गया कि क्या लोक प्रशासन केवल मानसिक सिद्धि है या शासन का व्यावहारिक यन्त्र है।"

इस सम्मेलन में विद्वानों ने उपरोक्त मुद्दों के सन्दर्भ में विभिन्न मत व्यक्त किए थे। कुछ ने उसे विशुद्ध बौद्धिक चिन्तन का विषय माना तो दूसरों ने उसे केवल एक कार्य या व्यवसाय माना। कुछ लोगों ने लोक प्रशासन की सार्वजनिक हित में व्याख्या की। अन्य लोगों ने उसका सम्बन्ध केवल प्रशासन से माना। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्वानों में निम्नलिखित बिन्दुओं पर आम सहमति थी–

(1) लोक प्रशासन को परिभाषित करना कठिन है।

(2) लोक प्रशासन नीतियों के निर्माण में संलग्न है। अतः नीति-निर्माण एवं लोक प्रशासन

का विभाजन गलत है।

(3) लोक प्रशासन एवं व्यवसाय प्रशासन का प्रशिक्षण अलग-अलग ढंग से होना चाहिए।

(4) लोक प्रशासन को राजनीतिविज्ञान से पृथक् अनुशासन माना जाना चाहिए।

(5) एक विषय या अनुशासन के रूप में अमरीकी लोक प्रशासन का सम्बन्ध केवल अमरीका में ही लोक प्रशासन से होना चाहिए।

(6) नौकरशाही सम्बन्धी अध्ययन प्रकार्यात्मक एवं संरचनात्मक दोनों ही तरह से किया जाना चाहिए।

(7) लोक प्रशासन के आदर्शात्मक प्रशासन सिद्धान्त एवं वर्णनात्मक या विश्लेषणात्मक सिद्धान्त सभी अव्यवस्था की स्थिति में है।

(8) संगठनात्मक सत्ता-संबंधी पिरामिड के आकार या पदसोपान की धारणा अब उचित नहीं है। प्रशासकों को काम करने वाले व्यक्तियों को सहयोगी मानना चाहिए, न कि केवल अपना अधीनस्थ।

(9) भावी प्रशासकों को व्यावसायिक विद्यालयों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। लोक प्रशासन के पाठ्यक्रम में केवल प्रशासकीय संगठन एवं पद्धति पर ही बल नहीं दिया जाना चाहिए बल्कि मनोवैज्ञानिक, वित्तीय तथा समाजशास्त्रीय पहलुओं को भी लोक प्रशासन के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।

(10) समाज से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं जैसे- सैनिक, औद्योगिक प्रतिष्ठानों, दंगों, श्रम-संघों, हड़तालों आदि का लोक प्रशासन कोई उत्तर नहीं दे सका है।

(11) लोक प्रशासन एक अनुशासनिक विषय तो है, परन्तु इसके अध्ययन के लिए समकालीन समाजविज्ञानों द्वारा प्रतिपादित सभी अध्ययन-पद्धतियों का उपयोग नहीं किया जा सकता। लोक प्रशासन का कुछ भाग तो ऐसा है जिसके सम्बन्ध में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग संभत है, लेकिन अन्य भाग के सन्दर्भ में वैज्ञानिक अध्ययन-पद्धति का उपयोग संभव नहीं है।

3. मिन्नोब्रुक सम्मेलन (1968)

मिन्नोब्रुक सम्मेलन लोक प्रशासन की युवा पीढ़ी का सम्मेलन था। इस सम्मेलन में इस बात पर विचार किया गया कि परिवर्तनशील समाज में लोक प्रशासन की क्या भूमिका होनी चाहिए।

मिन्नोब्रुक सम्मेलन बुलाए जाने के पीछे दो प्रमुख कारण उत्तरदायी थे-

1. 1960 का दशक उथल-पुथल का काल था और नवीन लोक प्रशासन के समर्थक ऐसे समय में लोक प्रशासन की प्रचलित अवस्था से संतुष्ट नहीं थे। वे उथल-पुथल के काल में लोक प्रशासन से यह अपेक्षा करते थे कि वह सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक हो।
2. अब लोक प्रशासन के युवा पीढ़ी के विद्वानों की बात सुनना भी आवश्यक हो गया था, क्योंकि इस समय तक पुराने एवं युवा विद्वानों में पीढ़ी का अन्तराल साफ दिखाई देने लगा था।

सम्मेलन की बहसों को मैथ्यू क्रेनसन ने तैयार किया, जिसमें निम्नलिखित बातों में आम सहमति पायी गयी-

(1) विद्वानों में यह आम सहमति थी कि लोक प्रशासन वैचारिक सर्वसम्मति पर विशेष बल दे;

(2) लोक प्रशासन को परिवर्तन का वाहक बनना है, और

(3) उन्हें वातावरण के प्रति जिम्मेदार होना चाहिए।

इस सम्मेलन में विषय की वर्तमान स्थिति पर असन्तोष व्यक्त किया गया। इसमें यह इच्छा व्यक्त की गयी कि लोक प्रशासन समाज की समस्याओं के प्रति उन्मुख हो तथा प्रासंगिकता, उत्तर-आशावादिता, आचरण, नैतिकता व मूल्यों, ग्राहकों के प्रति चिन्ता, सामाजिक समानता तथा नवीन प्रयोग हेतु एक मापदण्ड का पालन करे। उत्तर-आशावादी दृष्टिकोण का अर्थ स्वतन्त्र मूल्यों का दृष्टिकोण है, लेकिन यह सामाजिक समानता पर आधरित दृष्टिकोण की स्वीकारोक्ति पर बल देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि लोक प्रशासन को दलितों, पीड़ितों और वंचितों का हिमायती बनना पड़ेगा। संक्षेप में मिन्ब्रुक सम्मेलन को यह गौरव प्राप्त है कि उसके द्वारा लोक प्रशासन को व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत किया गया तथा उसकी वर्तमान शोचनीय स्थिति पर सरल एवं स्पष्ट शब्दों में प्रकाश डाला गया। इस सम्मेलन द्वारा ही लोक प्रशासन को नवीन छवि प्रदान की गई। लोक प्रशासन ने इस सम्मेलन के बाद ही सुधारवादी प्रवृत्ति को अंगीकार किया है।

4. मेरीनी एवं वाल्डो की रचनाएँ

मेरीनी एवं वाल्डो द्वारा सम्पादित प्रमुख रचनाओं द्वारा मिन्ब्रुक सम्मेलन के विचारों का व्यापक प्रसार हुआ है। नवीन लोक प्रशासन पर मेरीनी की पुस्तक का नाम है- 'टुवार्ड ए न्यू पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशनः मिन्ब्रुक पर्सपेक्टिव'। नवीन लोक प्रशासन पर लिखी यह प्रथम पुस्तक है। वाल्डो ने 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए टाइम ऑफ टरबुलेन्स' नामक पुस्तक की रचना की। इसने भी मिन्ब्रुक सम्मेलन की धारणा को आगे बढ़ाया। वस्तुतः वाल्डो की पुस्तक ने टार्चलाइट का काम किया तथा 1969 में अमरीकी राजनीतिविज्ञान समिति की ओर से आयोजित सम्मेलन में नवीन लोक प्रशासन पर बहस को आगे बढ़ाया। ये दोनों रचनाएँ लोक प्रशासन के अध्ययन-क्षेत्र में नए क्षितिज का उद्घाटन करने में मील का पत्थर हैं।

3.5 नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ

फिलाडेल्फिया सम्मेलन तथा मिन्ब्रुक सम्मेलन में व्यक्त किए गए विचारों के आधार पर नवीन लोक प्रशासन की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई जा सकती हैं-

1. **ग्राहकोन्मुख-** नवीन लोक प्रशासन की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता इसकी ग्राहक-उन्मुखता है। लोक प्रशासन के अधिकांश विद्यमान सिद्धान्त संसाधनों के समुचित उपयोग पर बल देते हैं। कुछ ने कर्मचारियों के मनोबल और उत्प्रेरण पर जोर दिया है। लेकिन ग्राहकों की सन्तुष्टि पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। नवीन लोक प्रशासन इस कमी को दूर करने का प्रयास कर रहा है। लोक प्रशासन की उत्पत्ति नागरिकों के हित के लिए हुई है। अतः इसे नागरिकों की आवश्यकता तथा इच्छानुसार सेवा करनी चाहिए।

2. **उत्तरदायी-** यह विशेषता ग्राहक-उन्मुखता का अनुसरण करती है। नवीन लोक प्रशासन, जो ग्राहकोन्मुख है, बहुत हद तक उनकी आवश्यकता के प्रति संवेदनशील हो गया। इसे ग्राहकों अर्थात् नागरिकों की बंदलती आवश्यकताओं के अनुसार स्वयं को ढालना होगा। इसे एक ऐसी प्रक्रिया अपनानी होगी जिसके तहत नागरिकों की आवश्यकताओं का आकलन किया जा सके तथा समय-समय पर वांछित सुधार भी लाया जा सके। अतः स्पष्टतः इसे अनवरत रूप से नागरिकों के प्रति उत्तरदायी रहना होगा और नागरिकों के प्रति अपनी जिम्मेदारियाँ पूर्ण करनी पड़ेंगी।

3. **लोचदार प्रशासनिक ढाँचा-** कठोर प्रशासनिक सिद्धान्तों के आधार पर कार्यरत संगठन

संवेदनशील ग्राहकोन्मुख लोक प्रशासन के उचित वाहक नहीं हो सकते। इसमें काफी लोच की आवश्यकता होती है, क्योंकि ग्राहक परिवर्तनशील होते हैं। अतः वैकल्पिक संरचनाओं का चयन किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए छोटे, विकेन्द्रीकृत और लचीले पदसोपान क्रम ऐसे प्रशासनिक संगठनों के अनुकूल हो सकते हैं, जिनका सम्बन्ध जन विकास कार्यक्रमों से होता है।

4. **जनसहभागिता-** नवीन लोक प्रशासन ने प्रशासन में जनता की भागीदारी पर अधिक बन दिया है, क्योंकि यह निर्णय जनता को लेना है कि आगे क्या होना चाहिए या किसके द्वारा होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि नवीन लोक प्रशासन निर्णय-निर्माण में जनसहभागिता पर बल देता है। ऐसी भागीदारी, विशेषकर स्थानीय स्तर पर भागीदारी, को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी संस्थागत व्यवस्था की ही है।

3.6 नवीन लोक प्रशासनः संभावनाएँ

आज लोक प्रशासन को जिन नयी प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, उनमें से कुछ बढ़ती हुई सैनिक शक्ति, तेजी से परिवर्तित होती हुई प्रविधि, शहरीकरण, नागरिक अधिकार, पर्यावरण प्रदूषण तथा विकास से सम्बन्ध रखती हैं। लोक प्रशासन का क्षेत्र निरन्तर व्यापक होता जा रहा है, क्योंकि वह नवीन कार्यात्मक क्षेत्रों में प्रवेश कर रहा है। जैसे- जनसंख्या विस्फोट तथा उसका नियन्त्रण, मद्यनिषेध तथा अन्य अस्वास्थ्यकर उत्पादनों की रोकथाम, पर्यावरण एवं प्रदूषण संबंधी व्यवस्था, पुलिस और अपराध, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, सार्वजनिक नैतिकता, मानव अधिकारों का संरक्षण एवं संवर्द्धन, सतत विकास आदि। इसके लिए लोक प्रशासन सिद्धान्त में नवीन संगठन, संरचनाएँ, प्रक्रियाएँ, कार्यविधियाँ आदि विकसित करने की क्षमता होनी चाहिए। काइडन ने नवीन लोक प्रशासन की उत्साही सुधारक, सजग नीतिनिर्माता, सामाजिक परिवर्तन का वाहक, संकट प्रबन्धक, मानवीय नियोक्ता, मध्यस्थ, राजनीतिक आन्दोलनकर्ता, आशावादी नेता आदि भूमिकाएँ निश्चित की हैं। निःसन्देह इन भूमिकाओं के निर्वहन के लिए उसमें नवीन गुणों एवं क्षमताओं की आवश्यकता होगी। अतः एक सामान्य लोक प्रशासन सिद्धान्त आवश्यक होगा, जो इस दिशा में निरन्तर मार्गदर्शन करता रहे। स्पष्टतः ऐसा लोक प्रशासन सिद्धान्त लोचशील, गतिशील, आनुभविक, लक्ष्योन्मुख व सृजनात्मक होगा। वस्तुतः लोक प्रशासन के वर्तमान विकास को देखते हुए उसके 'निर्माण' और 'विकास' की काफी संभावना है।

3.7 मूल्यांकन

नवीन लोक प्रशासन ने समाज की समस्याओं के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त की है और इस बात को महत्व दिया है कि संकट के क्षणों में लोक प्रशासन मूल्य-उदासीन नहीं बना रह सकता। इसने नए क्षेत्रों एवं विचारों को जन्म दिया है और लोक प्रशासन की विषय-वस्तु को व्यापक बनाया है।

नवीन लोक प्रशासन कार्यक्रम वस्तुतः लोकहित-प्रधान है। किन्तु इस लोकहित प्रकृति के कारण ही इस दृष्टिकोण की आलोचना भी की जाती है। आलोचकों के अनुसार यह वह क्रियाकलाप है जो राजनीतिक प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है और इसे विधानमंडल एवं लोकमत की इच्छा से ही लागू किया जा सकता है। दूसरी आलोचना यह है कि इसने राजनीतिक संस्थाओं प्रक्रिया एवं नेतृत्व से सम्बन्धित विषय-वस्तु पर अधिकार कर लिया है जो एक प्रकार से अतिक्रस्टन है। लोक प्रशासन के क्रियाकलापों के लिए इस युग में विकाससम्मत

वैकल्पिक दृष्टिकोणों की अपेक्षा एक मौलिक सिद्धान्त की खोज के लिए प्रयत्न किए जा रहे थे, परन्तु किसी भी व्यावहारिक तथा लक्ष्य-आधारित सिद्धान्त की खोज के प्रयत्न नहीं किए गए जो अन्ततः कालान्तर में कुछ विशेष सिद्धान्तों के साथ आगे बढ़ सके। इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन के विचारकों ने विकास के लिए आवश्यक तकनीक की उपेक्षा की।

उपरोक्त सीमाओं के बावजूद भी नवीन लोक प्रशासन ने लोक प्रशासन के परम्परागत सिद्धान्तों एवं विचारों को झटका दिया तथा उसे उस समय उत्प्रेरित किया जब इस विषय का आत्मबल गिरा हुआ था। आज नवीन लोक प्रशासन ने अपना स्थान बना लिया है और इसका समाज से सीधा सम्बन्ध जुड़ गया है।

3.8 सारांश

1960 के दशक तक आते-आते परम्परागत लोक प्रशासन की कमियाँ सामने आने लगी थीं। इस समय तक यह स्पष्ट हो गया था कि लोक प्रशासन में उस संवेदनशीलता, लचीलेपन तथा सृजनात्मकता का अभाव है, जो विभिन्न समस्याओं से निबटने के लिए आवश्यक होती है। यही वह समय था, जब अमरीकी समाज नई-नई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं का सामना कर रहा था। अतः यह आवश्यक समझा गया कि परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुरूप लोक प्रशासन में भी परिवर्तनशीलता तथा लोचशीलता का होना जरूरी है। विभिन्न सभाओं, गोष्ठियों, सम्मेलनों, अध्ययनों तथा रचनाओं में इस समस्या पर विचार किया गया तथा लोक प्रशासन की इस अक्षमता को दूर करने के लिए आवश्यक सुझाव दिए गए। इन सुझावों के अनुकरण में ही लोक प्रशासन ने अपने आपको 'नवीन लोक प्रशासन' के रूप में विकसित किया, जिसे लचीला, जनता के प्रति उत्तरदायी, उनकी सेवा के लिए तत्पर तथा प्रशासन में उनकी सहभागिता बढ़ाने वाले प्रशासन के रूप में जाना जाता है।

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ/ उपयोगी पुस्तकें

(1) F. W. Riggs : The Ecology of Public Administration

(2) Robert T. Golembiewski : Public Administration as a Developing Discipline

(3) H. George Frederickson : New Public Administration

(4) Felix A. Nigro and Lloyd G. Nigro : Modern Public Administration

(5) Nicholas Henary : Public Administration and Public Affairs

3.10 संबंधित प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

(1) नवीन लोक प्रशासन के उदय एवं विकास में योगदान करने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख कीजिए?

(2) हनी प्रतिवेदन में की गईं प्रमुख सिफारिशें क्या थीं?

(3) फिलाडेल्फिया सम्मेलन के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

(4) नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ बताइए।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

(1) नवीन लोक प्रशासन से आप क्या समझते हैं? लोक प्रशासन के विकास में इसकी भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

(2) नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्यों का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) फिलाडेल्फिया सम्मेलन कब आयोजित किया गया था?

क. 1967 ई0

ख. 1968 ई0

ग. 1971 ई0

घ. 1977 ई0

(2) निम्नलिखित में से कौन नवीन लोक प्रशासन का लक्ष्य नहीं है?

क. प्रासंगिकता

ख. मूल्य-मुक्तता

ग. सामाजिक समानता

घ. परिवर्तन

(3) 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए टाइम ऑफ टरबुलेन्स' का लेखक कौन है?

क. फ्रेंक मेरीनी

ख. जे0 सी0 चार्ल्सवर्थ

ग. ड्वाइट वाल्डो

घ. मिस फालेट

(4) नवीन लोक प्रशासन के अग्रणी लेखक हैं-

क. चार्ल्स लिण्डब्लोम

ख. फ्रेंक मेरीनी

ग. जार्ज फ्रेडरिक्शन

घ. उपरोक्त सभी

3.11 प्रश्नोत्तर

1. क
2. ख
3. ग
4. घ

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

MAPS-104
लोक प्रशासन

खण्ड

2

लोक प्रशासन के विभिन्न सिद्धान्त

इकाई 4

वैज्ञानिक प्रबन्ध, नौकरशाही के सिद्धान्त 5

इकाई 5

परम्परावादी (शास्त्रीय), मानव सम्बन्ध सिद्धान्त 18

इकाई 6

व्यवस्था , परिस्थिति उपागम, निर्णय निर्माण 32

परामर्श समिति

प्रो. केदार नाथ सिंह यादव, कुलपति	अध्यक्ष
डॉ. हरीश चन्द्र जायसवाल, वरिष्ठ परामर्शदाता	कार्यक्रम संयोजक
प्रो. के. पी. सिंह, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
डॉ. अर्जुन तिवारी, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
प्रो. ए.एन. द्विवेदी, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
डॉ. रत्नाकर शुक्ला, कुलसचिव	सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. आर.के. मणि त्रिपाठी — विषय विशेषज्ञ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

प्रो. एल.डी. ठाकुर — विषय विशेषज्ञ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
राजनीतिशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

प्रो. एस.एम. सईद — विषय विशेषज्ञ
राजनीतिशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. मंजूलिका श्रीवास्तव — दूरस्थ शिक्षा विशेषज्ञ
रीडर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. एस. के. द्विवेदी — सम्पादक
राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

PGPS-05 :– लोक प्रशासन

लेखक मण्डल

खण्ड एकः **प्रो. ए .एन दूबे**, राजनीति शास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी 3 इकाई

खण्ड दोः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड तीनः **डॉ. आर.के. जायसवाल**, रीडर, राजनीति शास्त्र वि., के.एस. साकेत महावि.,फैजाबाद 3 इकाई

खण्ड चारः **डॉ. मनूका खन्ना**, रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड पाँचः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई
डॉ. वी.के. राय, रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, इला. विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुति अनुमन्य नहीं है।

MAPS-104/36

दूरस्थ शिक्षा परिषद, नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित।

खण्ड 2 का परिचय : लोक प्रशासन के विभिन्न सिद्धान्त

लोक प्रशासन का अध्ययन सामाजिक विज्ञान के अन्य विषयों की अपेक्षा नया कहा जा सकता है। आमतौर से इसे वुडरो विलसन के एक लेख से जो 1887 में लिखा गया जिसका शीर्षक का 'ए स्टडी आफ एडमिनिस्ट्रेशन। लोक प्रशासन तो वैसे हर युग में रहा है। परन्तु आधुनिक युग में इसके अध्ययन का आरम्भ सामान्यतया इसी लेख से विचारक मानते हैं। लोक प्रशासन के कुशलता एवं गुणवत्ता लाने के लिये लोक प्रशासन की विभिन्न विधाओं का ज्ञान आवश्यक होता है जिसे हम अध्ययन के माध्यम से प्राप्त करते हैं। एक विचार यह भी है कि सामाजिक विज्ञान के विषयों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के लिये सिद्धान्तों के सृजन को भी आवश्यक माना गया है। लोक प्रशासन को एक वैज्ञानिक विषय की संज्ञा प्रदान करने हेतु यह आवश्यक है कि इसके भी अपने कुछ सिद्धान्त हों जिससे इस विषय को भी सामाजिक विज्ञान के अन्य विषयों के समकक्ष रखा जा सके। अतः अनेक ऐसे सिद्धान्त विकसित हुये जिन्हें हम लोक प्रशासन के सिद्धान्त के रूप में जानते हैं।

प्रस्तुत खण्ड में हम लोक प्रशासन के विभिन्न सिद्धान्त का अध्ययन करेगें। मुख्यतः सिद्धान्तों को तीन इकाइयों में विभाजित किया गया है। खण्ड की पहली इकाई में 'हम वैज्ञानिक प्रबंध' तथा 'नौकरशाही सिद्धान्त' का अध्ययन करेंगे। तत्पश्चात् दूसरी इकाई में परम्परावादी (शास्त्रीय) सिद्धान्त तथा मानव सम्बंध सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे। तीसरे खण्ड में हम व्यवस्था सिद्धान्त तथा परिस्थिति सिद्धान्त के साथ-साथ निर्णय निर्माण के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इस प्रकार हम लोक प्रशासन के प्रमुख सिद्धान्तों का अध्ययन कर उनके बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ?

इकाई– 4 : वैज्ञानिक प्रबंध एवं नौकरशाही सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 वैज्ञानिक प्रबंध की मूल अवधारणा

4.3 वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें/लक्षण

4.4 वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचना

4.5 सारांश

4.6 नौकरशाही की मूल अवधारणा

4.7 नौकरशाही प्रतिमान के प्रमुख लक्षण/विशेषतायें

4.8 नौकरशाही सिद्धान्त की आलोचना

4.9 सारांश

4.10 उपयोगी पुस्तकें

4.11 सम्बंधित प्रश्न

4.12 प्रश्नोत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- वैज्ञानिक और नौकरशाही की मूल अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे,
- इन सिद्धान्तों के प्रमुख लक्षणों की विवेचना कर सकेंगे,
- इन सिद्धान्तों की आलोचनात्मक विवरण कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना :

लोक प्रशासन को कुशल बनाये रखने तथा गुणवत्ता प्रदान करने के लिये लगातार विद्वानों द्वारा प्रयास होते रहते हैं। यह एक शोध एवं चिन्तन का विषय रहता है कि प्रशासन की सार्थकता बनी रहे। परन्तु यह तभी सम्भव है जब प्रशासन कुशलतापूर्वक एवं गुणवत्ता के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन करता रहे। इसे सुनिश्चित करने के लिये विषय विशेषज्ञ सतत् प्रयास करते रहते हैं। सिद्धान्तों का सृजन इन्हीं प्रयासों का परिणाम रहता है। इस खण्ड में हम इस क्रम के दो प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में जानने का प्रयास करेंगे। यह दो सिद्धान्त, वैज्ञानिक प्रबंध तथा नौकरशाही सिद्धान्त के नाम से जाने जाते हैं। यह दोनों सिद्धान्त प्रशासनिक प्रक्रिया को अलग-अलग विधाओं से समझने तथा विश्लेषित करते हैं। परन्तु लोक प्रशासन में गुणवत्ता एवं कुशलता बनाये रखना दोनों का लक्ष्य है।

4.2 वैज्ञानिक प्रबंध की मूल अवधारणा :

वैज्ञानिक प्रबंध का सिद्धान्त लोक प्रशासन के सिद्धान्तों में एक प्रमुख सिद्धान्त माना जाता है। जैसा कि हम बहुधा देखते हैं कि विभिन्न सिद्धान्तों का कोई न कोई एक प्रमुख प्रवर्तक होता है, उसी प्रकार वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त के मूल विचारक के रूप में फ्रेडरिक विन्सले टेलर को माना जाता है। टेलर के अन्य विचारकों की तुलना में लोक प्रशासन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। प्रबंध के विद्यार्थी के लिये यह एक सुपरिचित नाम है। टेलर को वैज्ञानिक प्रबंध आन्दोलन का प्रमुख प्रतिपादक माना जाता है। वैज्ञानिक प्रबंध को दूसरी औद्योगिक क्रान्ति के रूप में देखा जाता है। टेलर ने उद्योगों की समस्याओं को सुलझाने के लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने की वकालत की और प्रबंध को विज्ञान के रूप में परिभाषित किया। प्रबन्ध की वैज्ञानिकता पर जोर देने तथा प्रबंध को वैज्ञानिक आधार पर संचालित करना ही वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त का मूल आधार है।

हम इसे टेलर के शब्दों में देखें तो वैज्ञानिक प्रबंध यह मानकर चलता है कि प्रत्येक कार्य को करने का एक श्रेष्ठ तरीका होता है और उस श्रेष्ठ तरीके को सदैव कुछ नियमों में निर्मित किया जा सकता है, और इस तरह आप अपने ज्ञान को पुरानी अव्यवस्था की स्थिति से दूर कर संगठित ज्ञान के रूप में प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर हम कह सकते हैं कि किसी कार्य के करने के अनेक तरीकों में एक तरीका ऐसा होगा जो सबसे अच्छा होगा। अतः हमें उस एक अच्छे तरीके को समझना होगा तथा समझ कर अपने कार्य को उसी प्रकार सम्पादित करना होगा। ऐसा करने से संगठन में उत्पादकता, क्रियात्मकता तथा गुणवत्ता बढ़ेगी। संगठन कुशलता पूर्वक अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल होगा। इस सबमें अच्छे तरीके को पाने में वैज्ञानिक सूझबूझ सहायक होती है। इसे हम परम्परागत तरीके से कार्य करने से बेहतर मानते हैं।

टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंध यह मानकर चलता है कि दोनों मालिक और श्रमिक– के वास्तविक हित समान एवं एक हैं। क्योंकि मालिकों की सम्पन्नता लम्बे समय तक बिना श्रमिकों की सम्पन्नता चल नहीं सकती। इसलिये यह सम्भव है कि श्रमिक जो वह चाहता है ऊँची मजदूरी दी जाना चाहिये एवं मालिक जो वह चाहता है– निम्न श्रम लागत की जानी चाहिये। टेलर एक प्रकार से मालिक तथा श्रमिक को परस्पर विरोधी दृष्टिकोण से नहीं देखता है। अच्छा एवं अधिक उत्पाद अच्छे श्रम के अभाव में सम्भव नहीं कहा जा सकता। अधिक उत्पादन अर्थात् अधिक लाभ अधिक श्रम से सम्भव होता है। इस प्रकार इस पूरी प्रक्रिया में श्रम के महत्व को समझना आवश्यक है तथा उसकी सही कीमत देना भी आवश्यक है। इस संदर्भ में टेलर मानसिक क्रान्ति की बात भी कहता है।

'मानसिक क्रान्ति' में टेलर का विचार टेलर का मौलिक विचार माना जाता है। टेलर मानसिक क्रान्ति को वैज्ञानिक प्रबंध का मूल तत्व मानते हैं। मानसिक क्रान्ति से तात्पर्य श्रमिकों और मालिकों की मानसिकता में परिवर्त्य से है। सामान्यतया मालिक श्रमिकों से अधिक व्यय चाहते हैं और श्रमिक मालिकों से अधिक मजदूरी। इस प्रकार दोनों एक दूसरे को अपना विरोधी समझते हैं। साथ ही परस्पर अविश्वास का वातावरण बना रहता है। इस तरह की मानसिकता को टेलर आपस के द्वन्द का कारण मानते हैं। इसे दूर करने सम्बंधी विचार को टेलर मानसिक क्रान्ति के रूप में प्रस्तावित करते हैं। इसके अन्तर्गत टेलर मालिकों से अपेक्षा करते हैं कि लाभ का एक भाग श्रमिकों को देकर मालिक अविश्वास को समाप्त कर सकते हैं और श्रमिक अपने श्रम से उत्पादन एवं लाभ बढ़ा कर मालिक का विश्वास जीत सकते हैं। यह दोनों एक दूसरे के सहायक सिद्ध होंगे न कि एक दूसरे के विरोधी।

टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंध श्रमिकों की अपने कर्त्तव्यों, अपने काम और अपने साथी श्रमिकों के प्रति पूर्ण मानसिक क्रान्ति में निहित है। इसी प्रकार प्रबंध की अपने कर्मचारियों और उनकी समस्याओं

के प्रति पूर्ण मानसिक क्रान्ति आवश्यक है और बिना इस पूर्ण मानसिक क्रान्ति के जो दोनों पक्षों में होनी चाहिये, वैज्ञानिक प्रबन्ध का अस्तित्व नहीं रख सकता। यही महान् मानसिक क्रान्ति वैज्ञानि प्रबंध का सार है।''

टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धान्तों की विवेचना करते समय कहा है–

''विज्ञान, न कि अंगूठे का नियम;

सामंजस्य, न कि संघर्ष;

सहयोग न कि व्यक्तिवाद;

सीमित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन तथा प्रत्येक व्यक्ति का अधिकतम क्षमता और समृद्धि का विकास। आइये अब टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध के इन सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन करें :

(i) विज्ञान, न कि अंगूठे का नियम– वैज्ञानिक प्रबंध में विज्ञान पर विशेष बल दिया गया है। यही इसका आधार माना जा सकता है। टेलर का आग्रह है कि संगठन में प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक विधि से किया जाना चाहिये न कि 'अंगूठे के नियम' अर्थात् अनुभव और 'ट्रायल व एरर' विधियों को वे श्रमिकों का वैज्ञानिक आधार पर चयन और वैज्ञानिक आधार पर ही कार्य के आवंटन का आग्रह करते हैं।

(ii) सामंजस्य न कि संघर्ष– टेलर उद्यम के कर्मचारियों और प्रबंध पक्ष के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बंधों की वकालत करते हैं। टेलर का मानना है कि उद्यम को दो आधार स्तम्भों के रूप में उसकी सफलता तभी सम्भव होती है जब दोनों पक्षों के बीच संघर्षपूर्ण सम्बन्धों के स्थान पर सामंजस्यपूर्ण और मैत्री सम्बंध हों।

(iii) सहयोग न कि व्यक्तिवाद– उद्यम के कर्मचारी यदि अपने-अपने व्यक्तिगत प्रयासों पर ही ध्यान दें, और अपने साथियों के साथ कोई सामंजस्य न रखें तो उद्यम की सफलता संदिग्ध रहती है। कम से कम लागत से अधिक उत्पादन ही वैज्ञानिक प्रबंध का प्रमुख उद्देश्य होता है और आप उद्देश्य केवल सहकारी प्रयासों से ही सम्भव है न कि व्यक्तिवादी प्रयासों से।

(iv) सीमित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन– टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंध का उद्देश्य श्रमिकों और मालिकों दोनों की खुशहाली है। यह तभी सम्भव है जब उद्यम अधिकतम उत्पादन करें। यदि संगठन सीमित का प्रतिबंधित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन करते हैं तो इसका लाभ केवल मालिकों को ही नहीं अपितु श्रमिकों को भी मिलेगा क्योंकि दोनों एक-दूसरे की सम्पन्नता के अधिक समय तक सम्पन्न नहीं रह सकते हैं।

(v) प्रत्येक व्यक्ति का अधिकतम दक्षता और समृद्धि तक विकास– वैज्ञानिक प्रबंध संगठन के प्रत्येक व्यक्ति का अधिकतम दक्षता। कार्यकुशलता और समृद्धि तक विकास करने का पक्ष लेता है। इसमें श्रमिकों की दक्षता बढ़ाने पर जोर दिया जाता है ताकि वे ऊंची मजदूरी पाने लायक हो सके। ऐसा श्रमिकों के वैज्ञानिक आधार पर चयन, प्रशिक्षण तथा कार्य के वैज्ञानिक व्यवस्था से है।

ऊपर लिखित बिन्दुओं को हम वैज्ञानिक प्रबंध की मूल अवधारणा के अन्तर्गत मानते हैं। इन तत्वों के आधार पर हम वैज्ञानिक प्रबंध को एक सिद्धान्त के रूप में विश्लेषित कर इसका अध्ययन करते हैं। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत परम्परागत विचारों के स्थान पर विज्ञान तथा वैज्ञानिकता पर विशेष बल दिया जाता है। टेलर का मानना है कि इससे उत्पादकता पर प्रभाव पड़ता है।

अब हम वैज्ञानिक प्रबंध की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

4.3 वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें

वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त की मूल अवधारणा का अध्ययन हमने अभ तक पिछले पृष्ठों में किया है। आइये अब वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त की प्रमुख विशषताओं का अध्ययन करें। टेलर अपने वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त में कार्य करने के श्रेष्ठ या सर्वोत्तम तरीके को निर्धारित करने का आग्रह करते हैं। इसके लिये टेलर 'कार्य विश्लेषण' पर बल देते हैं। टेलर ने कार्य के सर्वोत्तम तरीके के निर्धारण हेतु 'समय अध्ययन', 'गति अध्ययन' और 'थकान अध्ययन' तकनीकों का उल्लेख किया है।

समय अध्ययन– टेलर ने समय अध्ययन का प्रयोग किसी कार्य को करने में लगने वाले समय को निर्धारित करने के लिये किया है। टेलर ने इस तकनीक का प्रयोग श्रमिकों के औसत दिन के कार्य (A fair days work) निर्धारण के लिये किया है। जिस कार्य का गतिविधि में न्यूनतम समय लगता है, वही श्रेष्ठ होती है।

गति अध्ययन– गति अध्ययन से श्रमिक द्वारा किये जा रहे कार्य की विभिन्न गतियों का निरीक्षण किया जाता है तथा अनावश्यक गतियों को हटाकर कार्य की श्रेष्ठ विधि निर्धारित की जा सकती है।

इन दोनों को मिलकर समय-गति अध्ययन (Time–Motion–Study) के माध्यम से कार्य में लगने वाले समय एवं गति को वैज्ञानिक रीति से निर्धारित कर लाभ उठाया जाता है।

थकान अध्ययन– कार्य करने से थकान आना स्वाभाविक है। जब श्रमिक थकान महसूस करते हैं तो वे अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं कर पाते हैं। इसके लिये टेलर विश्राम का समय निर्धारित करने की सलाह देते हैं।

यह तीनों प्रकार के अध्ययन वैज्ञानिक प्रबंध की एक विशेषता के रूप में देखा जाता है।

वैज्ञानिक प्रबंध की यह विशेषता है कि टेलर ने अपने अध्ययनों तथा प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकाला है। आइये उन निष्कर्षों को जानने का प्रयास करें जो वैज्ञानिक प्रबंध की विशेषता कहलाते हैं।

टेलर निष्कर्ष निकालते हैं कि नियोजन (Planning) को कार्य (Execution) के पृथक किया जाना चाहिये। पहले श्रमिक ही यह तय करता था कि कार्य किस प्रकार करना है और पर्यवेक्षक केवल उनके कार्य का पर्यवेक्षण करते थे। टेलर का सुझाव था कि नियोजन का काम पर्यवेकों को सौंपा जाना चाहिये और श्रमिकों को केवल अपने कार्य पर ही अधिक केन्द्रित होना चाहिये।

श्रमिकों का वैज्ञानिक आधार पर चयन एवं प्रशिक्षण–

श्रमिकों में अधिकतम कार्यकुशलता लायी जा सके, इसके लिये टेलर श्रमिकों के वैज्ञानिक आधार पर चयन की वकालत करते हैं। टेलर श्रमिकों के वैज्ञानिक आधार पर चयन के साथ-साथ उनके कौशल को विकसित करने के लिये उनके प्रशिक्षण को भी आवश्यक मानते हैं। वैज्ञानिक आधार पर चयनित और प्रशिक्षित श्रमिक उद्यम के लिये अधिकतम क्षमता के साथ अपना योगदान दे सकता है।

वैज्ञानिक आधार पर कार्य का आवंटन– टेलर श्रमिकों के बीच कार्य के आवंटन के लिये वैज्ञानिक आधार अपनाने का सुझाव देते हैं। प्रत्येक श्रमिक की योग्यता और रुचि को ध्यान में रखते हुये वैज्ञानिक तरीके से कार्य का आवंटन किया जाना चाहिये।

प्रमापीकरण (मानवीकरण) टेलर औजारों, यन्त्रों, मशीनों आदि के प्रमापीकरण को आवश्यक मानते हैं प्रत्येक कार्य के प्रमाप निर्धारित कर दिये जाने तथा यन्त्रों और सामग्री का वैज्ञानिक आधार पर चयन से न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पाद सम्भव है।

प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली (Incentive Wage System)

टेलर श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि के लिये प्रोत्साहक मजदूरी प्रणाली लागू करने का सुझाव देते हैं। जब श्रमिकों को इस बात की जानकारी होगी कि किसी कार्य को करने से अधिक मजदूरी मिलेगी तो वह उस कार्य को करने को अग्रसर होगा। इसी कारण सम्भवतः टेलर "विभेदात्मक मजदूरी दरों (Differented Wage Rate) को लागू करने की बात कहते हैं। इस व्यवस्था में व्यक्ति के कार्य-सम्पादन के आधार पर मजदूरी दी जाती है।

कार्य की अच्छी दशायें– टेलर श्रमिकों को कार्य की अच्छी और संतोषजनक दशायें प्रदान करने का सुझाव देते हैं। उनका कहना है कि उनके श्रम घण्टों में कमी करने और उन्हें अधिक अनुकूल कार्य दशाओं की पूर्ति करने पर उन्हें कार्य न करने के बहाने के स्थान पर निरन्तर कार्य करवाना सम्भव होगा।

कार्यकुशल लागत-लेखा प्रणाली– टेलर ने कुशल लागत लेखा प्रणाली की आवयकता पर भी समान रूप से बल दिया है। कुशल लागत लेखा प्रणाली से संगठन के अनावश्यक खर्चों से बचा जा सकता है।

प्रकार्यात्मक–फोरमैनशिप– प्रकार्यात्मक–फोरमैनशिप या Functional Foremanship टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध का एक महत्वपूर्ण अंग है। टेलर की यह अवधारणा कार्यों की विशेषीकरण पर आधारित है। इस प्रणाली में श्रमिक के कार्यों को निर्देशित करने का दायित्व आठ व्यक्तियों (अधिकारियों) का होता है। इन आठ में से चार व्यक्ति नियोजन से सम्बंधित होते हैं और चार श्रमिक के कार्यों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े होते हैं। इस प्रकार टेलर नियोजन को कार्य के पृथक करते हैं परन्तु दोनों को बराबर का महत्व देते हैं।

टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध की प्रमुख विशेषताओं का हमने अध्ययन किया। अब हम वैज्ञानिक प्रबन्ध सिद्धान्त की कमियों का अध्ययन करना तथा इस सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण करेंगे।

4.4 वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचना

विद्वानों ने वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त की अनेक प्रकार से आलोचना की है। इस खण्ड में हम वैज्ञानिक प्रबंध की तमाम कमियों के सम्बन्ध में जानकारी करेंगे।

पिछले पृष्ठों में दिये गये विवरण से हम जानते हैं कि टेलर को वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त का जनक माना गया है। उनके इस सिद्धन्त ने योरप तथा अमरीका के व्यापार जगत में एक क्रान्ति सी ला दी थी जब अनेकों उद्यम वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धान्तों को अपनाने लगे थे। परन्तु कालान्तर में उनका यह सिद्धान्त आलोचनाओं का शिकार हुआ। आलोचकों के मत में टेलर ने अपना सारा ध्यान कारखाना स्तर (Shop Floor) पर ही लगाया है और उच्च प्रबंध के सुधार पर कुछ नहीं कहा है। टेलर की इस सिद्धान्त को सामान्य व्यक्तियों, ट्रेड यूनियनों तथा यहां तक कि प्रबन्धकों ने भी आलोचना की है।

टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचना में मानवीय पहलुओं की उपेक्षा को विशेष बल दिया जाता है। प्रोफेसर होक्सी ने अमेरिका में अपनी रिपोर्ट, जो उन्होंने औद्योगिक सम्बंधों पर आयोग को दी थी, ये वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचना की और टेलर के उपागम की उत्पादन के केवल यांत्रिक पहलुओं के सम्बंधित होने व मानवीय पहलुओं की उपेक्षा का आरोप लगाया है।

टेलर के सिद्धान्त की प्रबंधक भी आलोचना करते हैं। टेलर उक्त प्रशिक्षण को आवश्यक मानते थे, इस कारण वे लोग टेलर के विरुद्ध हो गाये जो बिना प्रशिक्षण के ही पदोन्नति द्वारा ऊंचे पदों को

प्राप्त करना करना चाहते थे। उत्पाद में प्रशिक्षण के महत्व से प्रबंधक सहमत नहीं रहे और टेलर की इस कारण आलोचना की।

अनके विचारक जैसे मेरीपार्कर फौलेट, मेयो, ड्रकर आदि टेलर के सिद्धान्त की आलोचना करते हैं। इन विचारकों की आलोचना में प्रमुख बात टेलर द्वारा मानवीय पहलुओं की उपेक्षा बताया गया है। इनका मानना है कि यह निर्वैयक्ता पर ज्यादा ध्यान देता है और मानवीय पहलुओं को कम करके आंकता है। मेयो के हार्थेन प्रयोग द्वारा टेलरवाद का खण्डन किया गया। साथ ही साइमन और मार्क वैज्ञानिक प्रबंध को शारीरिक संगठनात्मक सिद्धान्त की संज्ञा देते हैं।

टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध व विरोध एवं आलोचना मजदूर संगठनों द्वारा मुखररूप से किया गया। मजदूर यूनियन का मानना था कि इससे उनके वजूद को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। मजदूरों के तमाम हितों की बात टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध में रखी गई है जिससे श्रमिक संगठन के स्थितत्व को खतरा लगता है। अतः इनके नेताओं ने इसका विरोध किया।

इस प्रकार जब हम वैज्ञानिक प्रबंध उपागम की कमियों अथवा इसकी आलोचना की चर्चा करते हैं तो ऊपर लिखित अनेक बिन्दु इसके अन्तर्गत आते हैं। मूल रूप से यदि हम देखें तो वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचना के कुछ प्रमुख तर्क है जो इसे मशीनीतम की संज्ञा देते हैं तथा इसमें मानवीय मूल्यों की कम आंकने या नकारने का दोषी मानते हैं। इस कारण वैज्ञानिक प्रबंध आगे चल कर असफल माना गया।

4.5 सारांश

वैज्ञानिक प्रबंध का सिद्धान्त संगठन एवं प्रशासन के एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में माना जाता है। इस उपागम ने उद्यम जगत में एक नई सोच को जन्म दिया। इस सिद्धान्त की सबसे प्रमुख विशेषता कार्य को परम्परागत विधाओं के बजाय वैज्ञानिक विधाओं से करने का विचार दिया जिससे उत्पाद बढ़ाने में काफी सहायता मिली थी। कार्यप्रणाली में वैज्ञानिकता का प्रसार इस उपागम का मौलिक सूत्र कहा जा सकता है। संगठन के विभिन्न पहलुओं पर वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त ने एक नई दिशा प्रदान की जिसके अन्तर्गत श्रमिक, कार्य-प्रणाली, वेतन, प्रशिक्षण इत्यादि अनेक बिन्दुओं पर नये तरीके और नई सोच प्रदान की। संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों में टेलर का यह विशेष योगदान माना जाता है।

टेलर के इन विचारों की कटु आलोचना पर भी हमने चर्चा की है। परन्तु यह अवश्य है कि आलोचनाओं के बावजूद टेलर के विचारों ने लोक प्रशासन के चिन्तकों को काफी प्रभावित किया और उनकी विचारधारा लम्बे समय तक सम्पूर्ण विश्व पर छायी रही और आज भी उसकी न्यूनाधिक उपयोगिता विद्यमान है। अपनी कमियों के बावजूद वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। संगठन का कोई भी अध्ययन वैज्ञानिक प्रबंध के अध्ययन के बिना अधूरा रहता है। इस सिद्धान्त की प्रासंगिकता सदैव ही बनी रहेगी।

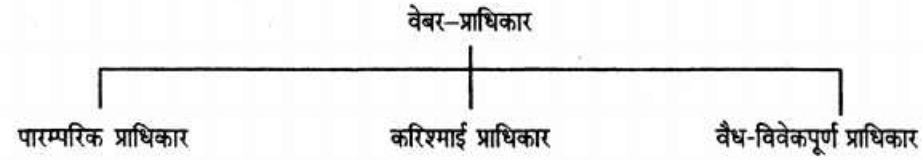
सारांशतः हम कह सकते हैं कि टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध का मूल दर्शन मानसिक क्रान्ति की अवधारणा है जिसके अनुसार श्रमिकों तथा नियोक्ताओं के एक-दूसरे के प्रति अपनी मानसिकता तथा दृष्टिकोण बदलने की वकालत की जाती है। टेलर के विचार से 'मानसिक क्रान्ति' के अभाव में वैज्ञानिक प्रबंध का कोई स्थित्व नहीं रह सकता। वैज्ञानिक प्रबंध की विवेचना करते हुये टेलर 'अगूंठे के नियम' के स्थान पर विज्ञान, संघर्ष के स्थान पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों, व्यक्तिवाद के स्थान पर सहयोग, सीमित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन तथा प्रत्येक व्यक्ति के अधिकतम क्षमता और समृद्धि तक विकास की वकालत करते हैं। यही विचार वैज्ञानिक प्रबंध की प्रासंगिकता बनाये रखने में सहायक होते हैं।

4.6 नौकरशाही की मूल अवधारणा

नौकरशाही संगठन एवं प्रशासन के अनेक प्रतिमानों में एक महत्वपूर्ण प्रतिमान माना जाता है जिसने लोक प्रशासन के महत्व को उजागर किया। आधुनिक युग में नौकरशाही के एक विवेकपूर्ण अध्ययन के प्रणेता के रूप में जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेवर को माना जाता है। वेबर से पहले नौकरशाही एक बुरे अर्थों में समझी जाती थी। वेबर पहले व्यक्ति है जिन्होंने नौकरशाही को बुरे अर्थों से छुटकारा मिलाया और इसका एक आदर्श प्रतिमान विकसित किया। इस खण्ड में हम नौकरशाही की मूल अवधारणा की चर्चा करेंगे।

सामान्यतया हम नौकरशाही की जब भी चर्चा करते हैं तो मैक्स वेबर का नाम आना स्वाभाविक माना जाता है। मैक्स वेबर का कहना है कि नौकरशाही उन सामाजिक संरचनाओं में से है जो एक बार यदि पूर्णतः स्थापित हो जाती है तो उनको नष्ट करना सबसे कठिन बन जाता है। नौकरशाही आधुनिक युग की सबसे शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण संरचना के रूप में प्रसिद्ध है। सम्भवतः इसी कारण मेक्स वेबर मानता है कि एक बार पूर्णतः स्थापित होने के बाद इसे हटाना दुर्लभ हो जाता है। नौकरशाही की अवधारणा में अनेक विचारकों का हमें योगदान देखने को मिलता है। परन्तु हम पहले मेक्सर वेबर के प्रविमान का अध्ययन करेंगे क्योंकि शेष विचारक वेबर के पश्चात् अपने विचार प्रस्तुत करते हैं।

इस सम्बंध में यह ध्यान देने वाली बात है कि मैक्स वेबर ने अपने नौकरशाही को अवधारणा से पहले समाज में वर्चस्व को लेकर अपनी अवधारणा विकसित की। इसे हम प्राधिकार के रूप में समझ सकते हैं। वेबर के अनुसार शक्ति (Power) तथा प्राधिकार (Authority) में अन्तर है और वे उसमें भेद करते हैं। शक्ति को परिभाषित करते हुये वेबर कहते हैं कि "वह सम्भावना जिसमें एक पात्र एक सामाजिक सम्बन्धों के अन्तर्गत इस स्थिति में हो कि प्रतिरोध के बावजूद वह अपनी इच्छा को क्रियान्वित कर सके।" इसके विपरीत प्राधिकार को परिभाषित करते हुये वेबर कहते हैं कि– 'वह सम्भावना कि एक विशिष्ट विषय-युक्त आदेश का व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह द्वारा पालन किया जायेगा।" वेबर कहते हैं कि शक्ति इस समय प्राधिकार में परिवर्तित हो जाती है जब वह वैधता प्राप्त कर लेती है। यह वैधता तीन आधारों पर प्राप्त की जा सकती है– परम्परागत करिश्माई तथा वैध-विवेकपूर्ण। इसी प्रकार वेबर ने तीन प्रकार के प्राधिकारों का उल्लेख किया है।



आइये इन तीनों प्रकार के प्राधिकारों पर अलग से विचार करें।

पारम्परिक प्राधिकार (Traditional Authority)– वेबर के अनुसार पारम्परिक प्राधिकार परम्परायें होती हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत एक व्यक्ति की आज्ञा पालन इसलिये किये जाता है क्योंकि परम्परा ऐसी मांग करती है। इस प्रणाली में आदेश की पवित्रता के आधार पर वैधता का दावा किया जाता है और उसे स्वीकार किया जाता है। चूंकि परम्परागत रूप से इस प्रकार के आदेशों की पालना की जाती है इसलिये सदैव ही ऐसी महत्वपूर्ण परम्परागत स्थिति वाले व्यक्तियों की सत्ता को वैध माना जाता है। प्राधिकार युक्त व्यक्ति के आदेशों को मुख्यतः दो आधारों पर वैध माना जाता है। प्रथम– परम्परायें ही आदेशों का निर्धारण करती है कि किसी सीमा तक आदेश दिये जा सकते हैं अथवा माने जाते हैं। यदि इससे अधिक कुछ करने या मनवाने का प्रयास किया जाता है तो उसके

पद को ही खतरा हो सकता है। द्वितीय– व्यक्ति की अपनी स्वतंत्र निर्णय की इच्छा में परम्परागत नियम भी कुछ सीमा तक छूट देते हैं। अर्थात् एक सीमा तक पथ युक्त व्यक्ति में अपनी इच्छा एवं विवेक के अनुसार आदेश-निर्देश देने की स्वतंत्रता होती है।

करिश्माई प्राधिकार (Charisimati Athoritiy)– इसके अनुसार किसी व्यक्ति के विशिष्ट और अद्भुत गुणों पर आधारित होती है। इन विलक्षण गुणों के कारण ही इसे वैध माना जाता है। करिश्माई प्राधिकार प्रणाली में शासक की आज्ञा का पालन न तो परम्परा के कारण करना होता है और न ही वैध विवेकपूर्ण नियमों के कारण। इसमें शासक के व्यक्तित्व के 'करिश्में' या अतिमानवीय और अप्राकृतिक गुणों के आधार पर वैधता का दावा किया जाता है। और उसे स्वीकार किया जाता है।

करिश्माई प्राधिकार प्रणाली के करिश्माई व्यक्ति पर सभी का विश्वास होता है। सभी सदस्य उसके निर्देशों अथवा आह्वान को वैध मानते हैं और उसके आदेशों का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। यह अवश्य है कि कि इस प्रणाली में करिश्माई गुण वाले नेता को अपने करिश्में को बनाये रखना पड़ता है और इस बात को उसे निरन्तर प्रमाण देना होता है। यदि व्यक्ति अपने करिश्माई गुणों को प्रदर्शित करने में असफल हो जाता है तो उसकी सत्ता भी समाप्त हो जाती है। हम यह कह सकते हैं कि प्राधिकार की वैधता सीधे व्यक्ति के करिश्माई प्राधिकार से या उसके करिश्माई व्यक्तित्व से जुड़ी हुई रहती है।

वस्तुतः करिश्माई प्राधिकार प्रणाली अस्थायी प्रकृति की होती है क्योंकि जैसे ही अनुयायियों को लगता है कि उनके स्वामी में करिश्माई गुण नहीं रह गये हैं तो उसे छोड़ देते हैं और इस प्रकार यह प्रणाली ध्वस्त हो जाती है। यद्यपि वेबर करिश्माई प्राधिकार के बहुत पक्षधर नहीं है परन्तु सुझाव के तौर पर कहते हैं कि करिश्माई प्राधिकार का 'दैनिककरण' (routinisation) अथवा 'संस्थाकरण' (institutionalisation) किया जाना चाहिये ताकि नेता के नेता के दृश्य पटल से चले जाने के बाद भी यह बना रहे।

(iii) विधिक–तार्किक प्राधिकार (Ligal Rational Authority)– पिछले पृष्ठों में हमने वेबर द्वारा उल्लिखित दो प्रकार के प्राधिकारों का अध्ययन किया। वेबर द्वारा निर्मित तीसरे प्रकार का प्राधिकार हम विधिक-तार्किक प्राधिकार के नाम से जानते हैं जो सबसे भिन्न है। इस प्राधिकार प्रणाली में न तो परम्पराओं को महत्व दिया जाता है और न ही व्यक्ति को किसी प्रकार के करिश्में की जरूरत होती है। व्यक्ति जिस पद पर आसीन होता है। इस पद से विधिक सत्ता जुड़ी होती है और यही वैधानिक स्थिति व्यक्ति के आदेशों को वैधता प्रदान करती है। विधिक-तार्किक प्राधिकार प्रणाली में आदेशों का पालन वैधानिक रूप से स्थापित अवैयक्तिक आदेशों पर आधारित होता है।

कुछ विद्वानों ने वेबर के विधिक-तार्किक सत्ता पर विचारों को इस प्रकार प्रकट किया है– (i) सर्वप्रथम वैधानिक नियमों की स्थापना की जाती है। (ii) प्रत्येक व्यक्ति यह मान कर चलता है कि वैधानिक नियमों को सोच-समझ कर बनाया गया है। (iii) सत्ता युक्त एक कार्यालय होता है। इस कार्यालय के आदेशों का पालन इसलिये किया जाता है क्योंकि कानून ऐसी मांग करता है। (iv) अधीनस्थ पदाधिकारी के आदेशों का पालन वैधानिक होने के कारण करते हैं न कि व्यक्ति की व्यक्तिगत स्थिति के कारण। (v) इस प्राधिकार प्रणाली में प्रशासनिक स्टाफ संगठित होता है तथा स्टाफ की नियुक्ति निश्चित नियमों के अनुसार की जाती है। वेबर एक इस नौकरशाही प्रतिमान को आदर्श प्रतिमान के रूप में माना जाता है।

वेबर ने नौकरशाही की अवधारणा स्थापित करने के प्राधिकार के ऊपर विवेचित तीन प्रकार के प्राधिकारों का विश्लेषण किया। वेबर ने परम्परागत तथा करिश्माई प्राधिकार को नकारा तथा विधिक-तार्किक प्राधिकार की रचना कर नौकरशाही की अवधारणा का आकार बनाया। वेबर की नौकरशाही

की अवधारणा का मूल आधार नियम, कानून, विवेक आदि को माना जाता है जिसमें व्यक्तिगत मूल्यों को कोई स्थान नहीं दिया जाता। वेबर नौकरशाही के नियम/विधि को आधार बना कर इसे एक आदर्श प्रतिमान बताते हैं क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत मूल्यों के आधार पर विभेद नहीं किया जाता। वेबर की नौकरशाही एक पद सोमानिक व्यवस्था है जो लिखित नियमों के आधार पर निर्णय लेता है। एक प्रकार से वेबर की नौकरशाही अवधारणा को हम मूल्य रहित तथा तटस्थ व्यवस्था के रूप में देखते हैं। विधिक-तार्किक होने के कारण ही नौकरशाही को एक तटस्थ तथा मूल्य रहित होना पड़ता है। इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत मूल्यों को स्थान नहीं दिया जाता है। यही नौकरशाही अवधारणा के मूल तत्व कहे जाते हैं।

4.7 नौकरशाही प्रतिमान के प्रमुख लक्षण/विशेषतायें

पिछले पृष्ठों में नौकरशाही की मूल अवधारणा की व्याख्या की जिसमें वेबर के नौकरशाही प्रतिमान का अध्ययन किया। आइये अब वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करें। वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं :

(i) प्रशासनिक नियम– नौकरशाही एक विधिक प्राधिकार पर आधरित होती है। इसे प्रशासनिक नियमों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। नौकरशाही संगठन में प्रत्येक कार्य निश्चित नियमों के अनुसार ही सम्पन्न किये जाते हैं। नियमों की कठोरता से पालन करने के कारण प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न कराने में देरी भी होती है। इसी कारण कभी-कभी इसे लाल फीता शाही (Red Tapism) की संज्ञा भी दी जाती है। यह अवश्य है कि इन नियमों के पालन से ही संगठन में समानता होती है क्योंकि सभी को उन्हीं नियमों का पालन करना होता है।

(ii) कार्य का विभाजन एवं विशेषीकरण– वेबर नौकरशाही में कार्यों के विभाजन में विश्वास रखता था। कार्य का विभाजन और विशेषीकरण वेबर के प्रतिमान के आधार पर माने जाते हैं। संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि कार्य की प्रकृति के आधार पर कार्य का उचित विभाजन हो। कार्य का विभाजन विशेषीकरण को जन्म देता है। यह सामान्य धारणा है कि हर व्यक्ति हर कार्य नहीं कर सकता है। अतः जो व्यक्ति जिस कार्य का विशेषज्ञ है उसे यह कार्य आवंटित होने से कार्य कुशलता पूर्वक सम्पन्न होता है।

(iii) पद और निजी स्थिति का पृथक्करण– नौकरशाही प्रतिमान की एक विशेषता यह भी है कि संगठन में कार्यरत व्यक्ति को इस बात की स्पष्ट जानकारी होनी चाहिये कि उनकी व्यक्तिगत स्थिति और पद दोनों अलग-अलग हैं। उसे अपने पद के कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिये जो साधन और सुविधायें संगठन में उपलब्ध होती हैं उनका उपयोग वह केवल विधिक रूप से पद के अनुसार ही करेगा न कि अपने निजी हितों की पूर्ति के लिये। वेबर के अनुसार व्यक्ति को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जो शक्तियां या अधिकार प्राप्त हैं वे उसके पद से जुड़े हैं न कि व्यक्तिगत स्थिति से/उनका निजी हितों के लिये नहीं है।

(iv) पदसोपान– नौकरशाही संरचना में पदों की व्यवस्था पदसोपानिक ढंग से होती है जो उच्च अधिकारियों और अधीनस्थों के बीच सम्बन्धों को प्रकट करता है। वेबर का मत है कि पदों का संगठन पदसोपान के सिद्धान्त का पालन करता है, जिसका अर्थ होता है कि हर अधीनस्थ अधिकारी अपने उच्चाधिकारी के नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण के अधीन होता है।

(v) योग्यता पर आधारित भर्ती– वेबर का मानना है कि नौकरशाही के अधिकारियों की नियुक्ति योजना के आधार पर होती है। योग्यता सुनिश्चित करने के लिये संगठन तर्क संगत नियम बना सकते हैं जिनके आधार भर्ती की व्यवस्था की जायगी। इसके अन्तर्गत यह आवश्यक कि व्यक्तिगत हितों,

मतों अथवा स्वार्थों का कोई स्थान नहीं होना चाहिये। भर्ती केवल योग्यता पर ही आधारित होती है जिससे संगठन की कुशल बनाये रखने में सहायता मिलती है।

(vi) नियमित पारिश्रमिक भुगतान– नौकरशाही के अन्तर्गत कर्मचारियों के नियमित पारिश्रमिक की व्यवस्था होती है और उन्हें मौद्रिक रूप से नियमित वेतन दिया जाता है। वेतन की निश्चित श्रृंखला होती है और संगठन में नया भर्ती किया गया कार्मिक कम वेतन पाता है और जैसे-जैसे वह वरिष्ठ होता जाता है उसका वेतन भी बढ़ता जाता है।

(vii) पद ही मुख्य व्यवसाय– नौकरशाही संगठन में कार्मिकों से अपेक्षा की जाती है कि पद ही उनका मुख्य व्यवसाय होगा। अपने पद पर कार्य करते हुए वे अन्य कोई व्यवसाय नहीं कर सकता। वह एक पूर्णकालिक कार्मिक होता है, अतः वह अन्य व्यवसाय विधिक रूप से नहीं कर सकता।

(viii) सेवा विकास – नौकरशाही एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें वर्षों तक सेवारत रहता है। ऐसी स्थिति में सेवा में क्रमिक विकास आवश्यक माना जाता है जिसके माध्यम से कार्मिक पद में, वेतन में, उत्तरदायित्व में बढ़ोत्तरी पाता है जिससे उसका मनोबल बढ़ता है। इस व्यवस्था से संगठन में गुणवत्ता बनाये रखने में सहायता मिलती है।

(ix) निर्वैयक्रिता– नौकरशाही की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी निर्वैयक्रिता मानी जाती है। इस अवधारणा का अर्थ है कि आधिकारिक कार्य बिना किसी वैयक्तिक सम्बन्धों पर ध्यान दिये होना चाहिये। यह अच्छा माना जाता है कि प्रशासनिक अधिकारी अपना कार्य करते समय वैयक्तिक आधारों को संज्ञान में न ले और समस्त कार्य नियमानुसार करें।

(x) लिखित दस्तावेज– निर्णय प्रक्रिया में लिखित दस्तावेजों को आधार मानना नौकरशाही की विशेषता है। वेबर के अनुसार प्रशासनिक कानून, निर्णय और नियम बनाये जाते हैं और लिखित रूप उन्हें अभिलिखित किया जाता है। लिखित दस्तावेज पर नौकरशाही कुछ ज्यादा ही विश्वास रखती है। यह आवश्यक भी है क्योंकि लिखित रिकार्ड रखने से प्रशासन जनता के प्रति अधिक जवाबदेह बन जाता है। साथ ही भविष्य में यदि कोई कार्यवाही हो तो उसके सन्दर्भ का कार्य करता है।

नौकरशाही ही विशेषताओं में अनेक विचारकों ने विभिन्न विशेषतायें बताई हैं। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें ऐसी है जिसमें हमें मतान्तर देखने में नहीं मिलता है। ऊपर वर्णित विशेषतायें ऐसी है जिसमें हमें मतेक देखने को मिलता है और इस प्रकार इन्हें हम सामान्य मान सकते हैं।

4.8 नौकरशाही सिद्धान्त की आलोचना

यद्यपि नौकरशाही सिद्धान्त लोक प्रशासन के सिद्धान्तों में से एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है। परन्तु विद्वानों ने इस सिद्धान्त में कई कमियां बताकर इसकी आलोचना की है। आइये यह जानने का प्रयास करें कि वह कौन से महत्वपूर्ण विन्दु हैं जिस पर विद्वानों ने नौकरशाही सिद्धान्त की आलोचना की है। इस आलोचना में मुख्यतः वेबर के नौकरशाही प्रतिमान को ध्यान में रखकर आलोचना की गई है क्योंकि इस सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्तक वही माने जाते हैं।

नौकरशाही प्रतिमान की एक आलोचना इस बात को लेकर की जाती है कि वेबर का नौकरशाही प्रतिमान एक 'यान्त्रिक सिद्धान्त' है जो संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के व्यवहारिक व वैयक्तिक पहलुओं की उपेक्षा करता है और फलतः यह युक्रियात्मक परिणामों को जन्म देता है। वेबर का रूप प्रतिमान सुस्थिर वातावरण में ही प्रभावी रह सकता है न कि बदलते हुये परिवेश में। इस सम्बन्ध रिग्स की आलोचना है कि वेबर का प्रतिमान संक्रमणशील और परिवर्तित होते विकासशील समाजों के

प्रशासन की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता।

रोबर्ट मर्टन का मत है कि नौकरशाही की अपनी संरचना लगातार सदस्यों पर वैधानिक और अनुशासन बद्ध रहने के लिये दबाव बनाये रखती है। प्रशिक्षित अयोग्यता की स्थिति इस प्रकार के संरचनात्मक पक्षों के कारण पैदा होती है। डेवी की व्यावसायिक मनः सन्ताप की अवधारणा का उपयोग करते हुए मर्टन कहते हैं कि नियमों की कठोरता से पालन के कारण व्यक्ति अपने कार्य और व्यवसाय से मानसिक सन्ताप की स्थिति में आ जाता है।

पीटर ब्याऊ ने भी वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की आलोचना अपने ढंग से की है। उनका मत है वेबर के नौकरशाही गतिमान को विभिन्न स्थानों और समयों पर लागू नहीं किया जा सकता। वे वेबर की नौकरशाही की तार्किकता पर भी प्रश्नचिन्ह लगाते हैं।

गुल्डनर का मानना है कि नौकरशाही के तरीके और तकनीकें स्वयं ही अपनी प्रतिक्रियायें उत्पन्न करते हैं। इस व्यवस्था में जैसे ही प्रबंधक अपने अधीनस्थों के व्यवहारों को जानने लगते हैं, वे नये नियमों और प्रावधानों को लागू कर देते हैं। इससे प्रबंधकों और अधीनस्थों के बीच तनाव बढ़ता है। यह एक बड़ी कमी मानी जाती है।

इसके अतिरिक्त पारसन्स ने भी वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की आलोचना प्रस्तुत की है। पारसन्स का कहना है कि वेबर का यह मानना भ्रान्ति है कि संगठन के उच्चाधिकारी तकनीकी रूप से श्रेष्ठ कौशल वाले होते हैं। पारसंस वेबर के इस विचार से सहमत नहीं हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की अनेक विद्वानों भिन्न-भिन्न प्रकार से आलोचना की है और इस प्रतिमान की कमियों को दर्शाया है।

4.9 सारांश

लोक प्रशासन में नौकरशाही सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित हुआ है। इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तक के रूप में मैक्स वेबर का नाम बड़े समझ से लिया जाता है। वेबर के नौकरशाही प्रविमान को एक आदर्श प्रतिमान के रूप में वर्णित किया जाता है। सत्ता अथवा प्राधिकार प्रणालियों का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हुये वेबर इनमें परम्परागत, करिश्माई तथा वैध विवेकपूर्ण प्राधिकार को सम्मिलित करते हैं। पहले में वैधता का दावा 'आदेश की पवित्रता' के आकार पर स्वीकार किया जाता है। दूसरे में व्यक्ति के अप्राकृतिक तथा अतिमानवीय गुण आकार होते हैं तथा अन्तिम सत्ता वैध-तार्किक नियमों पर आधारित होती है। वेबर इस प्रणाली के अन्तर्गत आने वाले प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग को ही नौकरशाही की संज्ञा देते हैं।

नौकरशाही पर वेबर का कार्य आधुनिक युग में पथ-प्रदर्शक माना जाता है क्योंकि वेबर पहले विचारक थे जिन्होंने नौकरशाही का विचार वर्तमान/समकालीन परिपेक्ष्य में प्रस्तुत किया। यद्यपि वेबर ने नौकरशाही की कहीं भी निश्चित परिभाषा का उल्लेख तो नहीं किया है तथापि वे इसकी विशेषताओं की विशद् विवेचना अवश्य करते हैं। वेबर ने नौकरशाही के आदर्श प्रतिमान में निम्न विशेषताओं का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है– प्रशासनिक नियमों के अनुसार कार्य का विभाजन और विशेषीकरण, पद तथा निजी स्थिति का पृथक्करण, पदसोपानिक संगठन, योग्यता के आधार पर भर्ती प्रणाली, प्रशिक्षण, नियमित वेतन प्रणाली, पेन्शन व्यवस्था सेवा विकास के अवसर, लिखित दस्तावेजों का महत्व आदि। सारांशतः हम कह सकते हैं कि नौकरशाही सिद्धान्त की यही कुछ विशेषतायें जिसमें प्रमुख योगदान वेबर का माना जाता है।

4.10 उपयोगी पुस्तकें

- प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबंध : डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया
- प्रमुख प्रशासनिक विचारक : डॉ0 नरेन्द्र कुमार कोरी
- एडमिनिस्ट्रेटिव थिन्कर्स : प्रो0 एस0 आर0 माहेश्वरी
- लोक प्रशासन : शर्मा एवं रुद्राना
- लोक प्रशासन के नये आयाम : प्रो0 मोहित भट्टाचार्या
- एडमिनिस्ट्रेटिव थिन्कर्स : प्रसाद एवं प्रसाद
- मैनेजमेन्ट थाट एण्ड थिन्कर्स : आर0 एन0 संघ

4.11 सम्बंधित प्रश्न :

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
2. वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त में टेलर की भूमिका की समीक्षा कीजिये।
3. वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की विवेचना कीजिये।
4. वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वैज्ञानिक प्रबंध की विशेषता बताइये ?
2. वैज्ञानिक प्रबंध की कमियां बताइये ?
3. नौकरशाही के गुण बताइये ?
4. नौकरशाही के दोष बताइये ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्त निम्न में से किस एक पर मूलतः आधारित है ?
   - (अ) 'अंगूठे के नियम' पर
   - (ब) 'एक सबसे अच्छा रास्ता' पर
   - (स) 'प्रशिक्षण' पर
   - (द) 'पदोन्नति' पर
2. निम्न में से कौन सी एक वैज्ञानिक प्रबंध की विशेषता नहीं हैं ?
   - (अ) समय अध्ययन
   - (ब) सहयोग
   - (स) क्रान्ति

(द) गति अध्ययन

निम्न में से कौन सा एक वेबर के प्राधिकार प्रतिमान का हिस्सा नहीं है?

(अ) पारम्परिक

(ब) विधिक

(स) करिश्माई

(द) वैध-विवेकपूर्ण

निम्न में से कौन सा एक वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की विशेषता नहीं है ?

(अ) पदसोपान

(ब) प्रशासनिक नियम

(स) प्रशासनिक व्यवहार

(द) लिखित दस्तावेज

4.12 प्रश्नोत्तर

1. ब
2. स
3. ब
4. स

इकाई– 5 : परम्परावादी (शास्त्रीय) एवं मानव सम्बन्ध सिद्धान्त

विषय परिचय

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 परम्परावादी (शास्त्रीय) सिद्धान्त की मूल अवधारणा

5.3 परम्परावादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें

5.4 परम्परावादी सिद्धान्त की आलोचना

5.5 सारांश

5.6 मानव सम्बंध सिद्धान्त की मूल अवधारणा

5.7 मानव सम्बंध सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें

5.8 मानव सम्बंध सिद्धान्त की आलोचना

5.9 सारांश

5.10 उपयोगी पुस्तकें

5.11 सम्बंधित प्रश्न

5.12 प्रश्नोत्तर

5.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- परम्परावादी एवं मानव सम्बन्ध सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे,
- दोनों सिद्धान्तों के प्रमुख लक्षणों की विवेचना कर सकेंगे,
- इन सिद्धान्तों के आलोचनात्मक विवरण कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना :

इस इकाई के अन्तर्गत हम लोक प्रशासन के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे। जैसा कि हम अवगत है कि लोक प्रशासन सामाजिक विज्ञान के विषयों में एक आधुनिक विषय के रूप में स्थापित हो रहा है। साथ ही कुछ विचारकों का मानना है कि यह स्थापित हो चुका है। इसका अपना विषय क्षेत्र है। इसके अपने सिद्धान्त है कि जिस प्रकार अन्य विषयों के हैं। इस इकाई के अन्तर्गत हम लोक प्रशासन के दो इन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की मूल अवधारणाओं का अध्ययन करेंगे जिनकी अपनी अलग पहचान दे, अपनी अलग विशेषतायें हैं। यद्यपि अन्य सिद्धान्तों की तरह यह दोनों सिद्धान्त भी प्रशासन में गुणवता एवं कुशलता बनाये रखने में इनके महत्व का विश्लेषण करते हैं।

5.2 परम्परावादी (शास्त्रीय) सिद्धान्त की मूल अवधारणा :

परम्परावादी सिद्धान्त को हम कई नामों से जानते हैं। इसे शास्त्रीय सिद्धान्त के अतिरिक्त विचारकों ने प्रशासनिक प्रबंध सिद्धान्त (Administration Management Theory) की संज्ञा भी दी है। इस सिद्धान्त के प्रवर्तकों में फेयोल, गुलिक डर्विक के नाम प्रमुख माने जाते हैं। इस इकाई में हम इन विचारकों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे। इस सिद्धान्त के विचारकों का मानना है कि संगठन के अपने सिद्धान्त होने आवश्यक हैं जिनके आधार पर संगठन विधिवत कार्य कर सकते हैं। इससे उनमें कुशलता एवं गुणवत्ता बनाये रखने में सहायता मिलती है।

आइये सबसे पहले हम हेनरी फेयोल द्वारा प्रस्तुत परम्परावादी प्रतिमान के अन्तर्गत प्रतिपादित सिद्धान्तों की व्याख्या करें। हेनरी फेयोल को "सार्वभौमिकतावादी" माना जाता है क्योंकि फेयोल ही पहले विचारक थे जिन्होंने प्रशासन (या प्रबंध) की सार्वभौमिकता की वकालत की। उन्होंने कुशासन के कुछ सिद्धान्त सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित किये और उनके सार्वजनिक रूप से लागू किये जाने पर बल दिया। फेयोल प्रशासन की सार्वभौमिकता के साथ-साथ सिद्धान्तों के सृजन के माध्यम से लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के अन्तर को भी नकारते हैं। फेयोल उन विचारकों में प्रमुख है जो लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के भेद को नकारते हैं।

आज हम देखते हैं कि उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध सभी क्षेत्रों में प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। फेयोल स्पष्ट रूप से मानते हैं कि नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय और नियंत्रण के आवश्यक तत्व हैं जो हर प्रकार के उद्यम में आवश्यक होते हैं। इसी तर्क के आधार पर फेयोल निजी प्रशासन तथा लोक प्रशासन के भेद को नकारते हैं। हेनरी फेयोल संगठन की समस्त गतिविधियों को छः समूहों में विभक्त किया है–

(औद्योगिक) : (1) तकनीकी गतिविधियां, (2) व्यापारिक, (3) वित्तीय, (4) सुरक्षात्मक, (5) लेखांकन, (6) प्रबंधकीय गतिविधियां।

फेयोल के अनुसार प्रशासन के पांच तत्व होते हैं :

(1) नियोजन, (2) संगठन, (3) निर्देशन, (4) समन्वय, (5) नियंत्रण।

फेयोल द्वारा औद्योगिक क्रियाओं का जिन छः प्रकार से वर्गीकरण किया गया है उसकी आइये संक्षेप में व्याख्या करें।

(1) तकनीकी गतिविधियां/क्रियायें– फेयोल प्रथम समूह की क्रियाओं को तकनीकी क्रियाओं की संज्ञा देते हैं। तकनीकी क्रियाओं में उत्पादन, विनिर्माण और अनुकूलन सम्बंधी क्रियाओं को शामिल किया जाता है। इन तीनों की प्रकृति तकनीकी होती है और संस्कार के लक्ष्य प्राप्त करने के लिये यह गतिविधियां आवश्यक मानी जाती है।

(2) व्यापारिक/वाणिज्यिक गतिविधियां– उद्योग के लिये व्यापारिक गतिविधियां भी उतना ही महत्व रखती है जितना कि अन्य क्रियायें। इन क्रियाओं में क्रय, विक्रय तथा विनिमय सम्बंधी क्रियाओं को शामिल किया गया है। इन क्रियाओं का ज्ञान भी इतना ही आवश्यक है जितना कि उत्पादन सम्बंधी ज्ञान।

(3) वित्तीय क्रियायें– इनमें पूंजी की प्राप्ति और पूंजी का उपयुक्तम उपयोग सम्बंधी क्रियायें शामिल की जा सकती हैं। पूंजी दर कार्य के लिये आवश्यक होती है। कोई भी औद्योगिक गतिविधि बिना पूंजी के संचालि नहीं की जा सकती। पूंजी की प्राप्ति तथा उसके अनुकूलतम उपयोग के लिये समुचित वित्तीय प्रबंध आवश्यक है।

(4) सुरक्षात्मक क्रियायें– सुरक्षा उद्यम की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। सुरक्षात्मक क्रियाओं में व्यक्तियों और सम्पत्ति की सुरक्षा भी सम्मिलित है। संगठन में कार्यरत व्यक्तियों को यदि अपनी सुरक्षा

का पूर्ण विश्वास होता है तो ही वे संगठन में कुशलतापूर्वक कार्य करने में सफल हो जाते हैं। असुरक्षा के वातावरण में कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः संगठन में सुरक्षात्मक क्रियायें एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

(5) लेखांकन क्रियायें– इसके अन्तर्गत स्टाक परीक्षण, सन्तुलन पत्र, लागतें, आंकड़े आदि सम्बन्धी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। ये सभी लेखांकन सम्बंधी क्रियायें संगठन के स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होती हैं। अतः यह आवश्य होता है कि संगठन की लेखांकन गतिविधियों पर भी उतना ही ध्यान दिया जाय जितना कि संगठन की अन्य क्रियाओं पर।

(6) प्रबंधकीय क्रियायें– हेनरी फेयोल ने प्रबंधकीय अथवा प्रशासनिक क्रियाओं के अन्तिम समूह में रखा है। यह क्रियायें प्रशासन के तत्व कहलाती है। फेयोल के अनुसार प्रबंध करने का आशय नियोजन करना संगठन बनाना, आदेश देना, समन्वय स्थापित करना और नियंत्रण रखना है। फेयोल ने इन पाँचों गतिविधियों को ही प्रशासन का प्रबंध के तत्व कहा है। आइये इन क्रियाओं का संक्षिप्त अध्यक्ष करें।

(i) नियोजन– फेयोल नियोजन तथा पूर्वानुमान को प्रशासन का एक प्रमुख तत्व मानते हैं। नियोजन का सर्वाधिक प्रभावी तत्व 'कार्य की योजना' है। कार्य करने की विधि, उसके चरण आदि का उल्लेख कार्य-योजना में किया जाता है। कार्य की योजना बनाना इस कारण आवश्यक होता है क्योंकि इसी की सहायता से संसाधनों का अधिकतम उपयोग सम्भव है तथा संगठन के लक्ष्य प्राप्ति में यह सहायक होती है।

(ii) संगठन– संगठन प्रबंध के कार्य के रूप में देखा जाता है। सरकारी अभिकरण हो अथवा कोई औद्योगिक इकाई इन्हें संगठित करने का अभिप्राय होता है उसके संचालन के लिये कच्चा माल, उपकरण, पूंजी, कर्मचारी आदि की व्यवस्था करना। संगठन में मानवीय तथा भौतिक पक्ष दोनों ही सन्निहित रहते हैं। संगठन के सम्बंध के फेयोल ने चौदह सिद्धान्तों का भी उल्लेख किया है जिसे हम आगे विश्लेषित करेंगे।

(iii) आदेश देना– इसके अन्तर्गत हम आदेश द्वारा संगठन में कार्यरत व्यक्तियों से अधिकतम कार्य उत्पाद लिये जाने पर बल देते हैं। संगठन के संचालन के लिये आदेश को हम एक आवश्यक तत्व के रूप में देखते हैं। फेयोल के अनुसार आदेश देने की कला व्यक्तिगत गुणों और सामान्य सिद्धान्तों के जान पर निर्भर करती है। आदेश का सिद्धान्त संगठन की संरचना से जुड़ा होता है।

(iv) समन्वय– फेयोल समन्वय के परिभाषित करते हुये कहते हैं कि समन्वय प्रबंध का वह कार्य जिसके माध्यम से संस्थान की विभिन्न गतिविधियों में तालमेल स्थापित किया जाता है जिससे कार्य सुगमतापूर्वक होता रहे और कोई बाधा न पैदा हो। संगठन में कई तरह के कार्य विभिन्न विभागों द्वारा करता है। इस कारण संगठन में समन्वय आवश्यक हो जाता है जिससे विभिन्न विभाग एवं इकाइयों में उचित तालमेल बना रहे।

(v) नियंत्रण– फेयोल नियंत्रण को भी प्रबंध का एक महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। नियंत्रण के माध्यम संगठन विभिन्न इकाईयों तथा विभागों के अन्तर्गत उद्देश्यों की आपूर्ति सुनिश्चित करता है। फेयोल का मत है कि नियंत्रण का अभिप्राय इस बात का सत्यापन करना है कि क्या उपक्रम की प्रत्येक क्रिया अपनाई गई योजनाओं, दिये गये आदेशों तथा स्थापित सिद्धान्त के अनुसार हो रही है या नहीं। इसके माध्यम से संगठन की दुर्बलता को दूर किया जा सकता है।

परम्परावादी (शास्त्रीय) सिद्धान्त में फेयोल के अतिरिक्त हम गुलिक, उरविक आदि के विचारों को भी महत्वपूर्ण माना जाता है। आइये अब संक्षेप में इन विचारकों की अवधारणा का अध्ययन किया जाय।

गुलिक ने संगठन के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिसमें "पोस्डकार्ब" को काफी महत्व मिला। 'पोस्डकार्ब' (POSDCORB) विचार के माध्यम से लूथर मालिक ने कार्यपालका के कार्यों को विभाजित कर उनके महत्व को दर्शाया है। 'पोस्डकार्ब' सात अक्षरों से मिलकर बना शब्द है, जिसका प्रत्येक अक्षर एक विशिष्ट कार्य को दर्शाता है–

P – Planning संयोजन

O – Organising – संगठित करना

S – Staffing – कार्मिक सम्बंधी

D – Directing – निर्देशन/निर्देशित करना

CO – Coordinating – समन्वयन/समन्वय स्थापित करना

R – Reporting – प्रतिवेदन सम्बंधी कार्य

B – Budgetery – वित्तीय प्रबंधन करना

ऊपर लिखित सातों क्रियायें संगठन की संरचना एवं क्रियाकलाप के लिये महत्वपूर्ण बताये गये हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रस्तुत है।

नियोजन– किसी भी कार्य को सुचारू रूप से सम्पादित करने के लिये नियोजन एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण क्रिया मानी जाती है। इसी कारण इसे सबसे पहले किया जाता है। नियोजन का लक्ष्य निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये विभिन्न गतिविधियों की पहचान करना है तथा साथ ही उस क्रम की भी पहचान करना है जिससे हम निर्धारित लक्ष्यों तक प्रभावी ढंग से पहुंच सकें।

संगठित करना– प्रशासन में कार्यपालिका का दूसरा कार्य संगठित करने से सम्बन्धित है। नियोजन के पश्चात् प्रशासन की संरचना के बारे में ध्यान देना आवश्यक माना जाता है। संगठन की स्थापना करने के लिये सत्ता की व्यवस्था की जाती है। सत्ता ही संगठन का हृदय होती है। 'सत्ता की औपचारिक को संगठन कहते हैं जिसके माध्यम से कार्य की उपशाखाओं को प्रबंधित, सुनिश्चित तथा समन्वित किया जाता है ताकि निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। यह मत है गुलिक का।

कार्मिक सम्बंधी– संगठन के कार्यों को करने के लिए कार्मिकों की आवश्यकता होती है। कर्मचारियों की भर्ती करना, उनकी नियुक्ति, पदोन्नति, वेतन, अनुशासन, सेवा सम्बंधी अनेक कार्य आदि ऐसे कार्य है जिनका कि प्रबन्धकों को ध्यान रखना पड़ता है। यह महत्वपूर्ण है कि किसी भी संगठन की कार्यकुशलता उसके कार्मिकों की कार्यकुशलता से जुड़ी होती है, इसलिये कार्मिक प्रशासन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

निर्देशन–निर्देशित करना– निर्देशन का आशय है प्रबंधकों द्वारा प्रशासन की विभिन्न गतिविधियों को करने के लिये अधीनस्थों को आदेश-निर्देश देने से है। अब मुख्य कार्यपालिका का एक महत्वपूर्ण कार्य है कि वह अपने अधीनस्थों को कार्य के दौरान निर्देशित करे और उन्हें आवश्यक आदेश दे ताकि कार्यों को प्रभावी ढंग से पूर्ण किया जा सके तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर बढ़ा जा सके।

समन्वयन–समन्वयन स्थापित करना– कार्यपालिका का एक महत्वपूर्ण कार्य समवन्यन स्थापित करना भी है। समन्वय से जहां तक एक ओर कार्यों में दोहराव टकराव को रोका जा सकता है वहीं दूसरी ओर कार्य को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करने के लिये समन्वय आवश्यक है।

प्रतिवेदन सम्बंधी कार्य : संगठन के अन्तर्गत चल रहे विभिन्न व्यक्तियों के विभिन्न कार्यों की प्रगति की जानकारी रखकर उस पर उचित कार्यवाही करना संगठन की गुणवत्ता के लिये आवश्यक माना

गया है। गुलिक इस कार्य को 'रिपोर्टिंग' अथवा प्रतिवेदन के माध्यम से सम्पन्न कराते हैं।

वित्तीय प्रबंधन करना– वित्तीय प्रबंधन संगठन के आवश्यक कार्यों में है परन्तु गुलिक ने इसे सातवीं प्राथमिकता दी है। इसका सम्बंध सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन से है। प्रशासन और वित्त एक प्रकार से शरीर और छाया की भांति जुड़े हुये हैं इस कारण वित्तीय प्रशासन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

गुलिक के अन्य विचारों को हम इस उपागम को विशेषताः के परिपेक्ष पुनः विश्लेषित करेंगे। गुलिक के अतिरिक्त शास्त्रीय सिद्धान्त के प्रवर्तकों में एक और महत्वपूर्ण नाम उर्विक का भी आता है। आइये हम संक्षेप में उर्विक के विचारों को जानने का प्रयास करें।

उर्विक के अनेक विचार गुलिक द्वारा प्रतिपादित विचारों के साथ जुड़े हुये भी हैं जिनमें 'पोस्डकार्ब' शक का प्रतिपादन किया। उन्होंने संगठन के कतिपय सिद्धांतों का उल्लेख किया है। पहले उन्होंने संगठन के निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया :

1. उद्देश्यों का सिद्धान्त
2. समानता का सिद्धान्त
3. उत्तरदायित्व का सिद्धान्त
4. सोपान सिद्धान्त
5. निमंत्रण का क्षेत्र
6. विशेषीकरण का सिद्धान्त
7. समन्वय का सिद्धान्त
8. परिभाषा का सिद्धान्त

उद्देश्यों के सिद्धान्त से उर्विक का आशय संगठन और इसकी प्रत्येक इकाई भी उद्देश्यों की स्पष्टता और निश्चितता होनी चाहिये। समानता के सिद्धान्त से आशय प्राधिकार और उत्तरदायित्व के बीच समानता से है। उत्तरदायित्व के सिद्धान्त से आशय उच्च अधिकारियों का अपने अधीनस्थों के प्रति उत्तरदायित्व निश्चित होना चाहिये। सोपान सिद्धान्त से आशय संगठन के पदसोपानात्मक सिद्धान्त से है उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों पर नियंत्रण रखते हैं। नियंत्रण के क्षेत्र से आशय है कि प्रशासनिक संगठन में कोई उच्च अधिकारी अपने अधीन कितने कार्मिकों के कार्यों का पर्यवेक्षण प्रभावशाली ढंग से कर सकता है। विशेषीकरण के सिद्धान्त का सम्बंध कार्य विभाजन से माना जाता है। समन्वय का आशय संगठन के विभिन्न अंगों, इकाइयों आदि के कार्यों में तारतम्य का सामंजस्य की स्थापना है। परिभाषा के सिद्धान्त से आशय यह है कि प्रत्येक पद के कर्तव्यों की स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिये।

इस प्रकार उर्विक भी सिद्धान्तों के माध्यम से शास्त्रीय उपागम का विचार प्रस्तुत करते हैं।

5.3 परम्परावादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें :

परम्परावादी सिद्धान्त की मूल अवधारणा का अध्ययन करने के पश्चात् आइये इस सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करें। जैसा कि हमने इस अध्याय के पिछले पृष्ठों में देखा है कि परम्परावादी सिद्धान्त मूलरूप से सिद्धान्तों के माध्यम से संगठन में गुणवत्ता एवं कुशलता लाने का तर्क प्रस्तुत करता है। अतः इस खण्ड में हम उन सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे जो शास्त्रीय सिद्धान्त की विशेषता

मानी जाती है। इन सिद्धान्तों में हम हेनरी फेयोल द्वारा प्रतिपादित संगठन के चौदह सिद्धान्तों को महत्वपूर्ण मानते हैं वे चौदह सिद्धान्त इस प्रकार हैं।

1. कार्य का विभाजन
2. प्राधिकार और उत्तरदायित्व
3. अनुशासन
4. आदेश की एकता
5. निर्देश की एकता
6. व्यक्तिगत हितों का सामान्य हितों के अधीन होना
7. कर्मचारियों को पारिश्रमिक
8. केन्द्रीकरण
9. सोपान-श्रृंखला
10. व्यवस्था
11. समता
12. कर्मचारियों के कार्यकाल का स्थायित्व
13. पहल
14. सहयोग की भावना

आइये अब इन सिद्धान्तों की संक्षिप्त विवेचना करें।

1. कार्य का विभाजन– कार्य विभाजन से आशय कार्य को कुछ भागों में बांट कर प्रत्येक भाग का कार्य कार्यक्रमों के एक विशिष्ट या व्यक्तियों द्वारा किया जाय। इससे समान प्रयत्नों की मात्रा से अधिक उत्पादन करना है।

2. प्राधिकार और उत्तरदायित्व– फेयोल के अनुसार प्राधिकार आदेश देने का अधिकार तथा उसे पालन करवाने की शक्ति होती है। प्राधिकार औपचारिक भी हो सकता है और व्यक्तिगत भी। औपचारिक प्राधिकार पद से सम्बंधित होता है और दूसरा व्यक्तिगत गुणों के कारण। संगठन में प्राधिकार और उत्तरदायित्व परस्पर घनिष्ठ रूप से जुड़े रहते हैं। साथ ही दोनों में समानता भी होनी चाहिये।

3. अनुशासन– अनुशासन संगठन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना गया है। फेयोल कहते हैं कि व्यापार के सुगमतापूर्वक संचालन के लिये अनुशासन अनिवार्य है क्योंकि बिना अनुशासन के कोई उद्यम खुशहाल नहीं हो सकता। अनुशासन किसी भी संस्था में उसके तथा कर्मचारियों के बीच हुये स्थाई समझौते के प्रति स्वीकृति है।

4. आदेश की एकता– फेयोल आदेश की एकता सिद्धान्त के प्रबल समर्थक माने जाते हैं। इसका तात्पर्य है कि एक कर्मचारी को केवल एक ही उच्च अधिकारी द्वारा आदेश दिया जाना चाहिये अथवा अधीनस्थ केवल अपने तुरन्त उच्चअधिकारी से ही आदेश ले। इसके अभाव में एकता कमजोर हो जाती है।

5. निर्देश की एकता– निर्देश की एकता से फेयोल का तात्पर्य है कि समान उद्देश्यवाली क्रियाओं

का संचालन एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिये और कार्य की एक ही योजना होनी चाहिये। फेयोल का मानना था कि दो सिरों वाला शरीर जिस प्रकार असामान्य माना जाता है उसी प्रकार समय उद्देश्यों वाली एक योजना का दायित्व एक से अधिक लोगों के सौंपना असामान्य होता है।

6. व्यक्तिगत हितों का सामान्य हितों से अधीन होना– यह आवश्यक माना जाता है कि संस्था का हित व्यक्तिगत हितों से अधिक महत्वपूर्ण है। फेयोल का सुझाव है कि व्यक्ति को संस्था के हितों को प्राथमिकता देनी चाहिये और अपना हित संस्था के वित्त के अधीन रखना चाहिये।

7. कर्मचारियों को पारिश्रमिक– कर्मचारी जब संस्था के लिये कार्य करते हैं तो उन्हें पारिश्रमिक देना आवश्यक होता है। पारिश्रमिक उनके द्वारा की गई सेवा का मूल्य स्वरूप होता है। पारिश्रमिक की दरें कई बातों पर निर्भर करती है। इन्हें बिना पक्षपात के तथा कर्मचारी को संतोष प्रदान करने वाली होनी चाहिये।

8. केन्द्रीकरण– केन्द्रीकरण वह व्यवस्था मानी जाती है जिसमें संगठन की सत्ता अन्य स्तरों पर केन्द्रित रहती है और निर्णय उच्च स्तर पर लिये जाते हैं। ऐसे में अधीनस्थों का महत्व घटता है।

9. सोपान-श्रृंखला– सोपान-श्रृंखला में ऊपर से लेकर नीचे तक सत्ता की मात्रा फैली रहती है। यह पद सोपानिक व्यवस्था होती है जिसमें सत्ता का विभाजन ऊपर से लेकर नीचे के पदाधिकारियों तक नहीं रहती है। कोई भी व्यक्ति इस श्रृंला से बाहर नहीं होता है।

10. व्यवस्था– फेयोल के अनुसार व्यवस्था का आशय है कि प्रत्येक वस्तु का एक निश्चित स्थान होना चाहिये तथा सही व्यक्ति सही स्थान पर होना चाहिये। फेयोल के मत में व्यवस्था का सिद्धान्त मनुष्यों और वस्तुयें दोनों लागू होता है।

11. समता– संगठन में समता को महत्व देना आवश्यक रहता है। फेयोल का सुझाव है कि प्रबंधकों का यह दायित्व है कि वे संगठन में समता की भावना का विकास करें। समता की भावना संगठन के लिये अन्ततः लाभदायक मानी जाती है।

12. कर्मचारियों के कार्यकाल का स्थायित्व– संगठन में कार्मिकों के कार्यकाल में स्थायित्व को संगठन के लिये लाभदायक होता है। फेयोल संगठन मे स्थायित्व की वकालत करते हैं। स्थायित्व से कार्मिक बेहतर परिणाम दे सकते हैं।

13. पहल– फेयोल के अनुसार पहल (initative) का आशय है एक कार्ययोजना को सोचने की शक्ति और उसे क्रियान्वित करना और तत्पश्चात् उसकी सफलता से सुनिश्चित करना। कार्मिकों में इसे बढ़ावा देना उत्पाद को बेहतर बनाता है।

14. सहयोग की भावना– संगठन में सहयोग भावना कुशलता एवं गुणवत्ता को सुनिश्चित करता है। फेयोल सहयोग की भावना के विकास को आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं कि इसके लिये प्रबंधकों को विशेष ध्यान देना चाहिये।

इस प्रकार हमने देखा कि यह चौदह सिद्धान्त परम्परावादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता कहे जा सकते हैं क्योंकि इसमें से हर एक सिद्धान्त अपने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

5.4 परम्परावादी सिद्धान्त की आलोचना

जहां परम्परावादी सिद्धान्त के अनेक महत्वपूर्ण गुण हैं। वहीं आलोचकों ने इस सिद्धान्त में कुछ कमियां की बतायी हैं। आइये अब उन कमियों की विवेचना करें। इस सम्बन्ध में आलोचकों का मानना है कि फेयोल ने सिद्धान्तों पर आवश्यकता से अधिक बल दिया। इन आलोचकों में पीटर ड्रकर का

नाम प्रमुख है। यद्यपि आलोचक सिद्धान्तों के महत्व से इन्कार नहीं करते परन्तु उनके विचार से इन पर आवश्यकता से अधिक बल देना आलोचना का कारण है। हरबर्ट साइमन ने तो इन सिद्धान्तों के महत्व एवं उनके स्थित्व को ही नकार दिया। साइमन के अनुसार ये सिद्धान्त मात्र 'कहावतें' ही हैं। साइमन की इस आलोचना में इन सिद्धान्तों का वास्तविकता के धरातल पर कम खरा उतरना कहा जा सकता है। साथ ही इन सिद्धान्तों में सार्वभौमिकता की कमी भी सम्भवतः साइमन ने देखी होगी इस कारण इन सिद्धान्तों को बहुत गम्भीरता से नहीं लिया।

ग्राफिक ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उनमें भी आलोचकों ने कमियां देखीं। इसे अत्यधिक यांत्रिक बताते हुये इसमें मानवीय पहलुओं की एक प्रकार से उपेक्षा की भी संज्ञा दी गई। जैसा कि हम जानते हैं कि शास्त्रीय सिद्धान्त मूलरूप से सिद्धान्तों पर ही आधारित है। इस कारण इसके अन्तर्गत मानवीय मूल्यों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। मानवीय मूल्यों के अभाव में परम्परावादी सिद्धान्त नितान्त यांत्रिक रूप ले लेता है। इसी प्रकार के आलोचनात्मक तत्व हमें उर्विक के सिद्धान्तों में भी मिलते हैं। उर्विक द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को भी यांत्रिक बताया गया है जिसमें मानव मूल्यों का अभाव है। परम्पारवादी सिद्धान्त संगठन के औपचारिक स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित रखते हैं तथा सिद्धान्तों के माध्यम से उसे संचालित करते हैं। इन सब प्रक्रियाओं अनौपचारिकता को महत्व कम दिया जाता है। आलोचकों का तर्क है कि अनौपचारिकता संगठन का एक महत्वपूर्ण अंग है जो संगठन के स्वरुप, प्रक्रिया, निर्णयन आदि को काफी हद तक प्रभावित करने की क्षमता रखता है। ऐसी स्थिति में इसके मूल्य को कम करके आलोचना का कारण बनता है।

इस प्रकार हमने देखा कि परम्परावादी या शात्रीय सिद्धान्त यद्यपि संगठन का, लोक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है परन्तु आलोचकों ने कई बिन्दुओं पर इसकी आलोचना प्रस्तुत की है जिसका हमने संक्षिप्त अध्ययन किया। यह अवश्य हम कह सकते हैं कि इस आलोचना से इस सिद्धान्त का महत्व विशेष प्रभावित नहीं होता है, क्योंकि इसके पश्चात् भी संगठन संरचना में इन सिद्धान्तों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

5.5 सारांश

परम्परावादी सिद्धान्त जिसे हम शास्त्रीय सिद्धान्त भी कहते हैं प्रशासन के औपचारिक स्वरूप एवं संरचना को प्राथमिकता प्रदान करता है। साथ ही अनेक सिद्धान्तों के माध्यम से इस सिद्धान्त को दर्शाता है। परम्परावादी सिद्धान्त के प्रमुख विचारकों में हमने हेनरी फेयोल, लूथर गुलिक, उर्विक आदि विद्वानों के विचारों एवं उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का अध्ययन किया। फेयोल पहले विचारक थे जिन्होंने प्रशासन की सार्वभौमिकता को स्पष्ट किया और प्रशासन के तत्वों की विवेचना की। उन्होंने उद्योग की अनेक क्रियाओं का वर्गीकरण किया। लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के विभेद को दरकिनार कर दोनों की एकरूपता की वकालत की। प्रशासन के चौदह सिद्धान्तों की विवेचना फेयोल का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। उन्होंने जिन अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उन्हें आज भी समान रूप से लागू किया जा सकता है। फेयोल के विचार प्रशासन के अध्ययन में एक मौलिक योगदान के रूप में देखे जा सकते हैं।

फेयोल के अतिरिक्त ग्राफिक के विचारों का अध्ययन इस बात का प्रमाण है कि वे भी औपचारिक विचारधारा के प्रबन्ध समर्थक थे। उन्होंने संगठन के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जिनका अध्ययन हम पिछले पृष्ठों में कर आये हैं। ग्राफिक द्वारा प्रतिपादित 'पोस्डकार्ब' का सिद्धान्त प्रशासन के अध्ययन को महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करता है। ग्राफिक के साथ ही उर्विक का भी नाम जुड़ता है जिन्होंने प्रशासन के अनेक सिद्धान्तों की रचना की तथा उनकी व्याख्या प्रस्तुत की। उर्विक भी शास्त्रीय सिद्धान्त के विचारकों के अग्रणी स्थान रखते हैं यद्यपि बहुधा उनका नाम हम ग्राफिक के

साथ ले लेते हैं। परन्तु इससे इनके योगदान एवं उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की महत्ता बराबर विद्यमान है।

इस प्रकार परम्परावादी/शास्त्रीय सिद्धान्त प्रशासन एवं संगठन के सिद्धान्तों में एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखा जा सकता है।

5.6 मानव सम्बंध सिद्धान्त की मूल अवधारणा

वैज्ञानिक प्रबंध की कातेपय असफलता ने विचारकों को इस सिद्धान्त की असफलता के कारणों को जानने के लिये प्रेरित किया। अपने समय में टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धान्त ने प्रशासन तथा प्रबंध में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। वैज्ञानिक प्रबंध के इस सिद्धान्त को 'प्रबंध-क्रांति' के रूप में भी देखा जाने लगा। परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् इस सिद्धान्त की कमियां उजागर होने लगी। कुशलता एवं गुणवत्ता प्रभावित होने लगी। इन सभी ने मिलकर नवीन अनुसंधान को जन्म दिया जिसने बाद में मानव सम्बंध सिद्धान्त का स्वरूप ग्रहण किया। इस खण्ड में इस सिद्धान्त की मूल अवधारणा का अध्ययन करेंगे।

मानव सम्बंध सिद्धान्त अनेक प्रयोगों पर आधारित है। इन प्रयोगों में एल्टन मेयो को प्रमुख रूप से जानते हैं जिन पर मानव सम्बंध सिद्धान्त के मूल अवधारणा विकसित हुई। मानव सम्बंध सिद्धान्त अपने निष्कर्षों पर पहुंचने के पहले अनेक शोध प्रक्रियाओं से गुजरता है। इन प्रयोगों में एल्टन मेयो के कुछ प्रयोग महत्वपूर्ण है। आइये उन प्रयोगों का संक्षिप्त अध्ययन करें। इन प्रयोगों का मुख्य उद्देश्य मानव सम्बन्धों का विस्तृत विश्लेषण कर यह जानने का प्रयास है यह कहां तक उत्पादन क्षमता को प्रभावित करते हैं।

मानव सम्बंध सिद्धान्त में मेयो के 'हार्थोन प्रयोगों' का अत्यधिक महत्व माना जाता है। इससे पहले आइये उस प्रयोग के बारे में भी जान ले जो 'आराम के समय' (Rest Period) से सम्बन्धित है जिसने मनोबल बढ़ाने तथा उत्पाद बढ़ाने में भूमिका निभाई है। इस प्रयोग के माध्यम से मेयो ने सुबह और दोपहर में 10–10 मिनट के दो बार 'आराम के समय' व्यवस्था की। इससे काफी उत्साहजनक परिणाम आये। धीरे-धीरे अन्य श्रमिकों के लिये 'आराम के समय' की व्यवस्था की गई। इससे उदासी कम हुई और उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई। इसके साथ-साथ बोनस की व्यवस्था की गई जिसके तहत अधिक उत्पादन करने पर श्रमिक को बोनस दिया गया। इस व्यवस्था से श्रमिक प्रसन्न थे और उत्पादन भी बढ़ा।

मेयो के 'हाथोर्न प्रयोग' को मानव सम्बंध सिद्धान्त की आधारशिला माना जाता है। ये प्रयोग मेयो तथा उनके सहयोगियों द्वारा अमेरिका के शिकागो शहर की वेस्टर्न एलेक्ट्रिक कम्पनी के हार्थोर्न प्लान्ट में 1924 से 1932 के बीच किये थे। इन प्रयोगों का उद्देश्य इस बात को जानना था कि यदि यदि संगठन के कार्मिकों को अच्छी कार्य दशायें उपलब्ध करायी जायं तो उनके व्यवहार पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है। हाथीर्न कम्पनी में लगभग पच्चीस हजार कर्मचारी कार्यरत थे। उन्हें कम्पनी की ओर से अच्छी सुविधायें दी जा रही थीं फिर भी कर्मचारी सन्तुष्ट नहीं थे। प्रबंधकों ने स्थिति को और अधिक सुविधायें प्रदान की तथा कार्य के भौतिक वातावरण में सुधार किये। परन्तु इससे कोई सकारात्मक परिणाम नहीं आया। इसके पश्चात् मेयों ने अनेक प्रयोग जिसके पश्चात् मानव सम्बंध सिद्धान्त की अवधारणा बनी और सकारात्मक परिणाम मिले। आइये संक्षेप में इन प्रयोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

1. प्रकाश प्रयोग :

मेयो के हाथोर्न प्रयोगों में 'प्रकाश प्रयोग' पहले प्रयोग के रूप में देखे जाते हैं। इस प्रयोग का मुख्य

उद्देश्य इस बात का परीक्षण करना था कि प्रकाश व्यवस्था में परिवर्तन का कर्मचारी की दक्षता और उत्पादकता पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस प्रयोग से पहले दक्षता–विशेषज्ञों का यह मानना था कि अधिक प्रकाश होने से उत्पादन बढ़ता है। इस बात का परीक्षण करने के लिये कर्मचारियों के दो समूह चुने गये। एक समूह प्रयोगात्मक या परीक्षणात्मक समूह या जिसको "कि प्रकाश की परिवर्तित होती मात्रा के अधीन कार्य करना था दूसरा समूह नियंत्रित समूह था जिसको कि प्लांट की सामान्य प्रकाश व्यवस्था में ही कार्य करना था। इस प्रयोग के दौरान जैसे ही प्रकाश बढ़ाया गया वैसे ही पूर्वानुमानित प्रयोगात्मक या परीक्षणात्मक समूह का उत्पादन बढ़ गया। पर आश्चर्यजनक रूप से बिना प्रकाश बढ़ाये ही नियंत्रित समूह का उत्पादन भी बढ़ गया। इस घटना के बाद में अलग-अलग व्यवस्थायें की गई। इसमें तीन प्रमुख बातें निम्नवत हैं।

1. मानवीय कर्मचारी सम्भवतः पूर्णतया मशीन के समान नहीं हैं।
2. वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के कर्मचारी प्रकाश या प्रकाश की अनुपस्थिति के अलावा भी अन्य करों (Variable) के प्रति प्रतिक्रिया कर रहे हैं जो कि उन्हें अभिप्रेरित करते हैं।
3. वे कमजोर कार्य दशाओं के बावजूद अधिक उत्पादन कर रहे थे क्योंकि वे जानते थे कि उनको देखा जा रहा है।

इन प्रयोगों की सफतला के उपरान्त मेयो एवं उनके साथियों ने कई अन्य प्रयोग किये। इन प्रयोगों में 'मिले असेम्बली' टेस्ट रूप प्रयोग, साक्षात्कार अध्ययन, मानवीय भावनायें और अभिवृत्तियां, बैंक वायरिंग अवलोकन प्रयोग आदि प्रमुख बताये जाते हैं। परन्तु हाथोर्न प्रयोग के विन्दु भी अन्य प्रयोगों के अन्तर्गत भी अध्ययन के केन्द्र बने। इस कारण हाथोर्न प्रयोगों को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। हाथोर्न प्रयोगों का प्रभाव लम्बे समय तक देखने को मिलता है और आज भी प्रयोगों की प्रांसगिकता रखते हैं। इन्हीं प्रयोगों के बाद मानवीय सम्बन्धों पर ध्यान दिया जाना प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार हाथोर्न प्रयोगों का सर्वप्रथम परिणाम उद्योग के 'मानवीय तत्व' की स्थापना रहा। इसके बाद उद्योग में मानवीय तत्व का महत्व समझा गया। उन्होंने संगठन में मानवीय तत्व के महत्व को उजागर किया तथा प्रमाणित किया कि उत्पादकता श्रमिक को शारीरिक क्षमता पर ही निर्भर नहीं होती। इन प्रयोगों के बाद ही उद्यम में कर्मचारी को मशीन के पुर्जे के स्थान पर 'एक व्यक्ति' की पहचान मिली। मेयो ने यह भी प्रदर्शित किया कि मनुष्य केवल 'आर्थिक प्राणी' नहीं है जो कि आर्थिक तत्वों से ही अभिप्रेरित होता है।

इनके अतिरिक्त हार्थोन प्रयोगों का एक और महत्वपूर्ण परिणाम अनौपचारिक संगठन के महत्व से सम्बंधित कहा जा सकता है। किसी भी औपचारिक संगठन को एक अनौपचारिक समूह होता है जिसमें व्यक्ति अलग-अलग भूमिकायें निभाता है। एक साथ कार्य करते रहने से कर्मचारियों के बीच सामाजिक सम्बंध विकसित हो जाते हैं। संगठन के कार्य संचालन प्रक्रिया में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अभिप्रेरणा को एक नये दृष्टिकोण से स्पष्ट करना भी हार्थोन प्रयोगों का एक विशेष परिणाम हैं। मेयो का मानना था कि व्यक्ति को केवल आर्थिक प्राणी नहीं माना जाना चाहिये। सामाजिक सम्बन्धों को महत्व, अनौपचारिक संगठन की स्थापना, कर्मचारियों की भावनाओं पर ध्यान देकर उन्हें अभिप्रेरित किया जा सकता है। मनोबल का सम्बंध भी संगठन के उत्पादन से जोड़ा जा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त सभी तत्व मानव सम्बंध सिद्धान्त की मूल अवधारणा से जुड़े हैं। यह सिद्धान्त मानव मूल्यों को संगठन की संरचना एवं उसकी प्रक्रिया में प्राथमिकता के आधार पर विश्लेषित करते हैं। यही तत्व इस सिद्धान्त को अन्य संगठन या प्रशासन के अन्य सिद्धान्तों से अलग पहचान बताता है।

5.7 मानव सम्बन्ध सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें :

हाथोर्न प्रयोगों के पश्चात् लोकप्रिय हुये मानव-सम्बंध सिद्धान्त का केन्द्र बिन्दु 'मानव व्यवहार' है। अनेक प्रयोगों के माध्यम से यह तथ्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि मानव सम्बन्धों का प्रशासनिक कुशलता एवं संगठन की गतिशीलता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मानव सम्बन्धों को परिभाषित करते हुये कीथ डेविस का कथन है कि मानवीय सम्बंध मनुष्यों की कार्य दशाओं के साथ इस प्रकार का एकीकरण है जिसमें उन्हें आर्थिक मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक संतोष सहित उत्पादकता एवं सहयोगात्मक रूप से कार्य करने की प्रेरणा मिलती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव सम्बंध सिद्धान्त का विचारधारा है जो संगठन के अध्ययन के क्रम में 'मानव सम्बंधों को महत्वपूर्ण मानती है तथा मुख्यतः नियोक्ता एवं कार्मिकों के बीच सहयोग पर बल देती है।

वस्तुतः संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के मध्य व्याप्त मानव सम्बंध सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं क्योंकि ये सम्बंध वे है जो सामान्यतः कम ही दिखाई देते हैं साथ ही कम मुखर होते हैं। पूंजी, मशीन, तकनीक, सामग्री आदि संसाधनों की तुलना में मानव-सम्बंध गौड़ ही माने गये हैं। अतः उत्पादन या संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में मानव-सम्बंधों का महत्व भी कम ही आंका जाता है। परन्तु संगठन में मानव-सम्बधों का सर्वाधिक महत्व है, इस तथ्य को अब सामान्य रूप से स्वीकारा जा रहा है। निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से हम इसे स्पष्ट कर सकते हैं :

1. संगठन में मानव-सम्बंध के विशेष महत्व को स्वीकार करते हैं।
2. इससे मानव संसाधन की पूर्ण क्षमता का उपयोग करने में सहायता मिलती है।
3. इसके द्वारा मानव आकांक्षाओं की पूर्ति होती है।
4. अच्छे मानव सम्बंध औद्योगिक शान्ति के लिये आवश्यक हैं।
5. प्रबंधकीय कार्यों में मानव-सम्बंध सहायक सिद्ध होते हैं।
6. इससे मानवीय समस्यायों का सकारात्मक समाधान होने में सहायता मिलती है।
7. मानव-सम्बन्धों के द्वारा संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता मिलती है।
8. अनौपचारिक संगठनों की प्रक्रिया की यह धुरी होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव-सम्बंध सिद्धान्त इन्हीं कुछ विचारों पर प्राथमिकता प्रदान करते हुये संगठन की संरचना, प्रक्रिया में गुणवत्ता प्रदान करते हैं। आइये अब इन्हीं से निकली मानव-सम्बंध सिद्धांत की कुछ विशेषताओं का अध्ययन करें। इन विशेषताओं को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं–

1. यह सिद्धान्त इस मान्यता को मानकर चलता है कि प्रत्येक मनुष्य मशीन या मशीन का कोई पुर्जा नहीं है। इसके विपरीत वह सजीव, संवेदनशील तथा अपने विचारों से युक्त एक इकाई है जो समूह के विचारों से प्रभावित होता है।

2. संगठन के कार्मिकों के एकीकरण, सामूहिकीकरण तथा अन्तरसम्बन्धों की प्रक्रिया ही मानव-सम्बंध है जो प्रत्येक संगठन में विद्यमान होते हैं।

3. संगठन में कार्यरत मनुष्य 'सामाजिक मनुष्य' है जो समूह के द्वारा निर्धारित मापदण्डों तथा प्रतिमानों से प्रभावित होता है तथा स्वयं की समस्याओं के कारण संगठन के कार्यकलाप को प्रभावित करता है।

4. यह सिद्धान्त मानता है कि नियोक्ता एवं कार्मिकों के मध्य सम्बंध हमेशा कानूनों या नियमों से निर्धारित-संचालित नहीं होते हैं बल्कि ये सम्बंध कानूनी तत्वों की अपेक्षा नैतिक और मनोवैज्ञानिक

तत्वों के सम्बंधित होते हैं।

5. यह सिद्धान्त व्यक्तियों तथा उसकी अभिप्रेरणाओं पर बल देता है जिससे संगठन के समस्त संसाधनों का सदुपयोग हो सके।

6. इस सिद्धान्त के समर्थकों का मानना है कि औपचारिक संगठनों के कार्यकलापों को समझने के लिये अनौपचारिक संगठनों का अध्ययन आवश्यक है।

7. यह सिद्धान्त कार्मिकों की संतुष्टि, इनकी समस्याओं, प्रबन्ध में सहभाकिता, अनौपचारिक सम्बंध तथा संगठन के आंतरिक सामाजिक मनोवैज्ञानिक पर्यावरण को समझने पर बल देता है।

8. इसके अन्तर्गत आर्थिक अभिप्रेरणाओं के स्थान पर अनार्थिक एवं अन्य विशिष्ट अभिप्रेरणाओं का पता करने का प्रयास किया जाता है।

9. इस सिद्धान्त में मानव समूहों को अव्यवस्थित, स्वार्थी तथा निरुद्देश्य मानने के बजाय सकारात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है।

10. यह सिद्धान्त संगठन में कार्यरत कार्मिकों के व्यक्तिगत हितों तथा संगठनात्मक उद्देश्यों के मध्य समन्वय स्थापित करने पर बल देता है।

11. यह सिद्धान्त स्वीकार करता है कि कोई भी फैक्ट्री या प्राशसनिक संगठन केवल कार्यस्थल मात्र नहीं है बल्कि वह एक सामाजिक संगठन है जिसमें सभी व्यक्ति सामूहिक रूप से कार्य करते हैं।

12. इसमें अनुशासन, कार्य संचालन, सन्तुष्टि के साथ-साथ कार्मिकों की कार्य क्षमताओं में सकारात्मक वृद्धि की दिशा में प्रयास करने की अनुशंसा की जाती है।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त चेस्टर वरनार्ड के विचार भी मानव-सम्बंध सिद्धान्त पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। उनके अनुसार किसी भी संगठन में मानवीय व्यवहार के दर्शन तब तक नहीं किये जा सकते जब तक कि अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों तथा आर्थिक हितों को दूसरे स्थान पर नहीं धकेल दिया जाता। अतः मानव-सम्बंध सिद्धान्त विशेष रूप से मानवीय मूल्यों पर बल देता है। अनेक अनुसंधानों के माध्यम से यह तथ्य स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि संगठन में मानव-सम्बंधों का विशिष्ट महत्व है, इनको नकार कर संगठन प्रगति नहीं कर पाता है।

5.8 मानव-सम्बंध सिद्धान्त की आलोचना :

प्रशासन तथा संगठन के अध्ययन में यद्यपि मानव-सम्बंध सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है फिर भी अनेक विद्वानों ने इस सिद्धान्त की कई बिन्दुओं पर आलोचना की है। जैसा कि हम अध्ययन कर चुके हैं कि यह सिद्धान्त मानव-सम्बन्धों पर विशेष रूप से आधारित है। यही विचार इस सिद्धान्त की आलोचना का कारण भी बनता है। व्हाइट ने मेयो की यह कह कर आलोचना की है कि उन्होंने कर्मचारियों के व्यक्तिगत जीवन में नियोक्ताओं के हस्तक्षेप को प्रोत्साहित किया है। एक अन्य विचारक शेपर्ड का मत है कि भेदों ने स्वतंत्र समाज में यूनियनों अन्य कर्मचारी संगठनों की भूमिका को नजरअन्दाज किया है। कुछ लोग तो मेयो को यूनियन विरोधी और प्रबंधकों का पक्षकार बातते हैं।

मानव-प्रबंध सिद्धान्त की ऊपर विवेचित आलोचनात्मक बिन्दुओं के अतिरिक्त यह कह कर भी आलोचना की गई है कि उन्होंने सामाजिक सम्बन्धों पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है। यद्यपि संगठन में मानव-सम्बंधों के महत्व को सामान्यतया स्वीकार किया जाने लगा है परन्तु इस बिन्दु पर अत्यधिक बल दिये जाने की आलोचना विचारक करते हैं। पीटर ड्रकर का आरोप है कि मानवीय सम्बंध विचारधारा में आर्थिक पहलुओं की उपेक्षा की गई है। इस सिद्धान्त के प्रमुख विचारक मेयो को अतिभावनात्मक मानकर भी उनकी एवं उनके सिद्धान्त की आलोचना की गई है।

मानव-सम्बंध उपागम के विचारकों को 'भीरू समाजशास्त्री' (Cow Sociologist) बताया है जो केवल कार्मिकों को पुचकारने में विश्वास रखते हैं। इससे कार्मिकों की वास्तविक समस्याओं का शायद ही कभी हल निकल सके। मानव-सम्बन्ध उपागम में सहयोग तथा समन्वय को ही महत्वपूर्ण माना है जबकि 'संघर्षों' को बुरा मानकर छोड़ दिया गया है। आलोचकों का कहना है कि संघर्ष ही संगठन को नवजीवन प्रदान करते हैं। इससे प्रतियोगिता एवं प्रगति का मार्ग खुलता है। आलोचकों का यह भी कहना है कि यह उपागम न तो सर्वथा नये विचारों का विकास कर पाया है और न ही कार्य संस्कृति का विकास कर पाया है। अतः इसकी मान्यतायें सर्वांगीण नहीं कही जा सकती हैं।

5.9 सारांश :

हमने पिछले पृष्ठों में देखा कि मानव-सम्बंध सिद्धान्त मुख्यतः एल्टन मेयो के 'प्रकाश प्रयोगों' से आरम्भ हुआ जिन्होंने यह स्पष्ट किया कि उत्पादन केवल भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता। साथ ही अन्य प्रयोगों से श्रमिकों के उत्पादन पर सामाजिक कारकों के प्रभावों को आंका गया और निष्कर्ष निकाला गया कि श्रमिकों की कार्यक्षमता और उत्पादन पर सामाजिक कारकों का गम्भीर प्रभाव पड़ता है।

हाथोर्न प्रयोगों के परिणाम तीव्र और स्पष्ट थे। इन्होंने संगठन में मानवीय तत्व की स्थापना की जिसे अब तक मशीन का पुर्जा मात्र समझा जाता था। प्रयोगों का एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम अनौपचारिक संगठनों के महत्व के रूप में सामने आया। अभिप्रेरण के गैर-आर्थिक प्रोत्साहनों को महत्व दिया जाना भी हाथोर्न प्रयोगों का एक महत्वपूर्ण परिणाम है। यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि व्यक्ति के मनोबल को बनाये रखने तथा उसे अभिप्रेरित करने के लिये केवल आर्थिक प्रलोभन ही पर्याप्त नहीं होते हैं।

इस प्रकार मानव-सम्बंध सिद्धान्त एक ऐसे सिद्धान्त के रूप में स्थापित हुआ है जिसने प्रशासन एवं संगठन में मानव-सम्बन्धों को विशेष महत्व दिया। औपचारिक संगठन की संरचना एवं प्रक्रिया में अनौपचारिक संगठन के महत्व को भी दर्शाया। अतः सारांशतः मानव-सम्बंध इन्हीं बिन्दुओं को आधार मानकर उपागम की रचना करता है।

5.10 उपयोगी पुस्तकें

1. प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबंध : डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया
2. प्रमुख प्रशासनिक विचारक : नरेन्द्र कुमार थोरी
3. एडमिनिस्ट्रेटिक थिंकर्स : एस0 आर0 माहेश्वरी
4. एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स : प्रसाद एवं प्रसाद

5.11 सम्बंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. परम्परावादी सिद्धान्त की मूल अवधारणा की विवेचना कीजिये।
2. परम्परावादी सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिये।
3. मानव सम्बंध सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिये।
4. मानव सम्बंध उपागम की कमियों की विवेचना कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पोस्डकार्ब (POSDCORB) शब्द की व्याख्या कीजिये।
2. उर्विक के विचारों की संक्षिप्त विवेचना कीजिये।
3. अभिप्रेरणा की परिभाषा कीजिये।
4. अनौपचारिक संगठन के महत्व को समझाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. परम्परावादी सिद्धान्त निम्न में से किस एक से सम्बंधित नहीं है ?
   - (अ) नियोजन
   - (ब) नियंत्रण
   - (स) निर्माण
   - (द) निर्देशन
2. निम्न में से कौन का विचारक परम्परावादी सिद्धान्त से सम्बंधित नहीं है ?
   - (अ) फेयोल
   - (ब) फोकेर
   - (स) गुलिक
   - (द) उर्विक
3. एल्टन मेयो निम्न में से किस सिद्धान्त से सम्बंधित है ?
   - (अ) प्रशासकीय-प्रबंध सिद्धान्त
   - (ब) शास्त्रीय सिद्धान्त
   - (स) व्यवहारवादी सिद्धान्त
   - (द) मानव-सम्बंध सिद्धान्त
4. निम्न में से कौन मानव-सम्बंध सिद्धान्त की मान्यता नहीं है ?
   - (अ) मनुष्य केवल मशीन नहीं है
   - (ब) संगठन में अनौपचारिक संगठन महत्वपूर्ण हैं
   - (स) संगठन में मानवीय तत्व महत्वपूर्ण है
   - (द) संगठन में औपचारिकता महत्वपूर्ण है।

5.12 प्रश्नोत्तर

1. (स)
2. (ब)
3. (द)
4. (द)

इकाई – 6 : व्यवस्था, परिस्थिति उपागम तथा निर्णय निर्माण

विषय परिचय

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 व्यवस्था उपागम की मूल अवधारणा एवं विशेषतायें

6.3 व्यवस्था उपागम की आलोचना

6.4 सारांश

6.5 परिस्थिति उपागम की मूल अवधारणा एवं विशेषतायें

6.6 परिस्थिति उपागम की आलोचना

6.7 सारांश

6.8 निर्णय निर्माण की अवधारणा एवं प्रक्रिया

6.9 निर्णय निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक एवं निर्णयन के प्रतिमान

6.10 निर्णय निर्माण की आलोचना

6.11 सारांश

6.12 संदर्भ ग्रंथ/उपयोगी पुस्तकें

6.13 सम्बंधित प्रश्न

6.14 प्रश्नोत्तर

6.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- व्यवस्था तथा परिस्थिति उपगम और निर्णय निर्माण की मूल अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे।
- इनकी प्रमुख विशेषताएँ की विवेचना कर सकेंगे।
- इन सिद्धान्तों के आलोचनात्मक विवरण कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना :

प्रशासन एवं संगठन के अध्ययन में सिद्धान्तों का अपना महत्व है। इस कारण पिछली इकाइयों में हमने कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में हम जिन सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे इनमें व्यवस्था एवं परिस्थिति में सम्बंधित हैं। प्रशासन में अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की श्रृंखला में इनका अपना महत्व है। इसके साथ हो हम निर्णय निर्माण का भी अध्ययन करेंगे। निर्णय निर्माण प्रशासन की एक महत्वपूर्ण क्रिया जिसे हम प्रशासन का आधार मानते हैं। इस प्रकार एक इकाई इन

तीन विशिष्ट विचारों से सम्बंधित अध्ययन प्रस्तुत करेगी।

6.2 व्यवस्था उपगाम की मूल अवधारणा एवं विशेषतायें :

प्रशासन एवं संगठनात्मक सिद्धान्तों के विकास में व्यवस्था उपागम की अवधारणा एक महत्वपूर्ण कदम है जो संगठनात्मक विश्लेषण में सहायता करती है। विचारकों का मानना है कि व्यवस्था उपागम जिसे हम आधुनिक सिद्धान्त भी कहते हैं, का विकास अधिकतर 1950 के उपरान्त हुआ। यह उपागम संगठनों को सम्पूर्ण व्यवस्था के रूप में आंकता है। कुछ विचारकों का मत है कि यह उपागम साइबरनेटिक्स से भी साम्यता रखता है। यह भी माना जाता है कि प्रबंध विज्ञान तथा लोक प्रशासन में यह उपागम "वैज्ञानिक प्रबंध विचारधारा" के माध्यम से अधिक सशक्त ढंग से सामने आया है। यह सभी तत्वों, संगटन तथा उसके संघटक भागों (Component Parts) पर विचार करता है। यह संगठन को अनुकूली व्यवस्था (adaptive system) मानता है। यह सिद्धान्त संगठन तथा इसके पर्यावरण को एक-दूसरे पर आश्रित मानता है– संसाधनों के लिये एक-दूसरे पर आश्रित है।

वस्तुतः व्यवस्था उपागम की महत्ता व्यवहारवाद की कमियों के कारण बढ़ी हैं। राजनीति विज्ञान में इस उपागम को 1953 में राजनीतिशास्त्री डेविड ईस्टन में अपनी पुस्तक को 1953 में राजनीतिशास्त्री डेविड ईस्टन ने अपनी पुस्तक "दो पोलिटिकल सिस्टम" के माध्यम से उपयोगी बताते हुये सभी सामाजिक विज्ञानों को एक सूत्र में पिरोने, एक सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त बनाने तथा सर्वस्वीकार्यता का विचार प्रस्तुत किया था। राबर्ट मर्टन तथा टाल्कॉट पारसंस नामक समाजशास्त्री ऐसा प्रयास कर चुके थे। लेकिन ऐसा माना जाता है कि व्यवस्था उपागम की प्रारम्भिक जानकारी पयेरो की "द रिपब्लिक" में वर्णित थी। इस उपागम को विकसित रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय समाजशास्त्री टालकॉट पारसंस को दिया जाता है। लोक प्रशासन में इस उपागम को विकसित तथा प्रयुक्त करने के लिये साइमन तथा बर्नार्ड अग्रड़ी हैं। इसके अतिरिक्त फॉलेट, सेल्जनिक, वाइनर आदि अन्य विद्वान हैं।

सामान्य व्यवस्था उपागम वह पद्धति है जो समस्त सामाजिक विद्वानों में एकता स्थापित करने का प्रयास करती है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह उपागम 'व्यवस्था' को केन्द्र-बिन्दु मानता है। व्यवस्था में वस्तुओं या तत्वों के समूह का ऐसा स्वरूप समाहित है जो विशिष्ट संरचनात्मक सम्बंधों और निश्चित प्रक्रियाओं के आधार पर परस्पर अन्तरक्रियाशील तथा सम्बंधित रहती है।

यहां महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि आखिर 'व्यवस्था' की परिभाषा क्या है ? इसका अर्थ क्या है? विचारकों का मानना है कि यह शब्द सामान्यतः दो विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करता है–

1. प्रथम, वैज्ञानिक मानते हैं कि जब वस्तुयें, महत्वपूर्ण ढंग से परस्पर सम्बद्ध हो तथा उनकी आपसी निर्भरता बहुत अधिक हो तो वह 'व्यवस्था' कहलाती है। व्यवस्था गतिशील या परिचालित होनी चाहिये जिसे समय एवं स्थान के संदर्भ में विभिन्न विषयों के वैज्ञानिकों द्वारा समझा जा सके।

2. द्वितीय विचारधारा यह मानती है कि जब तक किसी वस्तु के शोध के लिये तथ्य - संकलन, विश्लेषण तथा निर्देशन में सहायता नहीं मिले तब तक उसे व्यवस्था नहीं कहा जा सकता है चाहे उसके अंग परस्पर कितने ही निर्भर एवं क्रियाशील हों।

सामान्यरूप से व्यवस्थायें दो प्रकार की होती है–

(अ) बन्द व्यवस्था (Closed System)

(ब) खुली व्यवस्था (Oper System)

बन्द व्यवस्था उस व्यवस्था को कहते हैं जो बाहरी वातावरण से कोई अन्तरक्रिया नहीं करती है। ऐसी व्यवस्था कठोर तथा स्थायी प्रकृति की होती है जिसमें सूचनातंत्र बन्द तथा नियंत्रणकारी तंत्र इस स्थिति में होता है कि वह वांछित परिणाम प्राप्त कर सकें अर्थात् व्यवस्था की प्रक्रियाओं पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

दूसरी ओर खुली व्यवस्था वह होती है जो बाहरी वातावरण पर निर्भर रहती है। क्योंकि खुली व्यवस्था का अस्तित्व बाहरी वातावरण पर ही निर्भर करता है। खुली व्यवस्था के अध्ययन में इन सभी सम्भावित प्रभावों को देखा जाता है जो कि वातावरण के द्वारा व्यवस्था पर पड़ते हैं या डाले जाते हैं। सभी जीवित प्राणी, वनस्पति तथा मानवीय संगठन, खुली व्यवस्थायें हैं।

काट्ज तथा काहन ने अपनी पुस्तक `The Social Psychology of Organisation'' के माध्यम से खुली व्यवस्था की निम्नांकित विशेषतायें बताई हैं –

1. खुली व्यवस्था बाहरी वातावरण से ऊर्जा प्राप्त करती है।

2. प्राप्त ऊर्जा का अन्य तत्वों के बदले में व्यवस्था, उत्पादन या (Out put) वातावरण को देती है।

3. जीवित व्यवस्थाओं में Input के रूप में ऊर्जा पदार्थ ही नहीं बल्कि अन्य तत्व विचार प्रभाव तथा कारक भी हो सकते हैं।

मिलर एव राइस कहते हैं– किसी भी उद्यम को एक खुली व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है। इसमें जीवों के समान लक्षण हैं। कोई भी खुली व्यवस्था अपने वातावरण के साथ चीजों के आदान-प्रदान द्वारा ही अस्तित्व में रह सकती है।

व्यवस्था उपागम् संगठन, का वह सिद्धान्त कहा जा सकता है जिसने विभिन्न तत्वों, जीवों, वस्तुओं में सामान्जस्य स्थापित करने पर प्राथमिकता के आधार पर बल देता है। यह कहा जा सकता है कि कोई भी संगठन शून्य में कार्य नहीं करता है। यह विराट पर्यावरण में एक सूक्ष्म इकाई ही होता है जो आदान-प्रदान के आधार पर अपना अस्तित्व बनाये रखता है तथा प्रगति के मार्ग पर प्रशस्त होता है। हम इसे व्यवस्था उपागम की मूल अवधारणा का आधार मान सकते हैं। अब संक्षेप में व्यवस्था उपागम की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करें।

मान्यतायें एवं विशेषतायें

प्रशासन तथा संगठन के अध्ययन में व्यवस्था को केन्द्र बिन्दु मानकर अध्ययन करने के सम्बंध में यह उपागम महत्वपूर्ण है। इस उपागम का प्रयोग विश्लेषण के किसी भी स्तर पर किया जा सकता है। बहुधा इसे एक सर्वांगीण (Holiotic) तथा व्यापक उपागम माना जाता है। यह उपागम मानव शरीर, समाज, परिवार आदि सभी को एक व्यवस्था के रूप में देखता है। इस व्यवस्था उपागम की मूल मान्यतायें निम्न प्रकार से हैं–

1. प्रत्येक व्यवस्था कई उपव्यवस्थाओं (Subsystems) में विभक्त रहती है जो व्यवस्था को संचालित करने में सहायक होती हैं। संगठनों में उत्पादन, निगरानी, तकनीकी तथा प्रबंधकीय इकाइयां आदि उप-व्यवस्थायें दी हैं।

2. व्यवस्था का प्रत्येक अंग या भाग परस्पर अन्तरनिर्भर होते हैं। एक के बिना दूसरे का कार्य संचालन असंभव हो जाता है।

3. व्यवस्था अपने आस-पास के पर्यावरण से काल्पनिक सीमायें रखती है।

4. व्यवस्था तथा उसके वाह्य पर्यावरण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

5. पर्यावरण अपने आप में एक व्यवस्था है।

6. व्यवस्था तथा पर्यावरण के मध्य संतुलन रहता है।

7. किसी खुली व्यवस्था के कारक हैं– भौगोलिक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था, प्रौद्योगिकी व्यवस्था।

8. व्यवस्था एक गतिशील प्रक्रिया होती है। यह उपागम सम्पूर्ण व्यवस्था को प्रभावशीलता की दृष्टि से आंकता है।

9. व्यवस्था में कुछ इनपुट (Input) डाले जाते हैं या इसके संचालन में काम करते हैं जो आउटपुट (Output) के रूप में (निर्णय के) सामने आते हैं।

10. प्रत्येक आउटपुट (Output) (निर्णय) अगले इनपुट (Input) का कार्य करता है।

अब कुछ अन्य विचारकों द्वारा बतायी गई विशेषताओं का अध्ययन करें जो हमें व्यवस्था दृष्टिकोण को समझने में हमारी सहायता करते हैं। हिक्स तथा गुलेट ने व्यवस्था उपागम की निम्नांकित विशेषताओं को उल्लिखित किया है–

1. व्यवस्था दृष्टिकोण की गतिशीलता

2. बहुस्तरीय तथा बहुपक्षीय तंत्र

3. बहुप्रेरित सम्भावनायें

4. बहुशास्त्रीय उपागम

5. वर्णनात्मक

6. बहुतत्वपूर्ण

7. अनुकूलिक

इसके अतिरिक्त चर्चमैन के अनुसार व्यवस्था उपगाम के मूलभूत विचार यह है–

1. व्यवस्था के सभी उद्देश्य तथा व्यवस्था के निष्पादन के साधन।

2. एक प्रतिबंध के रूप में कार्य कर रहे व्यवस्था का वातावरण।

3. व्यवस्था के संसाधन जो निष्पादन में प्रयोग किये जाते हैं।

4. व्यवस्था के अवयव तथा इसके कथ्य एवं गतिविधियां।

5. व्यवस्था को प्रबंधन (नियमन तथा निर्मयन पक्ष)

व्यवस्था उपागम जिसे आधुनिक तथा सर्वांगीण उपागम भी कहा जाता है, वह शास्त्रीय उपागम से सर्वथा भिन्न है। यह भिन्नता कई तत्वों का अध्ययन करके या तुलना करके हम देख सकते हैं।

6.3 व्यवस्था उपागम की आलोचना

अन्य सिद्धान्तों की भांति व्यवस्था सिद्धान्त के अपने कुछ गुण हैं तथा कुछ कमियां भी है। इस प्रखण्ड में हम व्यवस्था उपागम को आलोचनात्मक पक्ष का अध्ययन करेंगे। विचारकों का मानना है कि व्यवस्था उपागम का समाज विज्ञानों में भरपूर प्रयोग हुआ है फिर भी इसकी सीमायें हैं। इनका विचार है कि यह उपागम केवल अध्ययन की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। वास्तव में सिद्धान्त नहीं है और न ही वह व्यक्ति प्रशासन के सिद्धान्तों के बारे में वास्तविक प्रकट कर सकता है। साथ ही यह उपागम

एक-दूसरे अंगों के मध्य सम्बन्धों को तो बताता है किन्तु सम्बंधों की गहराई बताने में असमर्थ है। व्यवस्था उपागम में उपव्यवस्थाओं को खोजना तथा उसकी सूची बनाना एक कठिन कार्य है। आलोचकों का यह भी मानना है कि यह उपागम कभी-कभी अति महत्वाकांक्षा उत्पन्न करता है।

इस उपागम की एक आलोचना यह भी की जाती है कि यह उपागम व्यवस्था एक पर्यावरण के प्रभावों को अवश्य बताता है परन्तु कौन का तत्व अधिक प्रभावी है, इसकी विवेचना नहीं हो पाती है। यह लोक प्रशासन तथा पर्यावरण के प्रभावों की कारणात्मक व्याख्या नहीं करता है। यह भी कहा जाता है कि इससे गत्यात्मक स्थिति का अध्ययन कठिनाई से होता है। यह तमाम बिन्दु इसके आलोचनात्मक पक्ष को उजागर करते हैं।

6.4 सारांश

व्यवस्था उपागम प्रशासन एवं संगठन का एक महत्वपूर्ण उपागम माना जाता है जो अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा अपनी एक अलग पहचान रखता है। इस उपागम के प्रमुख विचारकों में हम डेविड ईस्टर्न, राबर्ट मरटन, टाककार पारसंस को अग्रणी मानते हैं जिसमें कालान्तर में अन्य विचारकों को भी इस उपागम की व्याख्या में अपना योगदान दिया। यह सिद्धान्त मानता है कि पर्यावरण की एक महत्वपूर्ण भूमिका संगठनों की संरचना एवं उनकी प्रक्रिया में होती है। इसके अन्तर्गत परस्पर अन्तरनिर्भरता पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। कोई भी संगठन शून्य में कार्य नहीं करता है। अतः इसकी व्याख्या में विभिन्न प्रकार की उप-व्यवस्थाओं की जानकारी एवं उनका प्रभाव आवश्यक रूप से होता है। यह उपागम व्यवस्था, उसके पर्यावरण तथा इनके आपसी व्यवहार को समझाने में सहायक है। इस उपागम को हम एक सर्वांगीण तथा व्यापक मान सकते हैं।

इस प्रकार व्यवस्था उपागम एक महत्वपूर्ण उपागम के रूप विश्लेषित किया जाता है। प्रशासन के अध्ययन में इस उपागम का विशेष स्थान माना जाता है।

6.5 परिस्थिति उपागम की मूल अवधारणा एवं विशेषतायें

लोक प्रशासन तथा संगठन से सम्बंधित हमने अनेक सिद्धान्तों का अध्ययन किया, जैसे मानव सम्बंध-सिद्धान्त, नौकरशाही सिद्धान्त आदि। विचारकों का मानना है कि यह सभी सिद्धान्त प्रशासन तथा संगठन के एक पहलू को समझने में तथा उसी को आधार मानकर विश्लेषण करते हैं। कोई भी सिद्धान्त (उपागम) लोक प्रशासन तथा संगठन में सम्बंधित ऐसा नहीं कहा जा सकता जो सभी परिस्थितियों में समान रूप से प्रभावी हो। अनेक परिस्थितियों में समान रूप से प्रभावी हो। अनेक परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिन पर परिस्थिति तथा पर्यावरण का प्रभाव देखने को मिलता है। कहने का तात्पर्य यहां इस बात से है कि एक सिद्धांत पर परिस्थिति तथा दर पर्यावरण के लिए अनूकूल नहीं होता है अथवा नहीं हो सकता है। इस बात की आवश्यकता बहुधा प्रतीत होती है कि परिस्थिति के अनुकूल ही उपागम का सृजन किया जाय जिससे वह सफल हो सके।

आधुनिक संदर्भों में परिवर्तन क्रमशः तीव्र गति से हो रहे हैं जो टेक्नोलोजी तथा पर्यावरण दोनों को ध्यान में रखकर संगठन की संरचना की वकालत करते हैं। इसका यह कदापि अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि परिस्थिति उपागम अन्य सिद्धान्तों के महत्व को कम करके आंकता है या उन्हें नकारता है। परिस्थिति उपागम की मूल अवधारणा इस वास्तविकता पर आधारित है कि कोई एक उपागम सभी परिस्थितियों में समान रूप से प्रभावी नहीं होता है।

परिस्थिति उपागम के अन्तर्गत दो प्रमुख विचार रेखांकित किये जाते हैं। एक विचार संगठन संरचना में 'टेक्नोलोजी के महत्व पर आधारित है। दूसरा विचार संगठन की संरचना में 'पर्यावरण' के महत्व को

उजागर करता है। टेकनोलोजी अथवा प्रोद्योगिकी तथा संगठन की संरचना का विशेष सम्बंध है– यह उपागम इस विचार को आगे बढ़ाता है। इस विषय से सम्बंधित अनेक शोध विश्व में हुये हैं। सन् 60 के दशक में इंग्लैंड में जोन उडवर्ड के शोध ने इस पर विशेष प्रभाव डाला। इसके पश्चात् वहां अनेक शोध इस विषय पर किये गये। इन सभी शोध अध्ययनों का प्रमुख बिन्दु संगटन की संरचना तथा प्रौद्योगिकी के बीच सम्बन्धों के महत्व को दर्शाना था। संगठन चाहे उत्पादन से जुड़ा हो या सेवा से सम्बंधित हो, दोनों ही दशाओं में विचारकों ने प्राद्योगिकी तथा संगठन की संरचना में सम्बंध स्थापित कर अध्ययन किया है। परिणामस्वरूप परिस्थिति उपागम इस तथ्य पर बल देता है। प्रौद्योगिकी संगठन के स्वरूप को निर्धारित करने में सहायक होती है। प्रौद्योगिकी संगठन में निवेश तथा उत्पादन दोनों को नियंत्रित करती है। अन्य उपागमों में भी हमें निवेश (Input) तथा उत्पादन (Output) सम्बंधी विचार विश्लेषण मिलता है। परन्तु परिस्थिति उपागम में संगठन संरचना में इसे एक महत्वपूर्ण विचार के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो उत्पादकता को प्रभावित करने वाला कारक माना जाता है।

वुडवर्ड द्वारा प्रस्तुत आंकड़े जिन बिन्दुओं को उजागर करते हैं उनमें संगठन संरचना तथा प्राद्योगिकी के सम्बंध ने विचारकों को अधिक प्रभावित किया है। संगठन की सफलता में इन सम्बन्धों को विशेष रूप से इंगित किया गया है। परिस्थिति उपागम इन विचारों को महत्व देते है। सफलतम संगठनों ने उदाहरण के तौर पर नियंत्रण के विस्तार का एक विशेष प्रभावी मापदण्ड अपनाया जबकि आत्म संगठनों ने या तो नियंत्रण के विस्तार को काफी कम रखा या अत्यधिक रखा। यहां पर यह कहना पर्याप्त है कि इस उपागम के अन्तर्गत प्राद्योगिकी तथा संगठन के बीच एक सम्बंध है जिससे संरचना प्रभावित होती है। अतः इसकी जानकारी से संगठन को लाभ मिलता है।

प्राद्योगिकी के अतिरिक्त यह उपागम पर्यावरण को भी विशेष महत्व देता है। संगठन के सिद्धान्तों में इस बात का काफी उदाहरण मिलता है जिसमें संगठन की संरचना को पर्यावरण में प्रभावित किया है। इस विषय से सम्बंधित अध्ययन सामग्री में संगठन की संरचना विशेष में पर्यावरण की भूमिका एवं इसके योगदान का काफी उल्लेख मिलता है। परिस्थिति उपागम इस तथ्य के महत्व को उजागर करता है कि संगठन की संरचना में पर्यावरण के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। संगठन कभी शून्य में स्थित नहीं होता है। अतः जिस पर्यावरण में उसकी संरचना होती है, जहाँ उसे कार्य करना है– इसे उस पर्यावरण के अनुकूल होना सहायक होगा तथा लाभकारी होगा। विशेषज्ञों ने इस तथ्य को शोध के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास किया है कि संगठन यदि अपने अनुकूल पर्यावरण में है तो उसकी कार्यकुशलता भी बढ़ोत्तरी होती है अन्यथा इसमें कमी आती है। इस प्रकार विभिन्न अनुसंधानों के माध्यम से विचारकों ने संगठन की संरचना तथा उसके पर्यावरण के बीच सम्बन्धों को प्राथमिकता दी है जिसके कारण संगठन में सफलता बढ़ी है।

6.6 परिस्थिति उपागम की आलोचना

अन्य उपागमों की भांति परिस्थिति उपागम में भी कमियां हैं जिसके कारण इस उपागम की भी आलोचना की जाती है। सिद्धन्तों की दृटि से उस उपागम में सार्वभौमिकता का अभाव लगता है। विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखकर यह उपागम विचार को आगे बढ़ाता है जिसमें प्राद्योगिकी तथा पर्यावरण का विशेष महत्व रखा गया है। परिस्थिति उपागम अन्य उपागमों की कमियों को दृष्टिगत रखते हुये, इस उपागम को पारिस्थितिपरक बनाता है। आलोचकों का यह मानना है कि परिस्थिति उपागम को सिद्धान्त के रूप में स्थापित करने में कठिनाई का आभास होता है क्योंकि इसमें स्थायित्व एवं सार्वभौमिकता का अभाव दिखता है।

6.7 सारांश

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि परिस्थिति उपागम की वकालत ऐसे विचारकों द्वारा किया गया है जिन्होंने संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों में कमियां बतायी और कहा कि कोई भी सिद्धान्त हर स्थिति के लिये अनुकूल नहीं है। परिस्थिति के अनुरूप उपागम का होना संगठन की सफलता में सहायक सिद्ध होता है। इस उपागम के विचारकों ने प्रमुख रूप से दो विचारों को आधार मानकर इसे विकसित किया। इनमें प्रौद्योगिकी (Techonology) तथा पर्यावरण (Environment) की विशेष भूमिका एवं महत्व दर्शाया गया है। इस उपागम के अनुसार संगठन की संरचना तथा प्रौद्योगिकी के बीच एक सम्बंध है। इसी प्रकार संगठन की संरचना तथा पर्यावरण के बीच एक सम्बंध है। इन दोनों को आधार मान कर संगठन की संरचना होती है तो वह अधिक सफल होती है।

6.8 निर्णय निर्माण की अवधारणा एवं प्रक्रिया

लोक पशासन के अध्ययन में निर्णय निर्माण का निर्णयन का एक विशेष महत्व माना जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि समस्त प्रशासन निर्णयन के आधार पर ही अग्रसर होता है। लोक प्रशासन एक प्रकार से निर्णय निर्माण के विभिन्न प्रक्रिया एवं विधाओं के अध्ययन से विशेष रूप से सम्बंधित कहा जा सकता है। हम यह भी कह सकते हैं कि लोक प्रशासन का मूल आधार निर्णयन ही है। निर्णयन के क्षेत्र में साइमन को हम एक अग्रणी विचारक के रूप में देखते हैं। उनका कथन है कि "निर्णयन, प्रशासक का हृदय है।" इसी तरह के विचार जार्ज आर0 टेरी के हैं। उनके अनुसार "प्रबंधकों प्रशासकों का जीवन ही निर्णय लेना है।" अतः हम स्पष्टतः यह कह सकते हैं कि निर्णयन का निर्णय निर्माण प्रशासन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। कुछ विद्वानों के विचार जो निर्णयन को परिभाषित करते हैं, उनकी संक्षिप्त चर्चा करें।

हरबर्ट साइमन ने निर्णय निर्माण को प्रबंध या प्रशासन का हृदय मानते हुये सभी प्रशासनिक प्रक्रियाओं को निर्णय निर्माण से सम्बंधित प्रक्रिया की संज्ञा दी है। उनके अनुसार "निर्णयन को हम पूर्व विचारों में से निकाले गये निष्कर्ष मान सकते हैं। यह निष्कर्ष बड़े निर्णयों के लिये पूर्व विचार बन जाते हैं।" साइमन ने निर्णय निर्माण की तीन अवस्थाओं का उल्लेख किया है– निर्णय लेने का अवसर मिलना कार्य के सम्भावित क्रमों का पता लगाना तथा कार्य के क्रमों का चयन करना।

इस सम्बन्ध में टेरी का कथन है– दो या अधिक सम्भावित विकल्पों में से एक व्यावहारिक विकल्प को चुनना ही निर्णय लेना है। बरनार्ड का मानना है कि 'निर्णयन, मुख्यतः विकल्पों को सीमित करने की तकनीक है। हेनरी फेयोल तथा उरविक की दृष्टि में निर्णय निर्माण मुख्यतः प्रत्यायोजन तथा सत्ता को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार निर्णयन का निर्णय निर्माण को विभिन्न विचारकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

निर्णयन की विशेषतायें

निर्णयन प्रशासन की विशिष्ट प्रक्रिया है जिस पर समस्त प्रशासन आधारित होता है। आइये इसकी प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त अध्ययन करें। प्रशासनिक संगठनों में लिये जाने वाले निर्णयों की प्रमुख विशेषतायें निम्न प्रकार की है :

1. हरबर्ट साइमन के अनुसार निर्णयन का कार्य संगठन के प्रत्येक स्तर तथा प्रत्येक कार्मिक द्वारा किया जाता है। निर्णयों के प्रकार अथवा स्तर में भिन्नता हो सकती है। अधिकांश निर्णय सरकारी प्रयासों के परिणाम होते हैं।

2. निर्णय निर्माण वह प्रक्रिया है जो निरन्तर जारी रहती है। निर्णयन पर ही समस्त प्रशासनिक क्रियायें निर्भर करती हैं।

3. निर्णयन प्रक्रिया के अन्तर्गत अनेक विकल्पों में से एक विकल्प चुनना ही इसका कार्य है।

4. प्रत्येक निर्णय का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। बिना उद्देश्य के कोई निर्णय नहीं किया जा सकता।

5. कभी-कभी निर्णय न लेना भी एक उद्देश्यपरक निर्णय ही होता है।

6. निर्णय अपने आप में साक्ष्य (लक्ष्य) न होकर साध्य तक पहुंचने का एक साधन होता है।

7. निर्णय निर्माण में 'समय तत्व' की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योकि सभ्य अपने आप में एक संसाधन एवं प्रभावकारी कारक है।

8. निर्णय, मूल्यांकन तथा विश्लेषण पर आधारित होता है तथा निर्णयों का भी मूल्यांकन किया जा सकता है।

9. संसाधन, मानसिकता, तात्कालिकता तथा संगठन के अन्य आयाम निर्णय निर्माण को प्रभावित करते हैं।

10. निर्णय किसी न किसी मुद्दे या समस्या से सम्बंधित होता है।

निर्णय निर्माण के आधार तथा सिद्धान्त

निर्णयन प्रक्रिया में यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है कि निर्णय का कोई न कोई आधार होगा। प्रशासन में निर्णय प्रक्रिया सिद्धान्तों पर भी आधारित होती है। यद्यपि व्यक्तिगत निर्णय किसी भी आधार पर लिये जा सकते हैं, परन्तु प्रशासन में निर्णय के निश्चित आधार होते हैं तथा इसके अपने सिद्धान्त होते हैं। प्रशासनिक प्रक्रिया में विवेकहीन तथा मनमाने ढंग से निर्णय को स्थान नहीं दिया जाता है। आइये उन आधारों एवं सिद्धान्तों का संक्षिप्त अध्ययन करें।

1. वैधानिकता– जैसा कि हम जानते हैं कि प्रशासनिक संगठनों का प्रमुख आधार कानून होता है क्योंकि लोक प्रशासन विधि के शासन के मूलतः सम्बन्धित रहता है, अतः कोई भी निर्णय लेने से पहले यह देखना आवश्यक है कि वह निर्णय निर्धारित कानून तथा नियमों की सीमाओं का उल्लंघन न करे। निर्णयन में वैधानिकता एक प्रमुख आधार है जो कि निर्णय लेने वालों तथा निर्णय दोनों के लिये एक आवश्यक तत्व हैं।

2. उद्देश्य– किसी भी निर्णय प्रक्रिया में निश्चित उद्देश्य का होना निर्णयन को वास्तविक एवं तर्क संगत बनाने में सहायक सिद्ध होता है। यह संगठन के लक्ष्यों की आपूर्ति में सहायक होते हैं। निरुद्देश्य निर्णयन दिशा हीन हो सकते हैं तथा संगठन के हित में नहीं होते हैं।

3. उचित समय– किसी भी कार्य प्रणाली में समय का विशेष महत्व होता है। इसी प्रकार निर्णयन में भी 'समय तत्व' बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। क्योंकि कतिपय निर्णय तात्कालिक प्रकृति के होते हैं तो कुछ निर्णय दूरगामी परिणामों के आधार पर अधिक सोच-समझ कर लिये जाते हैं। समय का एक आर्थिक पहलू भी है जो निर्णय में देरी के कारण संगठन के वित्त में कठिनाई उत्पन्न कर सकता है।

4. व्यावहारिकता– निर्णय निर्माण का एक आधार व्यावहारिकता को भी माना जाता है। निर्णय ऐसा हो जिसे व्यावहारिक रूप से लागू किया जा सके। जो निर्णय व्यावहारिकता को नकार कर लिये जाते हैं। उनकी सफलता संदेहास्पद होती है। अतः निर्णयन के समय संगठन में उपलब्ध संसाधनों, नियमों, आर्थिक-राजनीतिक परिवेश आदि को ध्यान में रख कर निर्णय लेना व्यावहारिक कहा जायेगा।

5. सामाजिक–राजनीतिक एवं आर्थिक कारक– लोक प्रशासन से सम्बद्ध अथवा निजी क्षेत्र, दोंनो के ही संगठनों को एक विशेष पारिस्थिति में कार्य करना पड़ता है। जो संगठन अपने आस-पास के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक संदर्भों के विपरीत व्यवहार करता है अथवा कोई निर्णय ऐसा लिया गया हो, जो इन बाह्य कारकों की विपरीत प्रकृति का हो, तो निस्संदेह वह निर्णय, एक अच्छा निर्णय नहीं कहा जा सकता है।

6. तार्किकता– निर्णय निर्माण का एक महत्वपूर्ण आधार तार्किकता को माना जाता है। बिना किसी तार्किक आधार के लिया गया निर्णय न्यायोचित नहीं माना जाता तथा उसकी सामान्य उपयोगिता पर भी प्रश्न चिन्ह लग जाता है। उसे पक्षपात पूर्ण कहने में संकोच नहीं करेंगे। तार्किकता या बुद्धिमत्तपूर्ण निर्णयों में व्यक्तिगत इच्छायें, भावनायें, मत्य तथा अभिमत के स्थान पर तथ्यों तथा तटस्थता का समावेश अधिक रहता है, इस कारण ऐसे निर्णय स्वीकार्य होते हैं।

7. संगठन के हित की प्राथमिकता– संगठन के अन्तर्गत लिये जाने वाले निर्णयों में संगठन के मूल उद्देश्यों को केन्द्र-बिन्दु मानना चाहिये। व्यक्तिगत हितों तथा संगठन के हितों में एक सामंजस्य विठा कर निर्णय लेना दोनों के लिये उपयुक्त रहता है। परन्तु जब कभी व्यक्तिगत हितों तथा संगठन के हितों के मध्य विवाद की स्थिति में संगठन के हितों की रक्षा को ही प्राथमिकता देना तार्किक माना जाता है। व्यक्तिगत रूप से व्यक्ति कई प्रकार की प्रेरणाओं तथा लालसाओं से अभिभूत होकर निर्णय लेता है, किन्तु संगठनात्मक निर्णय संगठन के हितों के साथ व्यक्ति के हितों का सामंजस्य बैठा कर निर्णय लेना अधिक उपयुक्त माना जाता है।

6.9 निर्णय निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक

निर्णयन अथवा निर्णय निर्माण ऐसी प्रक्रिया है जो अनेक कारकों से प्रभावित होती है। इस उपखण्ड में उन कारकों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे। निर्णयन को प्रभावित करने वाले कारकों को हम दो भागों में रख सकते हैं– वाह्य कारक तथा आन्तरिक कारक।

बाह्य कारक– निर्णयन को प्रभावित करने वाले कारकों में राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक कारकों को रख सकते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि निर्णयन एक प्रक्रिया है। अतः इस प्रक्रिया को अनेक कारक अपने-अपने ढंग से प्रभावित करता है। राजनीतिक कारक के क्षेत्र में हम उन कारकों को रख सकते हैं जो राजनीतिक व्यवस्था से जुड़े हुये प्रश्न एवं मुद्दे हैं जो कि निर्णय निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार समाज के अन्तर्गत अनेक मान्यतायें एवं प्रक्रियायें ऐसी हो सकती है जो निर्णयन प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है या करती है। अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत ऐसी ही समस्यायें या मुद्दे होते हैं जो निर्णयन को किसी न किसी प्रकार प्रभावित करते हैं। पिछले पृष्ठों में निर्णयन के विभिन्न आधारों का अध्ययन किया है। इसके प्रमुख आधारों में तथ्य एवं तार्किकता का विशेष महत्व है। बाह्य कारक इन आधारों को प्रभावित कर निर्णयन प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के तौर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था में विभिन्न राजनीतिक दल निर्णयन, प्रक्रिया दल विशेष के मूल्यों एव मान्यताओं को ध्यान में रख कर इस प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते हैं। अथवा समाज विशेष की अपनी मान्यतायें निर्णयन को विशिष्ट दिशा में प्रभावित कर सकते हैं। इसी प्रकार आर्थिक विचार भी निर्णयन को विशेष दिशा में प्रभावित कर सकते हैं।

आन्तरिक कारक– इस क्षेत्र में हम उन कारकों को रख सकते हैं जो संगठन की संरचना से जुड़े हैं। इसके अन्तर्गत हम निर्णयकर्ता के अपने मूल्य एवं मान्यतायें या संगठन की संरचना विशेष का अध्ययन कर सकते हैं। इसके साथ ही संगठन के नियम, कानून, उसकी प्रकृति आदि सभी ऐसे कारक हैं जिन्हें हम आन्तरिक कारक कह सकते हैं । उदाहरण के लिये समस्त निर्णयकर्ता एक ही विचार से प्रभावित हों, उन सभी का आचरण-व्यवहार एक सा हो, यह आवश्यक नहीं है। अतः

विभिन्न विचारों को धारण करने वाले, विभिन्न आचार-व्यवहार के लोग निर्णय निर्माण को अपने-अपने अनुरूप सोचकर निर्णय लोगों को 'स्व' से प्रेरित होगा। इस प्रकार के कारकों के हम आन्तरिक कारक की श्रेणी में रख सकते हैं।

निर्णयन के प्रतिमान

निर्णयन के प्रतिमानों में मुख्य रूप से दो प्रतिमान प्रचलित हैं–

(i) आर्थिक मानव प्रतिमान या पूर्ण विवेकशीलता प्रतिमान

(ii) प्रशासनिक मानव का सीमित विवेकशीलता प्रतिमान

तीसरा प्रतिमान सामाजिक मानव प्रतिमान है। हरबर्ट साइमन ने वस्तुतः पूर्ण औचित्य का विवेकशीलता पर आधारित प्रतिमान को आर्थिक मानव प्रतिमान की संज्ञा दी है, जिसमें व्यक्ति को आर्थिक मानव के रूप में विवेकशील माना गया है। दूसरी ओर मनोविज्ञान से लिया गया सामाजिक मानव प्रतिमान है, जो मनोवैज्ञानिक फ्रायड की इस मान्यता का पोषक है कि व्यक्ति की अपनी भावनायें, इच्छायें, विचार तथा मूल्य होते हैं, अतः वह तर्क या विवेक से प्रभावित न होकर केवल इच्छा प्रधान निर्णय लेता है। आर्थिक मानव तथा सामाजिक मानव के बीच वाले व्यवहार को साइमन ने प्रशासनिक मानव या सीमित विवेकशीलता (Boarded Rationality) की संज्ञा दी है।

अध्याय के पिछले पृष्ठों में हमने निर्णयन के विभिन्न आधारों का विश्लेषण किया है। निर्णयन के प्रतिमानों के अध्ययन में हम उन आधारों का संदर्भ लेकर इनका अध्ययन कर लेते हैं।

6.10 निर्णय निर्माण की आलोचना

अन्य विचारों की भांति निर्णय निर्माण अथवा निर्णयन की आलोचना विशेषज्ञों द्वारा की गई है। निर्णयन में हरबर्ट साइमन का विशेष योगदान रहा है, इस कारण निर्णय की आलोचना में मुख्यतः साइमन के विचारों का उल्लेख किया जाता है। इस सम्बंध में आलोचकों का मानना है कि साइमन की प्रशासनिक मानव अवधारणा मनुष्य की उन्नति की राह में बाधा उत्पन्न करती है। यदि व्यक्ति थोड़े से ही संतुष्ट हो जाएगा तो वह भला अधिक का प्रयास क्यों करेगा ? मानव स्वभावतः असंतोषी एवं जिज्ञासु है, वह एक स्तर या वस्तु की प्राप्ति के पश्चात् अगले स्तर या उच्च लक्ष्य की सोचता है।

क्रिस आर्गिरिस का मानना है कि साइमन ने अपनी तार्किकता की अवधारणा में अन्तः प्रेरणा, परम्परा तथा विश्वास की भूमिका को नहीं पहचाता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि साइमन का सिद्धान्त प्रशासन में यांत्रिक अवधारणा को जन्म देता है और साधन तथा साध्य के बीच परिवर्तनशील सम्बंध स्थापित करता है। कुशलता ही संगठन का एकमात्र उद्देश्य नहीं हो सकता। साइमन का प्रतिमान यह मानता है कि प्रशासन सभी समाजों में एक ऐसी भूमिका निभाता है, लेकिन यह सत्य है कि विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था से सर्वथा भिन्न है। साइमन का निर्णयन उपागम, नीति एवं प्रशासन या राजनीति एवं लोक प्रशासन में पुनः द्विभाजन उत्पन्न करता है जबकि आधुनिक विचारधाराओं राजनीति एवं प्रशासन में एकीकरण पर बल देती है।

अतः हम कह सकते हैं कि साइमन द्वारा प्रतिपादित निर्णयन प्रतिमान में भी अनेक कमियां है जिसे आलोचकों ने उजागर करने का प्रयास किया है।

6.11 सारांश

निर्णयन अथवा निर्णय निर्माण की अवधारणा लोक प्रशासन में एक महत्वपूर्ण विचार के रूप

प्रतिस्थापित है। कोई भी संगठन, इसकी संरचना, प्रक्रिया आदि सामान्यतः निर्णयन पर ही आधारित रहती हैं। सम्भवतः इसी को ध्यान में रखकर हरबर्ट साइमन इस विचार को विशेष रूप विश्लेषित किया। उनकी पुस्तकों का प्रमुख विन्दु निर्णयन से भी सम्बंधित रहा है। साइमन ने निर्णयन के विभिन्न आधारों का विस्तृत विवरण एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिसमें तथा आधारित निर्णय, मूल्य आधारित निर्णय आदि विशेष रूप विवेचित किये गये हैं। प्रशासनिक मानव अवधारणा साइमन का विशेष योगदान माना जाता है।

साइमन के निर्णयन अवधारणा में तार्किकता को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यह कहा जा सकता है कि साइमन की अवधारणा में सीमित विवेकशीलता को आकार बना कर निर्णयन के विचार को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है। इसे हम एक व्यवहारिक पक्ष के रूप में भी देख सकते हैं। साइमन द्वारा प्रतिपादित निर्णयन उपागम लोक प्रशासन में एक विशेष स्थान रखता है।

6.12 उपयोगी पुस्तकें

1. प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबंधन– डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया
2. पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन– मोहित भट्टाचार्या
3. एडमिनिस्ट्रेटिव विहेवियर– हरबर्ट साइमन
4. प्रमुख राजनीतिक विचारक– नरेन्द्र कुमार थोरी

6.13 सम्बंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. व्यवस्था उपागम का एक आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिये।
2. परिस्थिति उपागम का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिये।
3. निर्णयन के विभिन्न आधारों की व्याख्या कीजिये।
4. निर्णय निर्माण के विभिन्न प्रतिमानों का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. व्यवस्था उपागम के लक्षणों को बताइये।
2. परिस्थिति उपागम की विशेषता समझाइये।
3. निर्णयन को परिभाषित कीजिये।
4. हरबर्ट साइमन के योगदान को स्पष्ट कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौन व्यवस्था उपागम से संबंधित नहीं है–

   (अ) साइमन (ब) वेबर

   (स) फॉलेट (द) बरनार्ड

2. निम्न में से कौन निर्णय निर्माण का आधार नहीं है ?

(अ) वैधानिकता (ब) तार्किकता

(स) व्यक्तिक्रम मूल्य (द) व्यवहारिकता

3. निम्न में से कौन निर्णयन विचारधारा के सम्बद्ध नहीं है ?

(अ) साइमन (ब) टेरी

(स) फेयोल (द) नीग्रो

4. परिस्थिति उपागम में निम्न में से कौन महत्वपूर्ण नहीं है ?

(अ) प्रौद्योगिकी (ब) संगठन संरचना

(स) सार्वभौमिकता (द) पर्यावरण

6.14 प्रश्नोत्तर

1. (ब)
2. (स)
3. (द)
4. (स)

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

MAPS-104
लोक प्रशासन

खण्ड

3

लोक प्रशासन के सिद्धान्त

इकाई 7
पद सोपान, नियंत्रण क्षेत्र का विस्तार 5

इकाई 8
आदेश की एकता, समन्वय 17

इकाई 9
प्रशासनिक व्यवहार 31

विशेषज्ञ समिति

प्रो. आर.के. मणि त्रिपाठी — विषय विशेषज्ञ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

प्रो. एल.डी. ठाकुर — विषय विशेषज्ञ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
राजनीतिशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

प्रो. एस.एम. सईद — विषय विशेषज्ञ
राजनीतिशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. मंजूलिका श्रीवास्तव — दूरस्थ शिक्षा विशेषज्ञ
रीडर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. एस. के. द्विवेदी — सम्पादक
राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

परामर्श समिति

प्रो. केदार नाथ सिंह यादव, कुलपति	अध्यक्ष
डॉ. हरीश चन्द्र जायसवाल, वरिष्ठ परामर्शदाता	कार्यक्रम संयोजक
प्रो. के. पी. सिंह, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
डॉ. अर्जुन तिवारी, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
प्रो. ए.एन. द्विवेदी, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
डॉ. रत्नाकर शुक्ला, कुलसचिव	सचिव

PGPS-05 :– लोक प्रशासन

लेखक मण्डल

खण्ड एकः **प्रो. ए ..एन दूबे**, राजनीति शास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी 3 इकाई

खण्ड दोः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड तीनः **डॉ. आर.के. जायसवाल**, रीडर, राजनीति शास्त्र वि., के.एस. साकेत महावि., फैजाबाद 3 इकाई

खण्ड चारः **डॉ. मनूका खन्ना**, रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड पाँचः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई
डॉ. वी.के. राय, रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, इला. विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुति अनुमन्य नहीं है।

MAPS-104/80

दूरस्थ शिक्षा परिषद, नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित।

खण्ड - 3 परिचय : लोक प्रशासन के सिद्धान्त

लोक प्रशासन समाज का एक आवश्यक अंग और आधुनिक युग में जीवन का प्रमुख तत्व है। सामाजिक मनुष्य को राजनैतिक मनुष्य के रूप में स्वीकार किया जाने का महत्वपूर्ण आधार यह है कि आज मनुष्य राज्य की अपरिहार्यता को हर क्षण और हर परिस्थिति में अनुभव करता है। राज्य के व्यापक रूप से स्वीकार किये जाने का मूल कारण उसका रचनात्मक दृष्टिकोण है। इसी दृष्टिकोण के कारण ही मनुष्य के जीवन की विविध क्रियाओं को सम्पन्न करने का दायित्व राज्य पर आ गया है।

राज्य अपनी प्रत्येक आवश्यक क्रिया को प्रशासन के द्वारा सम्पन्न कराता है। प्रशासन सजीव क्रियाशीलता के व्यापक आधार पर टिका हुआ है। धर्मनिरपेक्ष और लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के आदर्श, क्रियाशील और सजग प्रशासन के द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं। लोक प्रशासन का अध्ययन इसी सन्दर्भ में व्यापक समर्थन प्राप्त करता है। लोक प्रशासन विधि समस्त कठिनाइयों को हल करने के साथ-साथ सुखी और सम्मानित जीवन की व्यवस्था करने का दायित्व वहन करता है। इसकी आधुनिक प्रवृत्ति इसके अतीत से इसे जोड़ने का सफल प्रयास करती है। राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं के साथ ही साथ लोक प्रशासन का योग तथा महत्व स्वभावतः ही बढ़ता जा रहा है। राज्य की क्रियाओं की सफलता या असफलता लोक प्रशासन पर निर्भर होती है। राज्य की नीतियों को कार्यान्वित करना ही लोक प्रशासन का कार्य है। राज्य की कोई नीति चाहे कितनी ही अच्छी क्यों न हो, यदि उसे अयोग्यता तथा अकुशलता के साथ कार्यान्वित किया जाय तो उसके अच्छे परिणाम नहीं निकलते। यदि राज्य का प्रशासकीय ढाँचा तीव्रता, कुशलता एव सत्यनिष्ठा के साथ कार्य नहीं करता है तो अच्छी से अच्छी नीतियाँ तथा योजनाएँ तक भी असफल हो जाती है। आज के वर्तमान युग में, जिसे कि 'प्रशासनिक राज्य का युग' कहा जाता है, प्रशासन तथा कुशल प्रबन्धकों को बड़ा महत्व पूर्ण योगदान करना होता है।

समाज में लोक प्रशासन की भारी महत्ता के कारण ही इसे 'आधुनिक सभ्यता का हृदय' (Heart of Modern civilization) कहा जाता है। प्रशासन अनेक सामाजिक विवादों को सुलझता है तथा समाज में एकता स्थापित करता है। लोक प्रशासन सामाजिक ढाचे को स्थिरता प्रदान करता है। स्थिरता प्रदान करने के लिए मजबूत संगठनों की आवश्यकता होती है। इन संगठनों में पद सोपान, नियन्त्रण का क्षेत्र, आदेश की एकता, समन्वय आदि सम्मिलित किये जाते हैं। प्रशासनिक संगठन में कार्यरत, व्यक्तियों, उनके समूहों तथा संरचना का व्यवहार पर पड़ने वाला प्रभाव ही प्रशासनिक व्यवहार का अध्ययन बिन्दु होता है। आधुनिक समय में संगठनात्मक व्यवहार अध्ययन का अलग और महत्वपूर्ण क्षेत्र बन चुका है। इसके अन्तर्गत निर्णयन, नेतृत्व, संचार, अभिप्रेरण मनोबल, समूह-गतिशीलता, व्यक्तित्व, कार्य-संतुष्टि सत्ता-वार्ता संघर्ष, कार्य प्ररचना, संगठनात्मक कार्य तथा अन्य सम्बद्ध विषयों का अध्ययन किया जाता है।

इकाई–7 पद सोपान (Hierarchy)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 पद सोपान का अर्थ एवं परिभाषा

7.3 पद सोपान के तत्व

7.4 पद सोपान की आवश्यकता

7.5 पदसोपान के प्रकार

7.6 पद सोपानीय व्यवस्था

7.7 पद सोपान के गुण और दोष

7.8 पद सोपान और स्वतन्त्र नियामक आयोग

7.9 सारांश

7.10 नियन्त्रण क्षेत्र का विस्तार

7.11 नियन्त्रण क्षेत्र को निर्धारित करने वाले तत्व

7.12 नियंत्रण क्षेत्र और पदसोपान

7.13 नियन्त्रण के क्षेत्र पर साइमन और ग्रेक्यूनस के विचार

7.14 सारांश

7.15 उपयोगी पुस्तकें

7.16 सम्बन्धित प्रश्न

7.17 प्रश्नोत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- पद सोपान का अर्थ एवं परिभाषा की विवेचना कर सकेंगे,
- पद सोपान के प्रकार की विवेचन कर सकेंगे,
- इसके दोष तथा गुणों का उल्लेख कर सकेंगे,
- नियंत्रण क्षेत्र के तत्वों की विवेचना कर सकेंगे,
- नियंत्रण क्षेत्र में साइमन व ग्रेक्यूनस के विचारों पर टिप्पणी कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

आज का युग लोक कल्याणकारी राज्यों का युग है। जिसमें राज्यों का कार्य क्षेत्र दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, मानव की गर्भावस्था से लेकर मृत्युशय्या तक की समस्त क्रियाकलापों का क्रियान्वयन राज्य द्वारा सम्पादित हो रहा है। ये सभी व्यवस्थायें संगठन के बिना सम्भव नहीं हो सकती। संगठन के माध्यम से व्यवस्था में गतिशीलता, स्पष्टता और पूर्णता आती है। जहाँ बहुत से व्यक्ति एक कार्य को करने में लगे रहते हैं तो उस समय यह प्रश्न उठता है कि कौन उनमें से बड़ा है? कौन उनमें से छोटा? कौन आज्ञा देने का कार्य कर रहा है और कौन आज्ञाओं का पालन करने वाला है? जब हम इसे प्रशासन के क्षेत्र में लागू करते है, तब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कौन सा पदाधिकारी बड़ा है? और कौन सा निम्न स्तर का? संगठन में विभिन्न प्रकार के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों का पद उनकी क्षमता एवं सामर्थ्य के अनुसार ही निश्चित किया जाता है। कुशल प्रशासन पद सोपान के बिना सम्भव नहीं है।

पद सोपान व्यवस्था में मुख्य रूप से दो बाते देखने को मिलती है। नियन्त्रण की सीमा और प्रत्याधिकरण। नियन्त्रण की सीमा का सामान्य अर्थ यह है कि उच्चस्थ अधिकारियों के नियन्त्रण में कार्य करने वाले अधिकारियों की संख्या सीमित होनी चाहिए। अर्थात् एक उच्च अधिकारी कितने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों का कुशलतापूर्वक देख-रेख कर सकता है। यही नियन्त्रण के क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या है। वास्तव में नियन्त्रण का विस्तार किसी उद्यम के मुख्य कार्यपालक एवं उसके मुख्य साथी कार्यालयों के मध्य सीधे एवं स्वाभाविक संचार की संख्या एवं क्षेत्र है।

7.2 पद सोपान का अर्थ एवं परिभाषा

पदसोपान अंग्रेजी शब्द Heirarchy का हिन्दी रूपान्तर है जिसका अर्थ है पद श्रेणी के आधार पर 'धर्मपुरोहितों का संगठन' (Organization of a priesthod in grades or order) अतः इस सिद्धान्त को पद श्रेणी का सिद्धान्त कहते हैं।

पद सोपान की परिभाषा निम्नलिखित है–

"पद सोपान तथा उच्च पदाधिकारियों का श्रेणीबद्ध रूप से एक व्यवस्थित संगठन है।"–अर्थलैथम

"निम्नतर पर उच्चतर का शासन अथवा सिद्धान्त ही पद सोपान है।"–डॉ0एम0पी0शर्मा

"संगठन में ऊपर से नीचे तथा उच्चाधिकारी एवं अधीनस्थ के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना ही पद सोपान है।"–एल0डी0ह्वाइट

"Hierarchy is the means by which resources are apportioned personnels, selected and assigned operation activated reviewed and notified." *–P.H. Appleby.*

"In organization it means the grading of duties not according to degrees of authority and corresponding responsibility." *–Mooney*

"There shuld be an hierarchy of scalar process on the lines of authorits and responsibility running up and down words through proper he several levels with a broad base at the bottom and a signal head on the top." *–J.M. Pbiffner.*

7.3 पद सोपान के तत्व

इस पद क्रय ढाँचे के निम्नलिखित तत्व हैं–

(अ) एक व्यक्ति का मात्र एक आसन्न (Immediate) अधिकारी होगा, जिससे यह आदेश प्राप्त करेगा।

(ब) निम्न स्तर का अधिकारी कभी भी अपने से उच्च अधिकारी को आदेश नहीं देगा।

(स) ऊपर के अधिकारी नीचे वालों से तथा नीचे वाले ऊपर के अधिकारी से सम्बन्ध स्थापित करते समय मध्य वाले अधिकारियों के माध्यम से ही सम्बन्ध स्थापित करेंगे।

(द) जिस व्यक्ति को किसी काम के लिए उत्तरदायित्व दिया जायेगा, उसे उसके अनुरूप सत्ता भी दी जायेगी।

उपर्युक्त तत्वों से स्पष्ट होता है कि इस प्रणाली में सत्ता आदेश तथा नियन्त्रण धीरे-धीरे शीर्ष से तह तक पहुंचते हैं। विभाग का सचिव संयुक्त सचिव से व्यवहार रखेगा जो आगे उपसिचव से तथा वह आगे अवर सचिव से व्यवहार रखेगा, अवर सचिव आगे अनुभाग अधिकारी से जो आगे सहायकों तथा लिपिको आदि से व्यवहार रखेगा।

7.4 पद सोपान की आवश्यकता

पद सोपान की आवश्यकता दो कारणों से अनुभव की जाती है–

1. कार्य को इसके आर्थिक भागों में बांटना, अर्थात् कार्य विशेषीकरण के आदर्श के अनुसार जो कि प्रबन्धकीय दर्शन का केन्द्रीय सिद्धान्त है।
2. विशेषीकरण के कार्यों तथा एकीकृत करने के पैटर्न को इकट्ठा करने का यत्न।

7.5 पद सोपान के प्रकार

एक अनौपचारिक संगठन में पद सोपान का महत्वपूर्ण स्थान है। यह मूल रूप से एक रचना सम्बन्धी मान्यता है जिसमें रोजगार स्थितियां, प्रक्रियायें, व्यवहार आदि प्रभावशाली होते है। यह व्यक्तियों से नहीं वरन चीजों से या कार्यों से सम्बन्ध रखती है। यह कर्त्तव्यों क्रियाओं और कार्यों के आधार पर स्थापित की जाती है पिफेनर तथा शेरवुड ने पद सोपान को चार भागों में विभाजित किया है।

(अ) कार्य का पद सोपान (Job task Hierarchy)

विभिन्न प्रकार के पद सोपान में कार्यों के पद सोपान का बड़ा महत्व है, इसमें प्रत्येक कर्मचारी की स्थिति उसके कार्यों के प्रकार से निश्चित की जाती है। कार्यों के स्पष्ट वर्णन से उत्तरदायित्वों का निश्चय भी होता है। यहाँ श्रम का विभाजन होता है। छोटे व्यापारों में तथा प्रारम्भिक पद सोपानों में ये कार्य स्वाभाविक रूप से विकसित होते थे। उन्हें लिखित व प्रकाशित कर औपचारिक नहीं बनाया जाता था। ज्यों-ज्यों प्रबन्ध संस्थायें बड़ी तथा कठिन होती गयी। उनमें दो नवीन विकास हुए।

1. कर्त्तव्यों का वर्गीकरण
2. नये कार्य तथा स्थितियों के लिए शक्तियों का केन्द्रीकरण।

प्रशासन पर जब राजनीतिक दबाव पड़ने लगा एवं वेतन के सम्बन्ध में पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाने लगा। तब औपचारिक कार्य के पद सोपान की व्यवस्था हो गयी। यदि एक ही कार्यालय में एक ही प्रकार का कार्य करने वाले दो व्यक्तियों को क्रमशः एक को 2000 तथा एक को 3000 रुपया मासिक वेतन मिलता है। तो यह स्वाभाविक है कि इस असमानता के कारण असन्तोष, विरोध एवं संघर्ष जन्म लेगा। फलस्वरूप समान कार्य के लिए समान वेतन का नारा जोर पकड़ने लगा। इसीलिए स्थिति का वर्गीकरण कर दिया गया। यह स्वाभाविक रूप से स्पष्ट है कि उच्चतर अधिकारियों के पास

निम्नतर पदाधिकारी की अपेक्षा काम कम उत्तरदायित्व अधिक होता है। इसमें उस व्यक्ति की व्यक्तिगत योग्यताओं का वर्णन नहीं होगा, वरन कार्यों का उल्लेख किया जाता है। यह पद का अध्ययन होता है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यक्तिगत गुणों की अवहेलना की जाती है। व्यक्तिगत गुणों की बात उस समय आती है। जबकि अमुक पद से सम्बद्ध कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए उपर्युक्त व्यक्ति का चयन किया जाता है।

(ब) प्रतिष्ठा का पद सोपान (The hierarchy of Rank)

प्रतिष्ठा का पद सोपान एक योग्य अधिकारी की तरफ संकेत देता है। इसकी सबसे अधिक स्पष्ट छाप हमें सेना में देखने को मिलती है। एक मेजर मेजर ही रहता है चाहे व लड़ाई में सेना को आदेश दे रहा हो अथवा अपने सैनिक कार्यालय में बैठकर लिखने पढ़ने का कार्यकर रहा हो। वह तब तक मेजर बना रहेगा जबं तक कि सेवा निवृत्त नहीं हो जाता अथवा उसे मेजर से कोई उच्च पद नहीं मिल जाता है। कार्यों के पद सोपान में व्यक्ति के कार्यों पर ओर दिया जाता है। प्रतिष्ठा के पद सोपान में व्यक्ति के स्तर वेतन तथा विशेषाधिकारों को देखा जाता है। प्रतिष्ठा का पद सोपान एक कुलीनतंत्री परम्परा का सूचक है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि कार्य के पद सोपान का प्रतिष्ठा के पद सोपान से कोई सम्बन्ध नहीं है। यूरोप की अधिकांश नागरिक सेवा में प्रतिष्ठा सोपान का ध्यान रखा जाता है।

(स) कुशलता का पद सोपान (Hierarchy of skills)

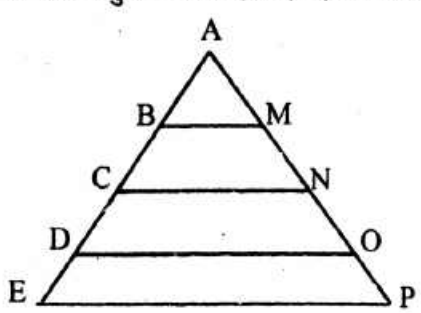
जब किसी विशिष्ट प्रक्रिया को पद-सोपान का आधार बनाया जाता है तो इस प्रकार की व्यवस्था कुशलता का पदसोपान कहलाती है। अर्थात् जिस व्यवस्था में पदों का निर्धारण किसी विशिष्ट प्रक्रिया के आधार पर होता है। उसे कुशलता का पद सोपान कहते हैं। प्रत्येक पद सोपान के शीर्ष स्तर पर ऐसे कार्य होते हैं जिनमें प्रशासकीय कुशलता की आवश्यकता होती है। जैसे जनसम्पर्क नियोजन तथा समन्वय आदि की आवश्यकता होती है।

(द) वेतन का पद सोपान (Pay Hierarchy)

जब पदों का निर्धारण वेतन के आधार पर किया जाता है तब इस प्रकार की व्यवस्था वेतन का पद सोपान कहलाती है। अर्थात् एक पद 3000 से 3500 दूसरा पद 4500 से 5000 तीसरा पद 7000 से 8000। इस प्रकार के पद सोपान जहाँ वेतन की मात्रा के आधार पर पद की श्रेणी बदलती हो अर्थात् उच्चपद एवं निम्न पद का निर्धारण वेतन के आधार पर ही वेतन का पद सोपान कहलाता है। कभी-कभी कार्य के पद सोपान व वेतन के पद सोपान में भेद करना कठिन हो जाता है, क्योंकि कार्य के आधार पर ही वेतन की मात्रा निश्चित होती है।

7.6 पद सोपानीय व्यवस्था

पद सोपान व्यवस्था ऊर्ध्वाकार और क्षितिजाकार दो रूपों में देखी आती है। जिसके माध्यम से प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन समुचित ढंग से होता है। इसको निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है।



उपर्युक्त चित्र से विदित होता है कि पदसोपानीय व्यवस्था में प्रशासन एक कोण स्तूप अथवा पिरामिड की भाँति उठता है। इसमें A कार्यपालिका का मुख्य अध्यक्ष है, प्रशासकीय संगठन में उसका स्थान सर्वोत्तम है। B उसका तात्कालिक अधीनस्थ (Immediate Subordinate) कर्मचारी है। C, B तथा A दोनों के प्रति उत्तरदायी है। यही बात D तथा E दोनों के समबन्ध में लागू होती है। E जो कि निरन्तर स्तर का कर्मचारी है, D, C, B के प्रति उत्तरदायी होने के साथ-साथ A के प्रति भी उत्तरदायी है। सैद्धान्तिक से यह नियम है कि A सीधे कभी भी E को आदेश नहीं दे सकता बल्कि यह आदेश B, C, D द्वारा होते हुए E तक पहुँचेगा।

चित्र से यह भी स्पष्ट होता है कि E सीधे P से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता। उसे सोपानीय व्यवस्था होने के कारण E को D, C, B, A, M, N, O और अन्त में जाकर P से सम्बन्ध स्थापित करेगा। इस पद्धति की यही दुर्बलता प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट होती है, और वह है कि कार्य करने में काफी देर लगेगी। E को अपनी बात P तक पहुँचाने के लिए सात सोपानों को पार करना पड़ेगा।

प्रशासन के सामने ज्यों-ज्यों कार्यों का बोझ बढ़ रहा है। उसके सामने नयी-नयी समस्यायें भी पनप रही है। इन समस्याओं के समुचित समाधान में विलम्ब, और कार्यों को जटिल बना देता है। अतः इस विलम्ब की समस्या का समाधान करने के लिए फेयोल ने एक ऐसी विधि निकाली जिसके द्वारा दो तटों के मध्य एक पुल का निर्माण किया जा सके। इसके द्वारा निम्न अधिकारी अपने आमने-सामने के विभागीय अधिकारियों से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। यही बात प्रत्येक स्तर के सम्बन्ध में सम्भव हो सकती है यह क्रम ऊपर नीचे दोनों तरफ लागू किया जा सकता है सत्ता की ऊर्ध्वगामी रेखाओं के साथ समानान्तर रेखायें भी दिखाई जा सकती है। काम की तेजी के साथ सम्पन्न हो सकता है। परन्तु फेयोल की यह व्यवस्था मात्र उसी दशायें कार्य कर सकती है, जब कि आमने-सामने के विभागीय कर्मचारियों में मधुर सम्बन्ध हो और अधीनस्थ कर्मचारियों को अपने से उच्च अधिकारियों का आदेश प्राप्त हो।

दूसरा प्रबन्ध ऊर्ध्वरिखा में भी सम्भव हो सकता है। यदि A जो शिखर का सर्वोच्च अधिकारी है चाहे तो B, C को लाँघकर D से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। 1920 में इंग्लैण्ड में सर विलियम जानसन हिक्स गृहमंत्री थे। उनकी आदत थी कि सहायक सचिव ए0एल0डिक्सन से सीधे ही सलाह किया करते थे। किन्तु डिक्सन गृहमंत्री के साथ हुई बातों को स्थायी अवर सचिव एण्डरसन को बता दिया करते थे। यदि इसी प्रकार का विश्वास बना रहे, तो किसी भी प्रकार की कठिनाई उपन्न नहीं होती इस सम्बन्ध में उर्विक महोदय का कथन पूर्ण रूप से लागू होता है कि प्रत्येक संगठन में पदसोपान का क्रम उसी प्रकार का होना चाहिए जैसे किसी घर में जल निकासी की व्यवस्था।

7.7 पद सोपान व्यवस्था के गुण एवं दोष

पद सोपान व्यवस्था के गुण एवं दोष निम्नवत् है।

गुण–मूनी के अनुसार सर्वोपरि समायोजन सम्बन्धी सत्ता प्रत्येक संगठन में कहीं न कहीं अवश्य होती है। संगठन के विचार तथा उसकी धारणा के लिए यह आवश्यक है कि औपचारिक तरह की प्रक्रिया हो, जिसके माध्यम से व्यवस्थित ढांचे शीर्ष से लेकर समस्त ढाँचे तक समायोजन सम्बन्धी सत्ता अपना कार्य कर सके। इसके प्रमुख बिन्दु इस प्रकार है–

(A) समायोजन में सरलता–पद सोपान का सिद्धान्त सार्वभौमिक होना है इसका कारण यह है कि इस सिद्धान्त के द्वारा ही कार्य विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली संगठन की विविध इकाइयों का समाकलन अथवा एकीकरण किया जाता है। यही वह धागा है जिसमें विभिन्न अंगों को एक साथ जोड़ा जाता है। कोई भी संगठन उस समय तक प्रभावशाली नहीं हो सकता अथवा सामूहिक कार्य का

संयोजन नहीं कर सकता जब तक कि उसकी विविध इकाइयों को एक सुसम्बद्ध समूह में समाकल अथवा एकीकृत न किया जाय।

(B) नेतृत्व की स्पष्टता–संगठन में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रधान सत्ता की सम्पूर्ण जानकारी होई है इस जानकारी का स्वाभाविक लाभ यह होता है कि परस्पर भय और सन्देह का कोई स्थान नहीं होता। प्रधान सत्ता द्वारा प्रसारित आदेशों को सरलता के साथ स्वीकार किया जाता है उसका परिपालन इसी स्पष्टता का परिणाम है।

(C) आदेश के सूत्र सुगमतापूर्वक प्रवाहित–पद सोपान ऊपर तथा नीचे की ओर संचार-संवहन का माध्यम प्रस्तुत करता है। इनके द्वारा संगठन के प्रत्येक सदस्य को यह पता लग जाता है कि उसे किन सीढ़ियों से होकर चढ़ना उतरना है।

(D) समुचित माध्यम के सिद्धान्त के अनुरूप–पद सोपान सिद्धान्त द्वारा निर्मित समुचित माध्यम का सिद्धान्त यह दिखाता है कि प्रशासकीय प्रक्रिया में छोटे रास्ते नहीं खोजे जायेंगे अर्थात् मध्यवर्ती कड़ियों की उपेक्षा नहीं की जायेगी। इसके द्वारा उत्तरदायी अधिकारी को स्वतः तथा समुचित रीति से विभागीय कार्यों की समूची जानकारी मिल जाती है।

(E) संगठन के सामान्य सिद्धान्तों को ग्रहण करती है–पदक्रम व्यवस्था के कारण प्रशासकीय संगठन के अन्य सिद्धान्तों जैसे आदेश की एकता अथवा नियन्त्रण की सीमा को सहज रूप में समझा जा सकता है। समन्वय और प्रत्याधिकरण जैसे सिद्धान्त स्वतः कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने में सहायता करते है।

(F) सत्ता के प्रत्याधिकरण में सरलता–यह सिद्धान्त सर्वोत्तम कार्यकारी अधिकारी के नीचे अनेक ऐसे स्तरों का निर्माण कर देता है जिनमें से प्रत्येक स्तर एक निश्चित तथा कम महत्वपूर्ण विषय में निर्णय का केन्द्र होता है। इस प्रकार विभाग के समूचे कार्य का अधिकांश भाग निम्न स्तरों पर ही निपट जाता है तथा केवल महत्वपूर्ण विषय ही ऊपर की तरफ भेजे जाते हैं।

अवगुण–पद सोपान व्यवस्था में गुणों के साथ साथ अवगुण भी पाये जाते हैं जो कि निम्नवत् है–

(A) प्राकृतिक विलम्ब की प्रकृति–इस व्यवस्था में कार्य को निपटाने में देरी देखी जाती है। इसकी मूल अवधारणा यह है कि प्रत्येक प्रस्ताव को क्रमिक सोपान के प्रत्येक पद से ऊपर जाना चाहिए तथा वहाँ से स्वीकृति मिलने पर क्रियान्वयन के लिए पुनः उसे उत्तरोत्तर क्रम से नीचे की ओर अवतरित होना चाहिए। समुचित माध्यम के कठोर नियम के अनुसार प्रत्येक प्रस्ताव और आदेश को आने-जाने में अनेक सीढ़ियों से होकर गुजरना पड़ता है। इसमें बहुत समय लगता है।

(B) भ्रष्टाचार को जन्म–कार्य को सम्पन्न न करने की प्रकृति में यदि कही नियम बाधक हो तब लोक सेवक उन नियमों का पहले सहारा लेता है। अपने गुप्त मन्तव्य की पूर्ति के लिए के लिए प्रयास करता है जिससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

(C) पद सोपान पद्धति के अन्तर्गत लाल फीता शाही और नौकरशाही पनपती है।

(D) इस पद्धति के अन्तर्गत संगठन औपचारिक सम्बन्धों पर आधारित होता है जिससे उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। अनौपचारिक सम्बन्धों के विकसित न होने से अनेक जटिलताएँ सामने आती है।

7.8 पद सोपान और स्वतन्त्र नियामक आयोग

स्वतन्त्र नियामक आयोग अमेरिका की देन है। वहाँ पर ऐसे कमीशन नियुक्त किये जाते हैं। जो

विधानमण्डल के हाथ कहलाते है ये राष्ट्रपति को निरंकुश नहीं बनने देते।

इनके लक्षण इस प्रकार है।

1. मण्डल या आयोग के रूप में गठन होता है।
2. मुख्य कार्यपालिका से स्वतन्त्र होते हैं।
3. आयोग अर्द्धकार्यपालकीय अर्द्धव्यवस्थापकीय एवं अर्द्धन्यायिक होते हैं।
4. वित्तीय स्वायत्तता प्राप्त होती है।
5. विशेषज्ञों का आयोग होता है।
6. ये सरकारी कार्य संचालन की परिधि के बाहर होते हैं।

स्वतन्त्र नियामक आयोग की भी अपनी पद सोपान व्यवस्था होती है। परन्तु सरकारी पद सोपान और स्वतन्त्र नियामक आयोगों के पद सोपान में वित्तीय और प्रशासकीय व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ अन्तर देखे जाते हैं।

7.9 सारांश

पद सोपान का सिद्धान्त प्रत्येक प्रकार के सभी संगठनों का सर्वव्यापी सिद्धान्त है जिसका प्रयोग करने में कई उपयोगी परिणाम प्राप्त होते हैं। पद सोपान द्वारा विभिन्न व्यक्तियों के यत्न इकट्ठे जोड़े जाते हैं। बड़े पैमाने के संगठन में चन्द एक आदेश देते हैं तथा दूसरे आदेश का पालन करते हैं। इसके परिणामस्वरूप अधिकारी और मातहत के सम्बन्ध स्थापित होते हैं। पद सोपान वाले संगठन में आदेश ऊपर से नीचे की तरफ धीरे-धीरे उतरता है एवं उत्तरदायित्व नीचे से ऊपर की बढ़ता है। पद सोपान की क्रमिक प्रक्रिया में व्यक्ति को क्रमशः चढ़ना-उतरना होता है। इसमें उत्तरदायित्व और सत्ता के अनेक छोटे-छोटे स्तर होते है, इसमें प्रत्येक अधिकारी का कर्तव्य होता है कि वह अपने उच्च अधिकारी द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करे और उसे यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह अपने से अधीनस्थ अधिकारी को आदेश दे सके। इस प्रकार आदेश उच्च स्तर से निम्नतम् तक पहुंचता है। अतएव यह आदेशों का एक प्रवाह बन जाता है अर्थात् सत्ता के विभिन्न स्तरों के मध्य संचार का एक अच्छा साधन। सैनिक प्रशासन में आदर्श किस्म का पद सोपान देखने को मिलता है। पद सोपान में सत्ता के अनेक स्तर होते हैं। अतः उनमें सत्ता का हस्तान्तरण करना होता है। उच्च अधिकारी द्वारा प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी को कार्य का एक क्षेत्र सौंप दिया जाता है। अपने क्षेत्र में निर्णय लेने का उन्हें पूरा अधिकार होता है। प्रत्यायोजन के माध्यम से उच्च अधिकारी द्वारा निम्न अधिकारी को कुछ सत्ता सौंप दी जाती है। उसके लिए वह सदा उच्च अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होने के साथ-साथ शिखर पर बैठे-बैठे हुए सबसे उच्च अधिकारी के प्रति भी उत्तरदायी होता है।

उत्तरोत्तर पद क्रम का सबसे मौलिक सिद्धान्त यह है कि उच्च पदों पर आसीन कोई अधिकारी नीचे के अधिकारी के साथ सम्बन्ध स्थापित करते समय कभी भी मध्यस्थ पदाधिकारी की उपेक्षा नहीं कर सकते। इसी प्रकार निम्न पदाधिकारी उच्चतर पदाधिकारियों के साथ सम्पर्क स्थापित करते समय मध्यस्थ पदाधिकारियों की अवहेलना नहीं कर सकता। जिस प्रकार सीढ़ी से चढ़ते-उतरते समय बीच के डण्डे लांघना खतरे से खाली नहीं होता। उसी प्रकार प्रशासकीय पद सोपान में समुचित माध्यम के द्वारा (Through proper chanel) का नियम सर्वोपरि माना जाता है तथा प्रत्येक अधिकारी अथवा कर्मचारी को समस्त आदेश उसके प्रथम उच्चाधिकारी के द्वारा तथा नीचे से आने वाले समस्त प्रतिवेदन प्रार्थना-पत्र सूचना व आकड़े इत्यादि प्रथम निम्न अधिकारी द्वारा ही भेजे जाने चाहिए। पद सोपान को

स्केलर व्यवस्था के नाम से भी जाना जाता है अर्थात् पद सोपान और स्केलर व्वस्था दोनों पर्यायवाची शब्द है। मूनी के शब्दों में स्केल का अर्थ है कुछ ग्रेडिड वस्तु। संगठन में इसका अर्थ होता है कर्तव्यों की श्रेणी, भिन्न कार्यों के अनुसार नहीं बल्कि सत्ता तथा अनुरूप उत्तरदायित्व के अनुसार। सुविधा के लिए इसे स्केलर कड़ी कहा जायेगा। स्केलर पद्धति या पद सोपान के सिद्धान्त की उपयोगिता महत्व एवं उसके सही प्रयोग के सम्बन्ध में एल0उरविक का कथन अत्यधिक उपयुक्त है। इनके अनुसार प्रत्येक संगठन में पद सोपान या स्केलर प्रणाली की जंजीर होनी चाहिए, ठीक उसी प्रकार से जैसे किसी घर में नालियाँ होती है। किन्तु इस मार्ग को संचार के एक मात्र साधन के रुप में प्रयुक्त करना उसी प्रकार से अनावश्यक है जिस प्रकार की नालियों में अपने समय को गुजारना बेकार होता है।

7.10 नियन्त्रण क्षेत्र का विस्तार

नियन्त्रण सीमा के सम्बन्ध में प्रशासन के लेखकों में असमानता देखने को मिलती है। जहाँ पर नियन्त्रण क्षेत्र का असन्तुलित विस्तार हानिकारक है, वहाँ पर क्षेत्र का बहुत सीमित होना भी गलत है। हेमिल्टन ने अपने सैनिक अनुभव के आधार पर तीन या चार लोगों की मर्यादाओं का उल्लेख किया है। एल0उरविक का मानना है कि उच्चत्तर स्तर पर कोई अधिकारी पाँच या छः अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य का प्रत्यक्ष अधीक्षण नहीं कर सकता। क्योंकि उन स्तरों पर कार्य परस्पर गुथा हुआ और जटिल होता है। अतः उच्च स्तर पर इनकी संख्या चार होनी चाहिए और निम्न स्तर पर इनकी संख्या 8 या बारह। लार्ड हाल्डेन तथा ग्राहम वालेस का विचार है कि कोई भी प्रमुख अधिकारी बिना किसी प्रकार का अतिरिक्त भार अनुभव किये 10 से 12 अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य का अधीक्षण कर सकता है वालिस ने इस विषय में विभिन्न देशों की वास्तविक स्थिति का अवलोकन किया और उन्हें यह ज्ञात हुआ कि 1937 में जापान के कार्यकारी अधिकारी के अधीन 13 विभाग, कनाडा इटली में 14, फ्राँस में 17, रुस में 19 या 20, इग्लैंड में 25 अमेरिका में 60 विभाग प्रधान कार्यकारी अधिकारी के पास थे। संख्या में इतनी अधिकता और विभिन्नता होते हुए भी किसी भी देश में प्रशासन भंग नहीं हुआ।

ग्रेकुनाज जिसने हमें नियन्त्रण की सीमा का सिद्धान्त प्रदान किया के अनुसार मातहतों की संख्या तो गणितीय प्रगति (Arithmetical progression) करती है परन्तु इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न सम्बन्धों के जाल में ज्यामितीय प्रगति (geometical progression) होती है। यदि किसी कर्मचारी के अधीन 5 कर्मचारी हो और छठा और जोड़ दिया जाता है, तो जो उसे सहायता मिलेगी वह तो मात्र 23% होगी, परन्तु पर्यवेक्षण कार्य में जो वृद्धि होगी वह 100% होगी। इसका कारण यह है कि जिस व्यक्ति का पर्यवेक्षण किया जाना है, वह मात्र एक मातहत व्यक्ति नहीं है अपितु उसके सम्बन्धों का विस्तृत जाल भी है।

नियन्त्रण सीमा के सम्बन्ध में लूथर गुलिक ने जो विचार व्यक्त किया है उसके निम्नवत् बिन्दु हैं–

(अ) यह स्वाभाविक है कि कोई कितना ही कुशल प्रशासक क्यों न हों उसकी भी कार्य करने की सीमा है।

(ब) सभी अधिकारी एक न एक नियन्त्रण क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करते हैं। जिनसे वे सम्बन्धित होते हैं।

(स) जब किसी कार्य को करने में देरी, भ्रम तथा कार्य वृद्धि न हो, तब यह समझा जाता है कि यहाँ सक्रिय नियन्त्रण क्षेत्र है।

(द) जहाँ पर उत्तरदायित्व व्यापक होता है। वहाँ पर सक्रिय नियन्त्रण क्षेत्र कहा जाता है।

(य) एक बड़े विविध रूप वाले तथा बिखरे हुए संगठन में एकरूपीय संगठन की अपेक्षा अधीनस्थ कर्मचारियों की संख्या कम होती है।

प्रशासन में गतिशीलता की सफलता का परिचायक है यह उच्चस्थ अधिकारियों की कुशलता पर निर्भर है कि वह कितने कर्मचारियों को अपने नियन्त्रण में रख सकता है फिर भी विज्ञान यह निश्चय करने के लिए प्रयत्नशील है कि नियन्त्रण में विस्तार क्षेत्र की सीमा क्या हो? इसके बारे में दो बातें देखी जाती है।

(अ) नियन्त्रण क्षेत्र का अस्तित्व सार्वभौमिक होता है और खतरा उठाये बिना उसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

(ब) नियन्त्रण क्षेत्र को कार्य व्यक्तित्व, समय, स्थान, आदि बाते प्रभावित करती है।

7.11 नियन्त्रण क्षेत्र को निर्धारित करने वाले तत्व

इसके तत्व को निम्न तत्व निर्धारित करते है।

(अ) कार्य–जहां पर कार्य प्रतिदिन एक जैसा बार-बार दोहराया जाने वाला होता है। वहां नियन्त्रण सीमा अधिक होती है। जैसे टंकण लिपिक के कार्यों का निरीक्षण सरल है। इसके ठीक विपरीत बौद्धिक कार्यों में रत व्यक्तियों के कार्य का नियन्त्रण बड़ी मात्रा में करना कठिन है।

(ब) नेतृत्व–नियन्त्रण की सीमा नेतृत्व की कार्यकुशलता एवं प्रभावकारी व्यक्तित्व पर भी निर्भर करता है। यदि निरीक्षणकर्त्ता कुशाग्र बुद्धि, समझदार तथा ढंग से कार्य करने वाला हो तो वह अधिक से अधिक व्यक्तियों का पर्यवेक्षण कर सकता है। यदि वह कमजोर तथा ढुल-मुल हो तो वह चन्द व्यक्तियों का भी प्रभावकारी पर्यवेक्षण नहीं कर सकता। निरीक्षण की मात्रा उन व्यक्तियों की योग्यता पर निर्भर है। जिनके कार्य का पर्यवेक्षण किया जाता है।

3. समय–यदि संगठन लम्बे समय से विद्यमान हो तो पर्यवेक्षण सुगम हो जाता है, तथा नियन्त्रण सीमा बढ़ जाती है। इसके विपरीत यदि संगठन नया है वहाँ प्रतिदिन नयी समस्यायें उत्पन्न होती रहती है और यहाँ पर्यवेक्षण की सीमा दुर्गम होती है।

4. स्थान–पर्यवेक्षण करना उस समय सुगम होता है। जब मातहत और पर्यवेक्षक एक ही छत के नीचे बैठते हो यदि वे भिन्न कमरों में अथवा कुछ दूरी पर कार्य कर रहे हों तो परयवेक्षण करना कठिन हो जाता है क्योंकि वे पर्यवेक्षक की दृष्टि से ओझल हो जाते हैं।

1.12 नियन्त्रण क्षेत्र और पद सोपान

पद सोपान और नियन्त्रण के क्षेत्र में गहरा सम्बन्ध देखा जाता है। पिरामिड की भाँति संगठन में कितना स्तर हों, यह इसी सिद्धान्त के आधार पर तय होती है। विद्वानों ने संगठन को रबर की गेंद के समान माना है। यदि इस गेंद को एक जगह पर फेकी जाय तो यह उछल कर दूसरी जगह गिर पड़ती है और वहाँ से तीसरी जगह पर गिर पड़ती है। इसी प्रकार यदि 25 विभागों के अध्यक्ष मिलकर एक ही अध्यक्ष को अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करे, तो प्रशासन अवश्य ही चौरस बन जाता है, यदि दूसरी तरफ अध्यक्ष को यदि तीन व्यक्ति प्रतिवेदन दे और अन्य लोग रिपोर्ट, इन तीनों के ही प्रस्तुत करे तो ढाँचे में स्तर बढ़ाने पड़ते है। ऐसा होने पर संचार की समस्या कठिन हो जाती है क्योंकि प्रथम में तो अपने अधिकारी से बात कर सकते थे और दूसरे में 22 व्यक्ति किसी दूसरे के माध्यम से बात करते हैं अतः यह स्वाभावि है कि प्रशासनिक कठिनाइयाँ और पेंचीदगियाँ बढ़ जायेगी।

7.13 नियन्त्रण के क्षेत्र पर साइमन और ग्रेकुनाज के विचार

साइमन ने नियन्त्रण के क्षेत्र पर विचार व्यक्त किया है कि एक विषय के कार्य रूप में परिणीत होने से पहले जिन संगठनात्मक स्तर से होकर गुजरना पड़ता है, उनकी संस्था कम से कम रखने पर प्रशासकीय कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। उसका मानना है कि नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित होने के साथ-साथ संगठन के स्तर को भी कम कर दिया जाय, परन्तु यह दोनों बातें विरोधी है। इसका प्रशासन पर गलत प्रभाव पड़ता है। नियन्त्रण का क्षेत्र कम करने से लाल फीताशाही के बढ़ने की सम्भावना होती है। कभी-कभी यह कहा जाता है कि प्रत्येक पदाधिकारी के अधीन जितने कर्मचारी है उनकी संख्या बढ़ा दी जाय, जिससे शीर्ष छोटा हो जायेगा और उसका स्वरूप भी पिरामिड की तरह हो जायेगा। परन्तु इस व्यवस्था में नियन्त्रण के कमजोर होने की सम्भावना रहती है।

मि0वी0ए0ग्रेकुनाज ने सन् 1933 में एक लेख प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था "संगठन में सम्बन्ध"। इस लेख में उन्होंने अधीनस्थ और उच्च अधिकारियों के बीच स्थित सम्बन्धों की समस्या पर विचार किया है। उन्होंने एक गणितीय सूत्र विकसित करके यह प्रतिपादित किया है कि जब अधीनस्थों की संख्या बढ़ जाती है, तो सम्बन्धों की संख्या भी गणितीय रूप में बढ़ जाती है इनका कहना है कि जब उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों से सम्बन्ध रखे, तो उसे हमेशा यह बात मस्तिष्क में रखनी चाहिए कि उसका न केवल प्रत्येक अधीनस्थ से प्रत्यक्ष रूप में व्यक्तिगत सम्बन्ध है बल्कि उसके सम्बन्ध अधीनस्थों के विभिन्न समूहों से और अधीनस्थों के पारस्परिक सम्बन्धों से भी है।

इन सम्बन्धों की संख्या, प्रबन्धित किये जाने वाले समूह की संख्या के साथ-साथ बदलती रहती है। ग्रेकुनाज ने ऐसे तीन प्रकार के सम्बन्धों का वर्णन किया है। ये हैं–

1. प्रत्यक्ष इकहरे सम्बन्ध
2. प्रत्यक्ष समूह सम्बन्ध
3. आड़े खड़े सम्बन्ध

प्रत्यक्ष इकहरे सम्बन्ध वे होते हैं जो किसी सर्वोच्च अधिकारी और उसके तात्कालिक अधीनस्थों के साथ व्यक्तिगत एवं परोक्ष रूप में होते हैं। प्रत्यक्ष समूह सम्बन्धों का अर्थ है सर्वोच्च अधिकारी और अधीनस्थों के प्रत्येक सम्भावित मिश्रण के मध्य स्थित सम्बन्ध। आड़े खड़े सम्बन्धों का अर्थ है कि जब एक उच्च अधिकारी के विभिन्न अधीनस्थों को पारस्परिक सम्पर्क करने की आवश्यकता होती है तो इस प्रकार के सम्बन्धों का जन्म होता है।

7.14 सारांश

नियन्त्रण के क्षेत्र को ग्रेकुनाज ने ध्यान के क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया है। इनकी मान्यता है कि मानवीय ध्यानक्षेत्र सीमित होता है, कोई कितना ही कुशल प्रशासक क्यों न हो, बहुत अधिक अधीनस्थ कर्मचारियों की संख्या का निरीक्षण नहीं कर सकता और यदि नियन्त्रण का विस्तार क्षेत्र विस्तृत कर दिया जाय तो उसके असन्तोष जनक परिणाम आने लगते हैं जान डी0मिलेट ने ठीक ही कहा है कि अनुभव एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान दोनों इस बात की पुष्टि करते हैं कि किसी भी प्रशासकीय अधिकारी की पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा रहती है। यदि अधिकारी की सामर्थ्य से कम नियन्त्रण क्षेत्र रखा जाता है तो यह गलत है क्योंकि अधिकारी अपनी क्षमताओं और सामर्थ्य का पूरा लाभ नहीं ले सकता। यदि उसकी कार्य क्षमता से अधिक नियन्त्रण उसे सौप दिया गया तब उसकी प्रशासकीय कठिनाइयां बढ़ जाती है और इससे संगठन को लाभ की जगह पर हानि होने लगती है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि किसी भी संगठन में कार्य सम्पादन का स्तर कुछ सीमा तक इस बात पर निर्भर होता है कि उच्च अधिकारी अधीनस्थ कर्मचारियों पर कहाँ तक प्रभावी नियन्त्रण रख सकता है परन्तु यह भी स्पष्ट है कि कोई भी उच्च अधिकारी व्यक्तियों की असीमित संख्या पर नियन्त्रण नहीं रख सकता क्योंकि नियन्त्रण का क्षेत्र मानवीय ध्यान क्षेत्र के कारण सीमित होता है।

7.15 उपयोगी पुस्तकें

1. डॉ०एम०पी०शर्मा, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार
2. अवस्थी एण्ड माहेश्वरी, लोक प्रशासन
3. डॉ० सुरेन्द्र कटारिया एवं सुधा कटारिया, प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध
4. अवस्थी एवं अवस्थी, प्रशासनिक सिद्धान्त
5. आर०एल०सिंह, लोक प्रशासन
6. डॉ० पी०डी०शर्मा एवं हरिश्चन्द्र शर्मा, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार।

1.16 सम्बन्धित प्रश्न

(a) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पद सोपान क्या है? परिभाषा दीजिए एवं इसके गुण-दोषों पर प्रकाश डालिए।
2. पद सोपान पर लेख लिखिए।
3. नियन्त्रण क्षेत्र की सीमा बताइये।
4. नियन्त्रण के क्षेत्र पर साइमन और ग्रेकुनाज के विचारों का उल्लेख कीजिए।

(b) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पद सोपान के प्रकार बताइए।
2. पद सोपान की आवश्यकता किन कारणों से महसूस की जाती है? स्पष्ट कीजिए।
3. नियन्त्रण क्षेत्र और पद सोपान पर टिप्पणी करो।
4. नियन्त्रण क्षेत्र की निर्धारित करने वाले तत्व बताइये।

(c) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पद सोपान के सर्वोच्च शिखर पर होता है।
   (a) निम्न निष्पादक
   (b) मुख्य निष्पादक
   (c) कर्मचारी
   (d) उपर्युक्त में से कोई नहीं
2. पद सोपान व्यवस्था में विलम्ब की समस्या के समाधान के लिए पुल की व्यवस्था का निर्माण किया है।

(a) पिफनर तथा शेरवुड

(b) एलण्डी ह्वाइट

(c) रैले

(d) फेयोल

3. नियन्त्रण की सीमा के सिद्धान्त के प्रतिपादक है–

(a) वालेरन

(b) हेमिल्टन

(c) ग्रेकुनाल

(d) इनमें से कोई नहीं

4. नियन्त्रण के क्षेत्र को निर्धारित करने वाला तत्व हैं।

(a) कार्य

(b) नेतृत्व

(c) समय

(d) उपर्युक्त सभी

7.17 प्रश्नोत्तर

1. (b)
2. (d)
3. (c)
4. (d)

इकाई–8 : आदेश की एकता (Unity of Commond)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 आदेश की एकता का अर्थ एवं परिभाषा

8.3 आदेश की एकता सिद्धान्त की विशेषताएँ

8.4 आदेश की एकता सिद्धान्त की आलोचना

8.5 आदेश की एकता के सिद्धान्त का महत्व

8.6 आदश की एकता पर साइमन के विचार

8.7 सारांश

8.8 समन्वय का अर्थ एवं परिभाषा

8.9 समन्वय की आवश्यकता एवं प्रकृति

8.10 समन्वय के सिद्धान्त : प्रकार एवं प्रणालियाँ

8.11 प्रभावकारी समन्वय में बाधाएँ

8.12 समन्वय, सहयोग और नियन्त्रण

8.13 भारतीय प्रशासन में समन्वय की आवश्यकता।

8.14 सारांश

8.15 उपयोगी पुस्तकें

8.16 सम्बन्धित प्रश्न

8.17 प्रश्नोत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- आदेश की एकता का अर्थ एवं परिभाषा की विवेचना कर सकेंगे,
- आदेश की एकता के सिद्धान्तों का आलोचनात्मक विवरण कर सकेंगे,
- समन्वय का परिभाषा व अर्थ की विवेचना कर सकेंगे,
- समन्वयों के सिद्धान्त तथा प्रणाली का आलोचनात्मक विवरण कर सकेंगे,
- भारतीय प्रशासन में इसकी आवश्यकता का उल्लेख कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

संगठन मूलतः एक भावना और व्यवस्था है, जिसको कुछ निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करना पड़ता है।

संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने का कार्य लोक सेवक वर्ग को सम्पन्न करना होता है। यदि इस संगठन में किसी व्यक्ति से दो परस्पर विरोधी आदेशों को मानने को कहा जाता है तो उसके परिणामस्वरूप भ्रम तथा अकुशलता उत्पन्न होगी और यहां तक कि संगठन की कार्यपद्धति में पक्षाघात की सी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। परस्पर विरोधी आदेशों से कर्मचारी को बचाने के लिए यह कहा जाता है कि निर्णयों को कार्यान्वित करने तथा अपने कार्यों का सम्पादन करने में उसे मात्र एक ही उच्च अधिकारी की सत्ता स्वीकार करनी चाहिए। इसे ही आदेश की एकता कहा जाता है।

संगठन की विशेषताओं में विशेषीकरण तथा कार्य विभाजन महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। संगठन के भिन्न-भिन्न सदस्य भिन्न-भिन्न कार्य सम्पन्न करते हैं। यह विशेषीकरण तथा कार्यविभाजन सुविधा की दृष्टि से किया जाता है। किन्तु उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसके सभी सदस्यों में समूह भाव तथा सहयोग का होना अनिवार्य है। हर संगठन में यह प्रयास करना आवश्यक है कि कार्यों में अतिव्यापन तथा दोहरापन न हो तथा सभी कर्मचारी व अधिकारी अधिक से अधिक समूह भाव से कार्य करें।

8.2 आदेश की एकता का अर्थ एवं परिभाषा

आदेश की एकता के तीन अर्थ हो सकते हैं–

(i) एक संगठन की सभी इकाइयाँ एक ही मुख्याधिकार अध्यक्ष, सचिव अथवा अधिकारियों के निकाय के अधीन होनी चाहिए।

(ii) संगठन के शीर्ष पर एक व्यक्तित्व होना चाहिए न कि व्यक्तियों का निकाय, सत्ता की सभी रेखाएँ उस एक व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित होनी चाहिए। यह अर्थ सेना की शब्दावली में लाइन ऑफ कमाण्ड के अनुरुप है जिसके तुल्य प्रशासन में (Through proper Channel) होता है।

(iii) आदेश की एकता का अर्थ यह भी होता है कि कोई भी कर्मचारी, एक आसन्न अधिकारी से अधिक अधिकारियों के अधीन नहीं होने चाहिए।

इस प्रकार यदि हम तीनों अर्थों पर विचार करे तो स्पष्ट होता है कि न्यूनाधिक अन्तिम अर्थ को ही स्वीकार किया जा सकता है जहाँ तक दूसरे अर्थ का सम्बन्ध है उनसे आदेश की एकता का भाव स्पष्ट नहीं होता। यदि हम आदेश की एकता के उपरोक्त वर्णित अर्थ को स्वीकार करें तो यह संगठन के स्वतन्त्र अथवा स्वायत्त इकाइयों जैसे स्वतन्त्र नियामक आयोग आदि से मेल नहीं खाता। यदि आदेश की एकता का ऊपर (ii) में दिये गये रूपों में स्वीकार किया जाये तो राज्य बिजली बोर्ड अथवा लोकसेवा आयोग जैसे संगठन के बोर्डों अथवा आयोगों से मेल नहीं खाता।

कोई भी अधीनस्थ कर्मचारी यदि अनेक उच्चस्थ कर्मचारियों से आदेश प्राप्त करता है तब अनेक समस्यायें पैदा होती है, जैसे–

(अ) हो सकता है कि कर्मचारी को अनेक विरोधी आदेश प्राप्त हो।

(ब) कर्मचारी किसी भी आदेश को पूरी तरह न समझ सके और दूसरे ढंग का कार्य कर बैठे या दुविधा में पड़ जाय।

(स) यह भी हो सकता है कि अधीनस्थ कर्मचारी अपने उच्चस्थ अनेक अधिकारियों को लड़ाने का कार्य करे।

इसलिए आदेश की एकता का अर्थ है कि प्रत्येक कर्मचारी का एक ही अधिकारी होना चाहिए तथा उसको उसी से आदेश प्राप्त करने चाहिए। इसकी परिभाषा निम्नवत है–

(1) हेनरी फेयोल के अनुसार–"किसी कर्मचारियों को मात्र एक ही उच्च अधिकारी द्वारा आदेश दिये जाने चाहिए इसी को आदेश की एकता कहा जाता है।"

(2) पिफनर तथा प्रिस्थस के मतानुसार–आदेश की एकता का तात्पर्य यह है कि किसी संगठन का प्रत्येक सदस्य मात्र एक वरिष्ठ अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होगा।

आदेश की एकता का सबसे अच्छा उदाहरण हमें सेना के संगठन में देखने को मिलता है। जैसे सेकेण्ड लेफ्टिनेनट को लैफ्टिनैनट आदेश देता है लैफ्टिनैन्ट को कैप्टन, कैप्टन को मेजर और क्रमशः इसी प्रकार। यदि किसी अधीनस्थ कर्मचारी को मात्र एक ही उच्च अधिकारी का आदेश मिलें तब उसे हम आदेश की एकता कह सकते हैं।

8.3 आदेश की एकता सिद्धान्त की विशेषता

इसकी विशेषताएँ निम्नवत है–

1. इस सिद्धान्त से प्रशासन में कार्यकुशलता का विकास होता है।
2. यह स्केलर पद्धति के अनुकूल है।
3. कर्मचारियों में आज्ञा के सम्बन्ध में भ्रांति उत्पन्न नहीं होती। इसी कारण इसे प्रशासन के कार्यों में देरी नहीं होती।
4. यदि आज्ञा प्रसारित करने वाले कर्मचारी की संख्या एक से अधिक होती है तब उनमें भ्रांति उत्पन्न करवाकर अधीनस्थ कर्मचारी उसका काम उठा सकता है।
5. मनोवैज्ञानिक पक्ष यह है कि आज्ञा पालन की आदत पड़ती है।

8.4 आदेश की एकता सिद्धान्त की आलोचना

सैद्धान्तिक रूप से आदेश की एकता का सिद्धान्त निर्विवाद प्रतीत होता है परन्तु क्रियात्मक रूप में इसके कई अपवाद है जो कि निम्नलिखित है–

1. इस सिद्धान्त को हर क्षेत्र में लागू नहीं किया जा सकता। व्यावसायिक क्षेत्र से सम्बन्धित कर्मचारी दोहरे आदेशों के अधीन होता है, उसे न केवल प्रशासकीय पक्ष से अपितु व्यावसायिक पक्ष से भी आदेश प्राप्त होते है। जैसे एक डाक्टर जो स्थानीय निकाय में नियुक्त है, वह स्थानीय निकाय के अध्यक्ष के प्रशासनिक नियन्त्रण के अधीन तथा साथ ही व्यावसायिक दृष्टि से निदेशक लोक स्वास्थ्य के भी अधीन है। हमारे देश में जहाँ सभी शीर्ष आसामियों पर प्रशासनिक सेवा के गैर तकनीकी अधिकारी नियुक्त है। उनके अधीन तकनीकी विभाग भी है अतः यहाँ पर आदेश अथवा नियन्त्रण का दोहरापन है यह बात आश्चर्यजनक है कि क्या सचिव, राज्य बिजली बोर्ड जो बोर्ड के प्रशासन का कर्मचारी है, मुख्य इंजीनियर के आदेशों का उल्लंघन करते हुए तकनीकी कर्मचारियों को आदेश देने योग्य है, यह बात उसके तकनीकी मामलों सम्बन्धी सीमित ज्ञान को दृष्टि में रखते हुए कही गयी है।

2. वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन के जन्मदाता टेलर आदेश की एकता को नहीं मानते। वे सैनिक पद्धति कहकर इसकी निन्दा करते हैं। उन्होंने इसके स्थान पर कृत्यमूलक निदेशन तथा अधीक्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। टेलर का मत है कि प्रत्येक कर्मचारी को आठ अधीक्षकों के नियन्त्रण में रहना चाहिए।

1. दल अधिकारी 2. गति अधिकारी, 3. निरीक्षक, 4. मरम्मत अधिककारी 5. कार्य अनुशासक, 6. अनुदेशक कार्ड क्लर्क, 7. समय तथा लागत क्लर्क, 8. कार्य व्यवस्था तथा पद्धति क्लके।

इनमें से प्रथम चार तो स्वयं कार्यालय अथवा कार्यलय से ही संचालित होंगे। वे कर्मचारियों और अधिकारियों को उनके विशेष कार्य में सहायता देंगे तथा अन्य चार का संचालन नियोजन कक्ष में होगा वहाँ से आदेश अथवा अनुदेश लिखित रूप में भेजे जायेंगे। टेलर का मत है कि इस योजना का मुख्य लाभ यह होगा कि प्रत्येक कार्य में विशेषज्ञ और प्रशासकीय अधीक्षण उपलब्ध हो जायेंगे। अधीक्षकों के मध्य काम का बँटवारा हो जाने से इसमें सुगमता होगी। एक ही अधीक्षक से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इन सभी कार्यों का विशेषज्ञ होगा।

टेलर ने अधीक्षण के कार्य में इस विशेषीकरण की योजना का प्रतिपादन उद्योग के क्षेत्रों के लिए किया गया था, परन्तु वह लोक प्रशासन के क्षेत्र में भी अवतरित हो गयी है। तथा दिन प्रतिदिन महत्वपूर्ण होती जा रही है। सामान्य प्रशासकीय अधीक्षण के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के विशेषज्ञों द्वारा प्राविधिक अधीक्षण की मात्रा भी बढ़ती जा रही है। इसी आधार पर आलोचक यह कह रहे हैं कि आदेश की एकता का सिद्धान्त खण्डित हो गया है। सेकलर हडसन ने भी एकता के सिद्धान्त का विरोध किया है। व्यावहारिक आधार पर देखा जाय तो यह सिद्धान्त अनुपयोगी है। उन्हीं के शब्दों में "सरकार में प्रशासन के अनेक सिद्धान्त अनेक बॉस होते हैं। वह उनमें से किसी भी अवहेलना नहीं कर सकता। एक से वह नीति सम्बन्धी, दूसरे से वह कर्मचारी वर्ग सम्बन्धी, तीसरे से बजट सम्बन्धी, चौथे से वितरण तथा सामान सम्बन्धी।" जॉन डी मिलेट ने द्विमुख पर्यवेक्षण के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हुए कहता है कि आज्ञा की अवधारणा के साथ-साथ यह भी मान लिया जाना चाहिए कि कुछ कार्य में दोहरे नियन्त्रण तकनीकी और प्रशासकीय की आवश्यकता पड़ती है। दो प्रकार का निरीक्षण अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। एक का सम्बन्ध कार्य करे की घोषणा तथा दूसरे का सम्बन्ध इस बात से हो सकता है कि साधन मानव तथा सामग्री जो कार्य के लिए उपयुक्त हो, उनका प्रयोग कहां तक हुआ है।

3. यह सिद्धान्त अब प्राचीन पड़ चुका है, चूँकि प्रशासन का क्षेत्र बढ़ रहा है और इसी के कारण सहायक अभिकरणों का प्रभाव बढ़ चुका है। प्रशासनिक जटिलता को समाप्त करने के लिए विशेषज्ञों की संख्या भी बढ़ रही है। इन तत्वों के फलस्वरूप आधुनिक समय में नियन्त्रण की एकता समाप्त हो गयी है। नियन्त्रण में दोहरे पन की बात नहीं रही, अब तो नियन्त्रण की अनेकता का प्रचलन हो गया है। जैसे अब जिला अधिकारी को दो दर्जन विभागों से आदेश प्राप्त होते हैं। आज का जिलाधीश कई बार इस समस्या का सामना करता है कि वह किस स्वामी का आदेश माने, किसका नहीं।

4. आदेश की एकता का सिद्धान्त सरकारी प्रशासन में कठिनाई से देखने को मिलता है। सरकारी शासन में एक प्रशासन में कई स्वामी होते हैं और वह किसी की उपेक्षा नहीं कर सकता।

8.5 आदेश की एकता के सिद्धान्त का महत्व

अनेक आलोचनाओं के पश्चात भी यह स्वीकार करना होगा, कि यह सिद्धान्त एक सरल और उपयोगी सिद्धान्त है। आदेश की एकता के सिद्धान्त के पक्ष में एक अधिक मजबूत तर्क यह है कि इस सिद्धान्त का खण्डन वास्तव में तब नहीं होता जब कोई कर्मचारी अपने कार्य के विविध पक्षों अथवा उससे सम्बन्धित विविध मामलों में अनेक उच्चाधिकारियों से आदेश प्राप्त करता है इस सिद्धान्त का खण्डन मात्र तब होता है जब उसें एक ही मामले में अनेक उच्चाधिकारियों से आदेश ग्रहण करना पड़ता है। वास्तव में प्रशासकीय और प्राविधिक अधीक्षक भिन्न-भिन्न मामलों में एक ही कार्मिक पर नियन्त्रण रखते है अतएव कर्मचारी एक मामले में एक ही कर्मचारी से आदेश ग्रहण करता है। सूक्ष्मता के साथ देखने से ज्ञात होता है कि आदेश के एकता के सिद्धान्त के खण्डन की बात भ्रामक है। हाँ यह जरूर हो सकता है कि विभिन्न अधीक्षक सत्ता का कार्यक्षेत्र भलीभाँति निश्चित किया जा सकता है। कुछ ऐसे कठिन मामले हो सकते हैं, जिनमें यह व्यवहारिक न हो। ऐसे मामलों में यह प्रमुख

प्रशासकीय अधिकारी पर निर्भर रहना होगा। यदि वह चाहेगा तो प्राविधिक विशेषज्ञ के निर्णय को रद्द कर देगा। इससे आदेश की एकता का पूरी तरह व्यवहार में आ जायेगा। अतः इस सिद्धान्त का बहुत ही महत्व है।

8.6 आदेश की एकता पर साइमन के विचार

हरबर्ट साइमन ने आदेश की एकता के सिद्धान्त पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उनकी मान्यता है कि इस सिद्धान्त की कभी आलोचना नहीं की जा सकती क्योंकि भौतिक रूप से यह असम्भव है कि एक ही व्यक्ति कई विरोधी आज्ञाओं का पालन करे। परन्तु प्रशासकीय संगठन में इसका सही अर्थ यह होगा कि एक संगठन के किसी व्यक्ति को ऐसी स्थिति में न रखा जाय जहाँ पर उसे दो अलग-अलग अधिकारियों के आदेशों का पालन करना पड़े। लूथर गुलिक का मानना है कि यदि इसका कठोरता के साथ पालन किया जाय तो अवांछनीय स्थितियाँ पैदा हो सकती है परन्तु ये चीजे मतिभ्रम अकार्य कुशलता के अतिरिक्त कछ नहीं है जो नियमों के उल्लंघन से पैदा होती है। साइमन का मानना है कि यदि आदेश की एकता को परिभाषित किया जाय तो उसकी स्पष्टता और अनेकार्थता के आधार पर आलोचना नहीं की जा सकती। इसमें जो कमी है वह यह है कि यह सिद्धान्त विशेषीकरण सिद्धान्त के प्रतिकूल है। साइमन का सुझाव है कि आदेश की एकता के सिद्धान्त को अच्छे ढंग से तभी तक सुरक्षित रखा जा सकता है, जब उसे संकीर्ण बनाकर इस रूप में परिभाषित किया जाय। जब दो शक्तिशाली आदेशों में संघर्ष उत्पन्न हो जाये तब एक ऐसा निश्चित व्यक्ति होना चाहिए जिसकी आज्ञा का पालन अधीनस्थ करे। सत्ता का दबाव उस अधीनस्थ अधिकारी के विरुद्ध इसलिए प्रयुक्त होने चाहिए, ताकि वह उस व्यक्ति की आज्ञा का पालन कर सके। इस प्रकार परिभाषित हो जाने पर समस्यायें सुलझ जाती है तथा यह व्यावहारिक हो जाता है।

8.7 सारांश

प्रशासन के कार्यों को भलीभांति चलाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि आज्ञाओं और निर्देशों के स्वरों में बहुलता के स्थान पर एकता हो। उनमें बहुलता होने पर न केवल प्रशासन की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचती है वरन् सरकार तथा राजनीतिक सत्ता की प्रतिष्ठा को भी धक्का पहुंचता है। योजना बनाते समय तथा नीति निर्देशित करते समय विभिन्न कर्मचारियों में विचार-विमर्श एवं बहस-मुवाहिसा होना अनिवार्य है ताकि योजनाओं तथा नीतियों में त्रुटि न रह जाये, परन्तु इस समय आज्ञा एवं निर्देश का प्रश्न उपस्थित हो, पदाधिकारियों की आज्ञाओं अथवा निर्देशों में निश्चतता का होना उसी प्रकार अनिवार्य है जिस प्रकार आज्ञाओं अथवा निर्देशों के स्वरों में एकता होना अनिवार्य है। इसका अर्थ यह है कि पदाधिकारियों की आज्ञाओं में जल्दी-जल्दी परिवर्तन न किया जाये। एक बार जो आज्ञा दे दी गयी है पदाधिकारी को उसी पर स्थिर रहना चाहिए। आज्ञा में शीघ्र परिवर्तन होने से प्रशासन के कार्य में शिथिलता आ जाती है। कर्मचारी सदैव असमंजस में रहते हैं और यह सोचते हैं कि मालूम नहीं किस समय पदाधिकारी की आज्ञा में परिवर्तन हो जाय और उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाये। आज्ञाओं में शीघ्र परिवर्तन होने से न केवल उपकर्मचारियों के हृदय में पदाधिकारी के प्रति आदर कम हो जाता है वरन् जनता भी ऐसे शासन को घृणा की दृष्टि से देखने लगती है।

8.8 समन्वय का अर्थ एवं परिभाषा

समन्वय को हम संघनन, तालमेल आदि नामों से भी पुकारते हैं जिसका अर्थ है कि बिखरे हुए भागों को मिलाना। नकारात्मक दृष्टि से समन्वय का अर्थ है, विरोध तथा दोहरे पन को प्रशासन से हटाना। सकारात्मक दृष्टि से इसका अर्थ है सहयोग लाना तथा कर्मचारियों को टीम भावना से कार्य करने के

लिए प्रेरित करना। इसकी परिभाषा निम्नवत है–

"उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कई भागों को सुव्यवस्थित ढंग से एक इकाई में पिरोना ही समन्वय है।" *–चार्ल्स वर्थ*

"समन्वय कार्य के विभिन्न भागों को अन्तः सम्बन्धित करने का महत्वपूर्ण कर्तव्य है।" *–सेकलर हडसन*

"तालमेल का अर्थ है भागों का एक दूसरे के साथ सामंजस्य तथा भागों का ठीक समय पर कार्य करना ताकि समस्त उत्पादन में प्रत्येक का अधिकतम उपयोग हो सके।" *–टैरी*

"एक भाग का दूसरे भाग के कार्यों, गतिविधियों व क्रियाओं के मध्य आपस में तालमेल कि पूर्ण की प्राप्ति में प्रत्येक का अधिकतम उपयोग हो सके, समन्वय कहलाता है।" *–एल0डी0ह्वाइट*

``Co-ordination expresses the principles of organization in total nothing less." *–R.M. Finolay.*

``Co-ordination is not a separate activity but a condition that should penetrate all phases of administration."*–Newman.*

8.9 समन्वय की आवश्यकता और प्रकृति

संगठन में समन्वय की आवश्यकता निम्न कारणों से देखी जाती है–

1. कर्मचारियों में सहयोग की भावना उत्पन्न करने के लिए।
2. कर्मचारी, सामग्री व धन का अधिकतम लाभ उठाने के लिए।
3. कार्यों में एकता लाने के लिए।
4. अतिच्छादन और द्विगुणन को दूर करने के लिए।
5. कार्य का औचित्यपूर्ण व समान वितरण के लिए।
6. कार्य व उत्तरदायित्व को स्पष्ट करने तथा अमहत्वपूर्ण कार्य को रोकने के लिए।

प्रकृति–इसकी प्रकृति को निम्न रूपों में समझा जा सकता है।

1. प्रमुख कार्यपालिका अधिकारी का उत्तरदायित्व–निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति अनायास सहयोग से ही सम्भव नहीं होती है।" सहयोग समन्वय नहीं है, अतः प्रमुख कार्यपालिका के मुख्य अधिकारी का उत्तरदायित्व बनता है कि वह अपने अधीनस्थों के मध्य समन्वय पैदा करे।

2. समन्वय एक प्रक्रिया है–समन्वय एक विवेकपूर्ण दूरदर्शी प्रक्रिया है जो प्रत्येक संगठन में स्वाभाविक रूप से ही विद्यमान रहती है। इसकी उत्पत्ति के लिए अधिकारी को हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि यह कोई आवश्यक नहीं है कि एक बार समन्वय पैदा हो जाने के पश्चात् समन्वय बना ही रहे।

3. समन्वय सामूहिक प्रयास की व्यवस्था है–तालमेल या समन्वय सामूहिक प्रयास की उपलब्धि है। सामूहिक प्रयास को अपनी निश्चित दिशा की तरफ मोड़ना समन्वय है। प्रयत्नों की अच्छी व्यवस्था का नाम समन्वय है और अच्छी व्यवस्था की कुशलता की वृद्धि है।

4. तालमेल प्रयत्नों की एकता है–तालमेल किसी भी व्यवस्था का हृदय एवं प्रयत्नों की एकता है। यह सिद्धान्त का एक ऐसा गुण है जो नेतृत्व की आवश्यकता को जन्म देता है। प्रयत्नों की

अव्यवस्था संगठन को धराशायी कर सकती है प्रयत्नों में समन्वय उत्पन्न करना कार्यपालिका का कर्त्तव्य है।

5. समन्वय सामान्य उद्देश्य की पूर्ति–किसी भी संगठन की सफलता इस बात पर आधारित होती है कि किस सीमा तक मुख्य प्रबन्धक संस्था की व्यवस्था में समन्वय उत्पन्न करने में सफल रहा है। अधिकार और कर्तव्यों के बीच संतुलन स्थापित करने के प्रयत्न तथा कर्मचारियों में समुचित कार्य विभाजन की प्रक्रिया को समन्वय कहा जाता है, अच्छे समन्वय के लिए कर्मचारियों के सामान्य उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए।

8.10 समन्वय के सिद्धान्त

फॉलेट ने समन्वय के निम्नलिखित सिद्धान्त बताये हैं–

1. प्रत्यक्ष सम्बन्ध–जब दो या दो से अधिक पदाधिकारी अपने पदों की हैसियत एवं निश्चित नियमों की कठोर सीमाओं में रहकर कटुतापूर्ण व्यवहार करते हैं, तो उससे समस्यायें सुलझने की अपेक्षा उलझती है तो प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं।

2. प्रारम्भिक स्तर पर समन्वय सरल ढंग से उत्पन्न किया जा सकता है–फॉलेट का मानना है कि तालमेल को यदि योजना निर्माण के शुरुआती दौर में प्राप्त कर लिया जाय तो वह सबसे अधिक उत्तम स्थिति होती है, यदि योजना को बनाते समय इसकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जाता है और समन्वय सम्बन्धी त्रुटियाँ छोटी बात समझकर छोड़ दी जाती है तो यह कभी आगे चलकर शासन एवं संगठन के लिए घातक सिद्ध होती है।

3. यह सम्बन्धों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया है–स्वस्थ समन्वय के लिए व्यावहारिक रूप में कर्मचारियों के मध्य आदान-प्रदान की व्यवस्था होनी चाहिए। तालमेल उत्पन्न करने के लिए कर्मचारियों में लेन-देन की भावना का होना आवश्यक है।

4. तालमेल एक शाश्वत प्रक्रिया है–समन्वय में कोई ऐसी व्यवस्था नहीं होती जिसे एक व्यक्ति प्रारम्भ करके फिर निश्चिन्तता से बैठ जाय। प्रत्येक समय एक कुशल पनवेला की तरह समन्वय कर्ता को देखते रहना चाहिए कि कहीं दरार पड़कर पानी तो नहीं बह रहा है, कहीं कर्मचारियों के मध्य आपसी कटुता तो नहीं बढ़ रही है। अतएव प्रशासन के समस्त स्तरों पर समन्वय का विकास अपेक्षित है।

समन्वय के प्रकार–इसके निम्न रूप है–

1. नीति समन्वय–प्रशासकीय पुर्नगठन का यह एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होना चाहिए कि वह बड़ी मात्रा में इस प्रकार के समन्वय को प्राप्त करने का प्रयास करे। भारत, ब्रिटेन में इसका सम्पादन कैबिनेट के द्वारा किया जाता है। उसमें विभिन्न समितियों की अपनी भूमिका होती है। अमेरिका में भी इसका निष्पादन कैबिनेट द्वारा होता है।

2. अन्तर्विभागीय समन्वय–आन्तरिक समन्वय संगठन की विविध इकाइयों के मध्य किया जाता है, यह कर्मचारियों के मध्य होता है और बाह्य तत्वों से प्रभावित नहीं होता।

3. क्षितिजाकार समन्वय–इसमें संघनन एक कर्मचारी के कार्यों का दूसरे कर्मचारी के कार्य से एक अनुभाग का दूसरे अनुभाग से, एक शाखा का दूसरी शाखा से, एक डिवीजन का दूसरे डिवीजन से एवं एक विभाग का दूसरे विभाग से होता है।

4. लम्बवत समन्वय–डॉ0एपलवी के अनुसार लम्ब रूप से तालमेल कर्मचारी का उसके अधिकारी

से अधिकारी का उससे प्रवर अधिकारी से तथा इसी प्रकार आगे तालमेल किया जाता है।

संघनन की प्रणालियाँ–समन्वय दो प्रकार से स्थापित किया जाता है, बाध्य करके तथा स्वेच्छापूर्वक। स्वेच्छा पूर्ण समन्वय को बंधनकारी समन्वय से अधिक वरीयता दी जाती है।

(क) बंधनकारी तालमेल–यह समन्वय संगठनात्मक ढाँचे के माध्यम से किया जाता है। यदि किसी विभाग के विभिन्न डिवीजनों का विरोध या किसी डिवीजन के ब्यूरो के दो अनुभागों का विरोध हो तथा आपसी बातचीत द्वारा न सुलझे तो साझे प्रवर अधिकारी को निर्दिष्ट किया जाता है। उसका निर्णय उस पर बंधनकारी होता है। फिर भी ऐसे अफसर बार-बार नहीं आने चाहिए। क्योंकि इनसे दुर्भावना पैदा होने का डर रहता है।

(ख) ऐच्छिक तालमेल–वस्तुतः किसी भी संगठन में अधिकतर समन्वय सहमति से ही हो जाता है, ऐच्छिक तालमेल को इस ढंग से उत्पन्न किया जा सकता है।

1. सम्मेलन–समन्वय सम्मेलन के द्वारा भी किया जा सकता है। यह विभाग के आन्तरिक मामलों से सम्बन्धित हो सकता है एवं बाह्य, दो या दो से अधिक विभागों के मध्य भी। सम्मेलनों में वाद-विवाद की स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिए। भारत में अन्तराज्यीय परिषद् का गठन समन्वय उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण साधन है।

2. निर्देश तथा परामर्श के माध्यम से–इस प्रकार की विधि को सरकारी विभागों तथा सचिवालय में अपनाया जाता है। इससे प्रतिदिन के कार्यों में समन्वय स्थापित किया जाता है, किसी भी प्रस्ताव पर निर्णय लेने के पहले इसे प्रभावित होने वाले विभागों के पास भेजा जाता है, ताकि उससे पहले स्वीकृति की जा सके। यदि किसी भी विभाग का सचिव अन्य विभागों की स्वीकृति प्राप्त किये बिना ऊपर निर्णय लेने के लिए भेज देता है, तो उसे त्रुटि माना जाता है।

3. संस्थात्मक अथवा संगठनात्मक विधियाँ–कोई भी संस्था प्रशासकीय ढाँचे से सम्बद्ध तो होती है, परन्तु उसका भाग नहीं हो सकती। ये विचार विनिमय तथा परामर्श द्वारा समन्वय लाती है। यदि दो अथवा तीन विभागों के कार्य में कुछ दोहरा पन हो तो समन्वय लाने के लिए अन्तर्विभागीय समिति स्थापित की जा सकती है। किसी भी क्षेत्र में क्षेत्रीय सेवाओं में समन्वय लाने के लिए एकल समन्वय अधिकारी लाभदायक सिद्ध हो सकते है।

4. विचार तथा नेतृत्व–समन्वय के लिए व्यक्तिगत चरित का आदर्श प्रस्तुत करना बहुत आवश्यक है जो बाते सफल नेतृत्व के लिए आवश्यक है वे ही बाते समन्वय के लिए भी आवश्यक हैं।

5. विधियों तथा प्रणालियों का स्तरीकरण–विधियों तथा प्रणालियों के स्तरीकरण से यह सुनिश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक कार्यकर्त्ता एक जैसे परिस्थितियों में एक जैसा ही कार्य करेगा। ऐसा करने से एक दूसरे के कार्यों का पहले ही पता चल जाता है। तथा किसी समूह के सदस्यों के व्यक्तियों मे तालमेल आ जाता है।

6. कार्यकलापों का विकेन्द्रीकरण–जब किसी शासन व्यवस्था में केन्द्रीयकरण नहीं पाया जाता है अर्थात् विकेन्द्रीयकरण व्यवस्था में विरोध के कम हो जाने के कारण समन्वय स्थापित करना सरल हो जाता है। प्रत्येक कार्यात्मक विभाग को व्यवहारतः स्वतन्त्र कर दिया जाय तथा केन्द्रीय कैबिनेट अपने कार्य को बजट, योजना तथा कर्मचारी वर्ग के माध्यम से समन्वय लाने तक सीमित रखे। परन्तु यह सरकारी विभागों में लागू करना अच्छा नहीं है। जिन्होंने व्यापारिक कार्य को अपने हाथ में लिया है, इसको ऐसे ही सरकारी विभागों में तालमेल लाने के लिए प्रभावकारी ढंग से लागू किया जा सकता है।

7. मौखिक तथा लिखित संचार–समन्वय लाने में मौखिक तथा लिखित संचार भी सहायक सिद्ध होता है, उनके माध्यम से सूचना तथा विचार ऊपर नीचे भेजे जाते हैं तथा आदेश की कड़ी सजीव

8. केन्द्रित गृह पालन द्वारा–प्रशासन में गृह पालन समस्या का अपना महत्व है, भवन निर्माण सफाई भवन, छपाई, डाक तथा टेलीफोन आदि गृह सेवा में सम्मिलित किये जाते हैं। इस समस्त क्रियाओं को यदि एक विभाग में केन्द्रित किया जाय, तो समन्वय उत्पन्न करना सरल हो जाता है।

9. वित्त मंत्रालय–वित्त मंत्रालय समन्वय का एक प्रभावशाली साधन है, वित्त मंत्रालय का सम्बन्ध प्रशासन के समस्त विभागों से है। बजट में समस्त विभागों के आय एवं व्यय का ब्यौरा होता है। बजट की तैयारी करने के लिए वित्त मंत्रालय को विभिन्न विभागों से माँगों के विवरण माँगने पड़ते हैं। इस ढंग से वित्त मंत्रालय विविध प्रशासकीय विभागों की गतिविधियों एवं क्रियाओं में समन्वय स्थापित कर सकता है।

10. तालमेल के अनौपचारिक ढंग–उपर्युक्त औपचारिक ढंगों के अतिरिक्त समन्वय स्थापित करने के अनौपचारिक ढंग भी है–

(क) व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा, विचार विनिमय द्वारा, स्वतन्त्र तथा स्पष्ट बातचीत, सहमति।

(ख) समितियां तथा सम्मेलन।

(ग) भोज, चाय तथा अन्य पार्टियों आदि की व्यवस्था करने से भी समन्वय हो सकता है।

(घ) अनुशासित दलीय प्रणाली की अनौपचारिक तालमेल का महत्वपूर्ण साधन है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समन्वय लाना प्रशासन का केन्द्रीय कार्य है। इसे औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों विधियों में लाया जा सकता है।

8.11 प्रभावकारी समन्वय में बाधाएँ

आज सरकार के कार्यक्षेत्र बढ़ रहे है, नियन्त्रण की परिधि धीरे-धीरे कम हो रही है और उच्च अधिकारियों द्वारा शक्तियों को प्रत्यायोजित न करने से समन्वय में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है। लूथर गुलिक के अनुसार कठिनाइयाँ उत्पन्न होने के निम्न कारण है–

1. व्यक्ति तथा जनता के व्यवहार के विषय में भविष्य सम्बन्धी अनिश्चितता।
2. नेताओं में ज्ञान, अनुभव, बुद्धिमानी तथा चरित्र का अभाव और उनके उलझे हुए विरोधी विचार तथा उद्देश्य।
3. प्रशासकीय कौशल तथा तकनीक का अभाव।
4. अनेक विभिन्नताओं का समूह और मानवीय ज्ञान की अपूर्णता। विशेषतः मनुष्य और उसके जीवन के सम्बन्ध में
5. नवीन विचारों तथा कार्यक्रमों का विकास करने उन पर विचार करने, उन्हें परिपूर्ण बनाने तथा अपनाने में व्यवस्थित तरीकों का अभाव।

सेकलर हडसन ने इसमें चार बातें और जोड़ दी है–

(A) आकार और जटिलता

(B) व्यक्तित्व तथा राजनीतिक तत्व

(C) लोक प्रशासन के विषय में ज्ञान और बुद्धिमान नेता की कमी

(D) अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं तक लोक प्रशासन का गतिशील एवं व्यापक प्रसार।

संक्षेप में समन्वय के मार्ग में निम्न बाधाएँ देखने को मिलती है। जैसे लोक-प्रशासन के आकार में बुद्धि, नयी आवश्यकताओं तथा मांगों का प्रशासन करने के लिए नये अभिकरणों की रचना करने की बढ़ती प्रवृत्ति, नियन्त्रण के विस्तार का संकुचित होना कार्य की अपने से ऊपर के अधिकारियों पर छोड़ने की प्रवृत्ति, अधिकारी की ओर से अधिकारों के विकेन्द्रीकरण का अभाव आदि।

परन्तु कुछ विचारक ऐसे है जो समन्वय की कमी को अच्छा स्वीकार करते हैं। हार्लन कलीवलैण्ड जो कि कुछ समय पूर्व अमेरिका के सायराक्यूज विश्वविद्यालय में, मैक्सवेल स्कूल के डीन रहे थे, कार्य में पूर्ण समन्वय सम्बन्धी सुगमता के लिए किसी संगठन की वांछनीयता को चुनौती दी है। उनके तनाव सिद्धान्त का सुझाव है कि योजना भली प्रकार से समझबूझ कर बनायी जानी चाहिए, ताकि अधिकार क्षेत्र तथा कार्यक्रम के विषय में विभिन्न विभागों और अभिकरणों के मध्य झगड़े उठ खड़े हो, इससे लाभ यह होता हैं कि प्रशासन के भीतर झगड़े होने से मामले स्पष्ट हो जाते हैं। कोई भी अच्छे ढंग से कार्य करने वाला संगठन लोकहित की उपेक्षा शीघ्र ही कर सकता है।

8.12 सहयोग और समन्वय में अन्तर

व्यावहारिक दृष्टि से सहयोग और समन्वय बहुत कुछ समान प्रतीत होते हैं, दोनों में ही संगठन के कार्यों और उसके विभिन्न सदस्यों का सामूहिक प्रयास सम्मिलित होता है। परन्तु इनमें काफी अन्तर होता है। टेरी के शब्दों में सहयोग किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक व्यक्ति का दूसरे या दूसरों के साथ सामूहिक कार्य है। समन्वय सामूहिक कार्य से कहीं अधिक है और इसका अर्थ है, प्रयत्नों की समकालिकता अर्थात् प्रयत्न एक ही समय होने चाहिए। इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिए टेरी ने एक मनोरंजक कहानी का उल्लेख किया है। उसने एक लड़के का उदाहरण देते हुए लिखा है जो सुबह में ही गाड़ी पकड़ना चाहता था। तदनुसार उसने सोने से पहले अपनी घड़ी आधा घण्टा आगे बढ़ा दी ताकि वह निश्चित समय से काफी पहले उठ बैठे। बिस्तर के पास टेबल पर घड़ी रखकर वह आराम पाने के लिए जल्दी सो गया। उसका पिता जिसे मालूम था कि लड़का तड़के ही गाड़ी पकड़ना चाहता है अपने पुत्र के शयनगार में गया और यह सोचकर कि लड़के को उठने तथा कपड़े पहनने के लिए अतिरिक्त समय मिल जाय उसने लड़के की घड़ी आधा घण्टा बढ़ा दी। इसी प्रकार लड़के के बहन भी स्वयं सोने से पहले लड़के के शयनगार में गयी और घड़ी को आधा घण्टा आगे कर दिया ताकि लड़का निर्धारित समय से पूर्व उठ जाये। परिणामस्वरूप आधा घण्टा पहले उठने की अपेक्षा लड़का 1 1/2 घण्टे पहले उठ गया। और उसके एक घण्टे की नींद मारी गयी इस प्रकार प्रकार से कहा जा सकता है कि जहाँ पर समन्वय होगा, सहयोग अपने आप आ जायेगा परन्तु जहाँ पर सहयोग हो, वहाँ पर समन्वय भी हो यह जरूरी नहीं है।

समन्वय और नियन्त्रण–नियन्त्रण समन्वय का महत्वपूर्ण साधन है। लोक प्रशासन में राष्ट्र के चहुँमुखी विकास, जनता के हित, तथा प्रशासनिक सुगमता की पुष्टि से संगठनों के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखा जाता है। साइमन के अनुसार औपचारिक और अनौपचारिक दो प्रकार के नियन्त्रण प्रशासन को जिम्मेदार बनाने के लिए रखे जाते हैं।

(क) औपचारिक नियन्त्रण–यह नियन्त्रण न्यायपालिका और व्यवस्थापिका द्वारा स्थापित किया जाता है। पद सोपान की व्यवस्था में जब किसी भी उच्च अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ के ऊपर नियन्त्रण रखा जाता है, जिसका संगठन के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। हूवर आयोग के अनुसार निदेशन की सत्ता के बिना उत्तरदायित्व एवं जवाबदेह असम्भव है। सत्ता का प्रयोग ऊपर से नीचे तक आज्ञाकारिता की स्पष्ट श्रेणी के अभाव में सम्भव नहीं है। इसके साथ ही साथ नीचे से ऊपर

तक उत्तरदायित्व और जवाबदेयता का प्रावधान होना चाहिए।

(ख) अनौपचारिक नियन्त्रण–नियन्त्रण के अनौपचारिक क्षेत्र में अधिकारियों द्वारा स्वेच्छा का प्रयोग किया जाता है। नियन्त्रण के विभिन्न प्रकार के साधन होने पर भी प्रशासनिक संगठनों के व्यक्तियों का व्यवहार एक सा नहीं बनाया जा सकता। हरबर्ट साइमन अनौपचारिक नियन्त्रण का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि काउन्टर का एक लिपिक आपकी ओर मुस्कुरा सकता है या नाराजगी जाहिर कर सकता है अथवा आपसे यह भी कह सकता है कि घर जाइये और फार्म को ठीक तरह भरकर लाइये अथवा वह स्वयं आपको फार्म भरने में सहायता कर सकता है। यह भी हो सकता है कि वह आपको परेशानियों का कारण स्पष्ट करे अथवा आपसे कह दे कि फार्म छोड़ दीजिए या ले जाइये। संगठन के सदस्यों के विभिन्न व्यवहार उनकी व्यक्तिगत रुचियों अनुभवों एवं मूल्यों पर निर्भर करते हैं। अतएव इस क्षेत्र में किसी भी प्रकार का नियन्त्रण प्रभावशाली नहीं हो सकता।

8.13 भारतीय प्रशासन में समन्वय की आवश्यकता

भारत एक विकासशील राष्ट्र है यहां पर नियोजित विकास का मार्ग अपनाया गया है जिससे कम साधनों से ही अधिक से अधिक लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। साधनों के दुरुपयोग को रोकने के लिए यहाँ पर समन्वय के प्रभावशाली तरीका की परम आवश्यकता है। ऐसा करके ही लोक प्रशासन को लोक कल्याणकारी बनाया जा सकता है। भारत में ब्रिटिश शासन था। अतएव इसका प्रभाव भारतीय प्रशासन पर सामन्तवादी व्यवस्था के रूप में छाया हुआ है। संगठन का अध्यक्ष स्वयं को एक राजा समझता है और वह अपने अधीनस्थों से आशा करता है कि उसकी आज्ञा उसी प्रकार मानी जानी चाहिए जैसे आज्ञाकारी प्रजा सर झुकाकर अपने प्रभु की आज्ञा पालन करती है। यह सामन्तवादी लक्षण कई अधीनस्थ अधिकारियों के व्यवहार में भी स्पष्ट रूप से देखे जाते हैं। प्रशासन पर सामन्तवादी व्यवहार का प्रभाव प्रजातंत्र की भावना के प्रतिकूल है जो कि समन्वय के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है।

भारती प्रशासन में समन्वय की आवश्यकता मुख्य कार्यालय एवं क्षेत्रीय कार्यालय दोनों ही स्तरों पर समान रूप से आवश्यक समझी जाती है पर समन्वय की आवश्यकता दोनों जगह अलग-अलग है। मुख्य कार्यालय में जब समन्वय किया जाता है तो प्रायः बौद्धिक समस्या उत्पन्न होती है। मुख्य कार्यालय के विभिन्न विशेष अधिकारियों का कार्य की सम्पन्नता से सीधा सम्बन्ध होता है। उनका कार्य निरीक्षण और आदेश देना होता है। कार्यों से सम्बद्ध जिनके व्यवहार में समन्वय स्थापित करते समय कार्यान्वयन की समस्या सामने आती है। दोनों समस्याओं का समाधान करके ही, समन्वय स्थापित करके लाभ की आशा की जा सकती है।

8.14 सारांश

सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था एक निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित प्रयास करती है। यदि सामूहिक प्रयास में पारस्परिक सहयोग के प्रति उदासीनता है, तब ऐसे में किसी भी लक्ष्य अथवा उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न इकाइयों के मध्य उचित सहयोगानुभूति हो। सहयोगी भावना से जितना कार्य सुगमता के साथ सम्पन्न होता है उतना पृथक बने रहने की भावना से नहीं होता। प्रत्येक बड़े संगठन में विशेषीकरण के सिद्धान्त तथा श्रम विभाजन के आधार पर कार्य संगठित किया जाता है। सरकार के विविध संगठन इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर व्यापक रूप से संगठित होते है। इन विभिन्न विभागीय क्रियाओं के मध्य जितना अधिक सहयोग

अपेक्षित है उसका मूलाधार समन्वय है। समन्वय निषेधात्मक तथा विधेयक दोनों प्रकार से एक प्रशासकीय व्यवस्था को पूर्ण करता है। समन्वय मुख्यतः एक संगठनात्मक समस्या है। संगठन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए समन्वय की बहुत आवश्यकता होती है। यह समन्वय की वास्तविक उपलब्धि है कि वह सभी प्रकार के विरोधों को समाप्त करता है। संगठन का स्वरूप, प्रकृति और आकार कैसा भी बनाया जाय? समन्वय मुख्य रूप से संगठन का आधार बनता है। यदि संगठन विरोधाभासी है तब ऐसी स्थिति में समन्वय की भावना का जन्म होना कठिन होता है।

जब तक किसी संगठन के अलग-अलग योग्यताओं, रुचियों एवं प्राथमिकताओं वाले लोगों के बीच समन्वय स्थापित नहीं किया जाता तब तक संगठन अपने लक्ष्यों की प्राप्ति से दूर रहेगा। संगठन में जब तक स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता कि कौन क्या करता है? तो समन्वय की प्रक्रिया अधिक सशक्त नहीं बन पाती। जब संगठन की योजनाएँ परस्पर अनुरूप होती है तो समन्वय मार्ग सरल होता है। समन्वित क्रियायें न केवल एक दूसरे के अनुरूप होनी चाहिए बल्कि उसको सही समय पर सम्पन्न किया जाना चाहिए। किये जाने वाले कार्यों, उनकी स्थिति के सम्बन्ध में सूचना का प्रसार, भविष्य के कार्यक्रमों को तैयार करने के लिए उपयोगी होता है।

संगठन के अध्यक्ष का यह प्रमुख उत्तरदायित्व होता है कि वह विभिन्न अधीनस्थों के कार्यों की देखभाल करता रहे और यह देखता रहे कि वे अपने उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों का ठीक ढंग से निर्वाह करते रहे हैं अथवा नहीं। लोक प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में सम्मेलन, समितियाँ, गोष्ठियाँ, अन्तर-विभागीय समितियाँ, कर्मचारी वर्ग की इकाइयाँ आदि कुछ ऐसे साधन होते हैं, जिनके आधार पर संगठन के मतभेदों को दूर करके उनमें एकता स्थापित की जा सकती है। भारत में प्रशासनिक समन्वय स्थापित करने वाले संगठनात्मक साधन कई प्रकार के है केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्पूर्ण देश के प्रशासन में एक प्रकार का समन्वय स्थापित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त योजना आयोग, क्षेत्र परिषदे, राष्ट्रीय विकास परिषद्, केन्द्रीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल, स्वयं प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल की समितियाँ आदि समन्वय के कार्य में रत है।

8.15 उपयोगी पुस्तकें

1. डॉ0एम0पी0शर्मा, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार
2. अवस्थी एण्ड माहेश्वरी, लोक प्रशासन सिद्धान्त व्यवहार
3. पी0डी0शर्मा, हरिश्चन्द्र शर्मा, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार
4. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया एवं सुधा कटारिया, प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध
5. डॉ0अमरेश्वर अवस्थी एवं आनन्द प्रकाश अवस्थी प्रशासनिक सिद्धान्त
6. डॉ0 परमात्माशरण एवं दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी 'लोक प्रशासन'।

8.16 सम्बन्धित प्रश्न

(a) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आदेश की एकता को परिभाषित करते हुए इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. आदेश की एकता सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

3. समन्वय क्या है? समन्वय स्थापित करने के तरीकों का उल्लेख कीजिए।
4. समन्वय के मार्ग में कौन-कौन सी बाधाएँ है? भारतीय प्रशासन में समन्वय की आवश्यकता बताइये।

(b) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आदेश की एकता के सिद्धान्त का महत्व बताइये।
2. आदेश की एकता के सिद्धान्त पर साइमन के विचार स्पष्ट कीजिए।
3. समन्वय की आवश्यकता और प्रकृति को समझाइये।
4. सहयोग और समन्वय में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(c) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन के जन्मदाता कौन थे?
   (a) फेयोल
   (b) पिफनर
   (c) टेलर
   (d) साइमन
2. "किसी कर्मचारी को मात्र एक ही उच्चाधिकारी द्वारा आदेश दिये जाने चाहिए।" आदेश की एकता के सन्दर्भ में उक्त परिभाषा है–
   (a) हेनरी फेयोल
   (b) वालेस
   (c) हेमिल्टन
   (d) इनमें से कोई नहीं
3. उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कई भागों को सुव्यवस्थित ढंग से एक इकाई में पिरोना ही समन्वय है।' समन्वय की यह परिभाषा दी है–
   (a) नयू मैन
   (b) टैरी
   (c) सेकलर हडसन
   (d) चार्ल्स वर्थ
4. किसी संगठन में समन्वय की कमी को अच्छा माना है।
   (a) क्लीव लैण्ड
   (b) लूथर गुलिक
   (c) हेमिल्टन
   (d) इनमें से कोई नहीं

8.17 प्रश्नोत्तर

1. **(c)**
2. **(a)**
3. **(d)**
4. **(a)**

इकाई 9 : प्रशासनिक व्यवहार

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 संचार की परिभाषा एवं प्रकृति

9.3 संचार के तत्व प्रक्रिया एवं प्रकार

9.4 संचार के माध्यम एवं बाधाएँ

9.5 अच्छे संचार के सिद्धान्त

9.6 जन सम्पर्क का अर्थ एवं परिभाषा

9.7 जन सम्पर्क की आवश्यकता एवं महत्त्व

9.8 जन सम्पर्क के साधन

9.9 नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषा

9.10 नेतृत्व की आवश्यकता तथा उपयोगिता

9.11 नेतृत्व के कार्य एवं गुण

9.12 नेतृत्व की विचारधारा

9.13 नेतृत्व के प्रकार

9.14 निर्णयन का अर्थ एवं परिभाषा

9.15 निर्णयन की विशेषताएं

9.16 निर्णय निर्धारण के घटक निर्णय कौन से उसके आधार एवं निर्णय लेने की तकनीक

9.17 निर्णयन की समस्यायें और प्रतिमान

9.18 निर्णयन के प्रकार

9.19 अभिप्रेरणा की अर्थ एवं परिभाषा

9.20 अभिप्रेरणा की विशेषता एवं महत्त्व

9.21 अभिप्रेरणा के प्रकार एवं सिद्धान्त

9.22 मनोबल की परिभाषा एवं विशेषताएँ

9.23 मनोबल का तत्त्व एवं महत्त्व

9.24 अभिप्रेरणा, मनोबल तथा इसे प्रभावित करने वाले कारक

9.25 सच्चरित्रता का अर्थ एवं परिभाषा

9.26 प्रशासन में सच्चरित्रता के पतन के कारण

9.27 सच्चरित्रता बनाए रखने के उपाय

9.28 प्रबन्ध का अर्थ परिभाषा एवं प्रकृति

9.29 प्रबन्ध के कार्य तथा साधन

9.30 अच्छे प्रबन्ध की कसौटियाँ

9.31 सारांश

9.32 उपयोगी पुस्तकें

9.33 सम्बन्धित प्रश्न

9.34 प्रश्नोत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- प्रशासनिक व्यवस्था में संचार, जनसम्पर्क, नेतृत्व, निर्णयन, अभिप्रेरण, मनोबल, सच्चाई, प्रबन्ध आदि का महत्वपूर्ण स्थान की विवेचना कर सकेंगे,
- इन सबके सिद्धान्त एवं प्रकार पर टिप्पणी कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

संचार प्रशासन का प्रथम सिद्धान्त माना जाता है। इसकी उचित व्यवस्था के अभाव में कोई भी प्रशासनिक संगठन कार्य नहीं कर सकता। संचार व्यवस्था में दो पक्ष होते हैं–एक भेजने वाला दूसरा प्राप्त करने वाला। संचार नियमों, उपनियमों, पत्रों, निर्देशों तथा प्रतिवेदनों का रूप ले सकता है। संचार माध्यमों के द्वारा सूचना तथा जानकारी प्राप्त कर लेने मात्र से ही लोक प्रशासन के क्षेत्र का निर्धारण नहीं हो सकता अपितु यह उस जानकारी प्राप्त कर लेने से कुछ अधिक है। जिसमें कि जनता के साथ स्थापित होने वाले सभी सम्बन्ध आ जाते हैं। सेवा के कार्य चाहे वे कुछ भी न हो, साथ ही उनके परिणाम तथा उन सेवाओं को सम्पन्न करने वाले व्यक्तियों के व्यवहार जनता के प्रति सन्तोषजनक होने चाहिए। सन्तोष तथा तुष्टि एक भावनात्मक अथवा व्यक्तिनिष्ठ स्थिति है। इस बात का निश्चय करने के लिए कि सन्तोष है या नहीं, उन व्यक्तियों के विचार जानने की आवश्यकता होती है जिनकी सेवा की जाती है। अतः लोक सम्पर्क एक विकसित नीति सुझावों तथा शिकायतों को व्यक्त करने के लिए इसकी व्यवस्था आवश्यक समझी जाती है।

कल्याणकारी राज्य के स्वप्न को साकार करने के लिए राज्य के प्रत्येक प्रशासकीय क्षेत्रों में नेतृत्व की उपयोगिता बढ़ रही है। विकास के नाम पर छोटी-मोटी संस्थायें प्रशासन के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करती हैं। इसकी चुनौती तभी स्वीकार की जा सकती है, यदि हम प्रशासकीय गुणों को पनपा सके, तथा अपने कर्मचारियों में प्रशासकीय नेतृत्व के गुणों का संचार कर सकें। नेतृत्व की समस्यायें आकार, जटिलता, विशेषज्ञता, संगठनात्मक इकाइयों, तकनीकी विकासों तथा सामाजिक अपेक्षाओं के कारण बढ़ गयी हैं। इस प्रकार वांछित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नेतृत्व प्रदान करके सारे समूह का पर्थ प्रदर्शन करना है। एक कुशल नेतृत्वकर्त्ता को निर्णय भी लेने पड़ते हैं। यह जितना महत्त्वपूर्ण है उतना कठिन भी है। निर्णय लेने की प्रक्रिया कुछ कार्यों के विकल्पों में से किये जाने वाले कार्यों को छाँटना है। जब यह कहा जाता है कि निर्णय लिया गया तो इसका अर्थ यह है कि एक लम्बी प्रक्रिया में से गुजरते हुए यह तय कर लिया गया है कि क्या किया जायेगा? टेरी के मतानुसार निर्णय दो या

अधिक सम्भावित विकल्पों में से एक व्यावहारिक विकल्प को चुनना है। परन्तु मात्र निर्णय लेने से ही संगठन वांछित उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकता। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कर्मियों की सन्तुष्टि एक महत्त्वपूर्ण आवश्यता होती है इसके लिए यह आवश्यक है कि कार्मिकों को संगठनात्मक लक्ष्यों की तरफ प्रेरित किया जाय। कार्मिकों में कार्य करने की इच्छा तथा क्षमता दोनों पायी जाती है। फिर भी कई बार कार्य समय पर नहीं हो पाता। अतः नेतृत्वकर्त्ता को इस खाई को पाटना पड़ता है। कार्य करने की क्षमता तथा इच्छा कार्य करने की इच्छा को जोड़ने वाली प्रक्रिया ही अभिप्रेरणा है।

अभिप्रेरणा के पश्चात् भी यदि किसी संगठन के कार्मियों में मनोबल नहीं है तो संगठन पथ भ्रमित हो सकता है। मनोबल को एक प्रकार से संगठन की जीवन शक्ति कह सकते हैं जिसके बिना समस्त प्रशासकीय क्रियायें निर्जीव रूप से संचालित होती रहती है। प्रशासकीय कार्य मूलरूप से एक मानवीय कार्य है और इसीलिए इससे सम्बन्धित सभी समस्यायें मानवीय मनोदशा एवं बौद्धिक चेतना की समस्यायें हैं। चूँकि मनोबल एक अमूर्त कल्पना है। इसका सामान्य अर्थ है, "समान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लोगों के समुदाय की निरन्तर एक साथ कार्य करने की क्षमता" उच्च मनोबल के साथ-साथ कर्मचारियों में नैतिकता या सच्चरित्रता का होना भी आवश्यक समझा जाता है। संगठन के कर्मचारियों में भ्रष्टाचार पनपने से यह दिशाहीन हो जाते हैं। इसके लिए कुशल प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। प्रबन्ध शब्द को आधुनिक प्रशासनिक संगठन जगत में अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। संकीर्ण अर्थ में प्रबन्ध दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराने की युक्ति है और वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराता है प्रबन्ध कहलाता है। विस्तुत अर्थ में प्रबन्ध कला तथा विज्ञान दोनों है और यह निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न मानवीय प्रयासों से सम्बन्ध रखता है। प्रबन्ध तो निश्चित कार्यों को मिलाकर बनी एक प्रक्रिया को कहते हैं जो लोग इन कार्यों को सम्पन्न करते हैं प्रबन्ध कहलाते हैं।

9.2 संचार की परिभाषा एवं प्रकृति

अपने संकुचित अर्थ में संचार से तात्पर ज्ञान के प्रसार से है परन्तु जब हम लोक प्रशासन में संचार शब्द का प्रयोग करते हैं, तो इसका तात्पर्य व्यापक होता है। अतः इसकी परिभाषा निम्नलिखित है–

"संचार किसी साझे के प्रयोजन की बढ़ी हुई समझ है।" – *मिलेट*

"संचार का मूल लक्ष्य एक जैसे मामलों पर मस्तिष्कों का मेल है।" – *'टीड'*

"संचार किसी उद्यम के भीतर विभिन्न क्रियात्मक समूहों की वह क्षमता है जिसके माध्यम से वे एक दूसरे के कार्यों और चिन्ताओं को समझते हैं।" – *'पीटर एण्ड इकर'*

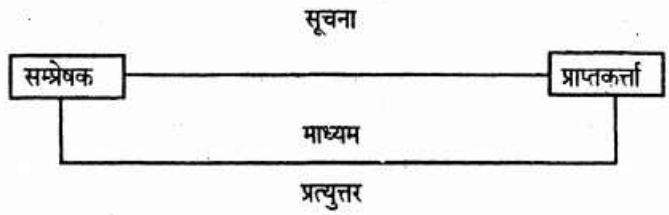
संचार की प्रकृति–इसकी प्रकृति निम्नवत है–

1. संचार एक सतत् प्रक्रिया है, जिसके दो पक्ष हैं–एक सन्देश प्रेषित् करता है और दूसरा पक्ष सन्देश प्राप्त करने पर अपनी प्रतिक्रिया पुनः सन्देश भेजने वाले को सूचित करता है, इस प्रकार क्रम चलता रहता है।
2. कई माध्यमों या प्रणालियों द्वारा इसे पूरा किया जा सकता है।
3. संचार एक व्यापक प्रक्रिया है।
4. आधुनिक संगठनों तथा मानव जीवन का आधार है।
5. प्रेषक, सूचना माध्यम प्राप्तकर्त्ता तथा प्रत्युत्तर इत्यादि मुख्य तत्त्वों से युक्त है।
6. व्यवहार विनिमय का परिचायक है जिसका उद्देश्य दूसरों को प्रभावित करना है।

9.3 संचार के तत्त्व, प्रक्रिया एवं प्रकार

संचार की प्रक्रिया के पाँच तत्त्व है–

1. सम्प्रेषक या सूचनादाता
2. सूचना या जानकारी
3. सूचना का माध्यम या विधि
4. सूचना प्राप्तकर्त्ता
5. प्रत्युत्तर या वांछित प्रतिक्रिया



संचार प्रक्रिया–संचार प्रक्रिया में पाँच तत्व महत्त्वपूर्ण हैं। सम्प्रेषण वह होता है, जो किसी जानकारी, आकड़े, आचरण, विचार, भावना तथा सम्मति को दूसरे व्यक्तियों को सम्प्रेषित करना चाहता है। सम्प्रेषक की इच्छा भावना या पहल ही सूचना के रूप में अभिव्यक्त होती है। अर्थात् सूचना अपने आप में सजीव या गतिशील नहीं है। बल्कि यह सम्प्रेषक द्वारा धकेलने तथा संचार के उचित माध्यम या विधि की प्राप्ति पर निर्भर करती है। विधि का तात्पर्य उस स्वरूप से है जिसमें सूचना का संचरण होता है। बोलकर, लिखकर, दिखाकर अथवा छूकर हम अपनी बात दूसरों तक पहुँचा सकते हैं। प्राप्तकर्त्ता वह व्यक्ति होता है जिस तक सूचना पहुँचायी जाती है या पहुँच जाती है। यह आवश्यक नहीं है कि सम्प्रेषक द्वारा प्रेषित सूचना उसी अर्थ एवं स्वरूप में प्राप्तकर्त्ता तक पहुंचे जिस रूप में सम्प्रेषक चाहता था। सूचना प्राप्ति के पश्चात प्राप्तकर्त्ता जो उत्तर देता है वह वांछित प्रतिक्रिया या प्रत्युत्तर कहलाता है। प्रत्युत्तर देते समय प्राप्तकर्त्ता की भूमिका सम्प्रेषक की हो जाती है।

संचार के प्रकार–संचार कई प्रकार के हो सकते हैं–

1. माध्यम के आधार पर

(i) मौखक आधार–जब सूचना का संचरण बोलने या सुनने की विधि से होता है तो यह मौखिक संचार कहलाता है। दैनिक जीवन में संचार का सर्वाधिक लोकप्रिय तथा परम्परागत तरीका मौखिक वार्तालाप ही है।

(ii) लिखित संचार–जब सूचना को लिखित या मुद्रित स्वरूप में दूसरों तक पहुँचाया जाता है तो यह लिखित संचार कहलाता है।

(iii) प्रतीकात्मक संचार–कुछ संचार ऐसे भी होते हैं जो न लिखित होते हैं न मौखिक बल्कि इशारे या प्रतीक के रूप में होते हैं। जैसे होठों पर तर्जनी रखकर चुप रहने का इशारा आदि।

2. प्रवाह के आधार पर

(i) अ धो (↓) संचार–जब संगठन के उच्चाधिकारी अपने निम्नाधिकारियों या अधीनस्थों तक सूचना या आदेश भेजते हैं तो यह अधोमुखी संचार होता है। ऊपर से नीचे की ओर होने वाले इस संचार में सत्ता का स्पष्ट प्रयोग दिखायी देता है। अधो संचार की प्रकृति आदेशात्मक होती है। लिखित या

मौखिक आदेश, परिपत्र, नियमावली, बजट, स्वीकृति कार्मिक सम्मेलन तथा अन्य माध्यमों से अधो संचार होता है।

(ii) उर्ध्व (π) संचार–जब संगठन के निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर सूचना का प्रवाह होता है तो वह उर्ध्वगामी या उर्ध्वमुखी संचार कहलाता है। इसकी प्रकृति प्रायः प्रार्थनात्मक होती है, इस प्रकार के संचार में मौखिक प्रार्थना, अनुमति माँगना, प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करना, सुझाव प्रस्तुत करना तथा योजना एवं बजट निर्माण का प्रयोग होता है।

(iii) समस्तरीय संचार–जब संगठन या पद सोपान क्रम में समान स्तरीय कार्मिक आपस में संचार करते हैं तो यह समस्तरीय संचार कहलाता है। इस संचार की प्रकृति अत्यन्त स्वाभाविक होती है। वरिष्ठ अधीनस्थ तथा उच्च निम्न के दायरे से बाहर इस प्रकार के संचार में लिखित मौखिक रिपोर्ट समूह कार्य, सम्पर्क, तथा समिति बैठक इत्यादि विधियाँ काम में ली जाती है। संगठन में समन्वय बनाये रखने तथा परस्पर निकटता स्थापित करने में समस्तरीय संचार महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

अनौपचारिक संचार–अनौपचारिक व अंगूरलता संचार वह होता है जो संगठन व कार्यरत कर्मचारियों के परस्पर सम्बन्धों के आधार पर होता है। जब संगठन में औपचारिक प्रवृत्ति का संचार कम हो जाता है तो अनौपचारिक संचार की आवश्यकता बढ़ जाती है क्योंकि मानवीय स्वभाव जिज्ञासा तथा उत्सुकता से परिपूर्ण होता है। संगठनों में अनौपचारिक संचार या अंगूरलता संचार के प्रतिपादक कीथ डेविस का कहना है कि यह संचार समाप्त किया या रोका नहीं जा सकता। मित्र-मण्डली, क्लब, प्रशासनिक अनुभाग, जासूसी इत्यादि अनौपचारिक संचार के माध्यम है। इस प्रकार के संचार का सबसे बड़ा दोष अफवाहों का प्रसार है।

अफवाहें वे भ्रान्त, समाचार या सूचनाएं होती हैं जो एक व्यक्ति से दूसरी व्यक्ति तक शीघ्र संचारित होती जाती है और जिसका सत्यापन नहीं किया जा सकता। आलपोर्ट पोस्टमैन तथा कोरस का कहना है कि लोग एक बात का एकाधिक अर्थ निकालते हैं तथा रोचक विषय को मिर्च मसाला लगाकर आगे की ओर संचारित होते हैं। उन्होंने अफवाह को समझने के लिए निम्न सूत्र दिया है।

$R \cong i \times a \times i/c$ ($\cong$ लगभग बराबर)

R = अफवाह (Rumour)

i = महत्त्व (Importance)

a = एकाधिक अर्थ Ambiguity)

c = समालोचना एक तार्किक शक्ति (Critical Sence)

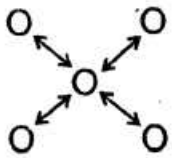
अर्थात अफवाहें सूचना के महत्त्व तथा उसके एकाधिक अर्थ के गुंजन पर आर्थिक फैलती है किन्तु समालोचना तथा तार्किक शक्ति के कारण अफवाहें कमजोर भी पड़ जाती हैं। संगठन में अफवाहों को इसी दृष्टि से रोका जा सकता है।

सूचना प्राप्तकर्त्ता के आधार पर संचार व्यक्तिगत तथा सामूहिक भी हो सकता है तथा संगठनात्मक स्थिति के आधार पर संचार की तीन स्थितियाँ हो सकती हैं–

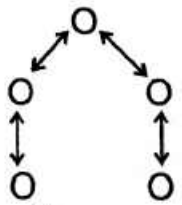
1. आन्तरिक संचार वह होता है जो संगठन तथा कार्मिकों के मध्य के सम्बन्धों पर आधारित होता है।
2. बाह्य संचार वह है जो संगठन तथा जन साधारण के बीच होता है इसे जनसम्पर्क कह सकते हैं।

3. अन्तरवैयक्तिक संचार में संगठन के कार्मिकों के मध्य होने वाला संचार सम्मिलित किया गया है।

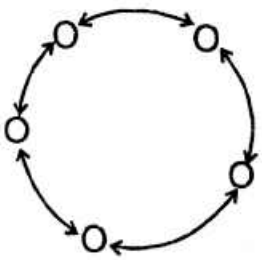
फिलिप वी० लुई ने अपनी पुस्तक "Organisational Communication. The Business of effective management में संचार की निम्नांकित चित्राकृतियाँ प्रस्तुत की हैं–



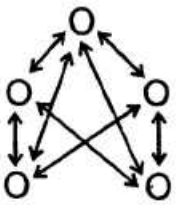
पहिया (Wheel)



जंजीर (Chain)



वृत्त (Circle)



सभी मार्ग
(All channel)

9.4 संचार के माध्यम और बाधाएँ

संचार अनेक माध्यम द्वारा सम्भव है, इन्हें तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। श्रव्य, दृश्य तथा श्रव्य और दृश्य अर्थात सुनना देखना दोनों। श्रव्य संचार माध्यम के उदाहरण सम्मेलन समितियाँ, समाक्षात्कार, टेलीफोन, रेडियो-प्रसार, जन साधारण की सभाएं आदि है। दृश्य संचार माध्यम के अन्तर्गत लिखित संचार (परिपत्र, पुस्तिकाएँ, प्रतिवेदन, विवरणिका तथा हस्त पुस्तकें) तथा चित्रण (चित्र, फोटो, पोस्टर, व्यंगचित्र, झण्डे , अधिचिन्ह एलाइड इत्यादि) आते हैं। सवाक्, चलचित्र, टेलीविजन तथा व्यक्तिगत प्रदर्शन श्रव्य दृश्य संचार माध्यम के उदाहरण हैं। इसमें से प्रत्येक माध्यम के अपने अलग-अलग गुण और सीमाएं हैं। यह प्रबन्धक या निष्पादक के हाथों में है कि वह निश्चित करे कि कब कौन सा संचार माध्यम प्रभावशाली सिद्ध होगा?

व्यापारिक और सहयोगी दोनों प्रकार के संगठनों में सम्मेलन प्रणाली का संचार को प्रोत्साहित करने के साधन के रूप में अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है। क्योंकि इसमें विलम्ब नहीं होता। पत्र व्यवहार भी करना होता है तथा लालफीताशाही में कमी आती है। मिलेट के अनुसार सम्मेलन प्रणाली के महत्त्वपूर्ण उपयोग निम्नलिखित हैं–

1. समस्या सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है।
2. समस्या के समाधान में सहायता होती है।
3. निर्णय की स्वीकृति एवं निष्पादन सम्भव होता है।
4. संगठन में काम करने वाले अधिकारियों में एकता की भावना उत्पन्न करने में सहायता

होती है।

5. कर्मचारी वर्ग के मूल्यांकन में सहायता होती है।

6. प्रशासकीय कर्मचारियों को सूचना का आदान-प्रदान सम्बन्धी प्रोत्साहन मिलता है।

सामान्यतः यह माना जाता है कि कि सम्मेलन विधि में प्रतिभागियों की रुचि रहती है तथा सहभागिता का स्तर भी ऊँचा पाया जाता है। इसी कारण समस्या का समाधान हो जाता हैं एवं सन्तोष प्राप्ति सम्भव हो जाती है। सामूहिक निर्णयन के भाव के साथ प्रेरणा एवं मनोबल प्राप्त होता है और विश्लेषण का स्तर भी बढ़ता है। लेकिन यह भी सत्य है कि सम्मेलन बहुधा औपचारिक आयोजन सिद्ध होते हैं। भारत की अनुमान समिति के एक प्रतिवेदन के अनुसार सम्मेलनों में चर्चाएं अधूरी रहती हैं, लम्बे समय तक पत्र-व्यवहार चलता है। एक सम्मेलन की कमियों की पूर्ति के लिए फिर दूसरा सम्मेलन बुलाना पड़ता है। भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के कारण आम सहमति कम ही हो पाती है। वस्तुतः सम्मेलन विधि उच्चस्तरीय प्रतिबद्धता तथा लोचशीलता की माँग करता है।

संचार की बाधाएँ–संचार के मार्ग में निम्न बाधाएँ हैं।

1. भाषा–विश्व के प्रत्येक स्थान की अपनी एक विशिष्ट भाषा तथा बोली होती है। सभी संगठनों में कार्य करने वाले व्यक्तियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एक समान हो यह कदापि सम्भव नहीं है। व्यक्ति प्रत्येक बात को जितने बेहतर ढंग से अपनी भाषा में समझता है उतनी दूसरी भाषा में नहीं। प्रत्येक भाषा का अपना इतिहास, विशेषता लक्षण तथा कुछ शब्दों का विशिष्ट भावार्थ होता है। भारत जैसे सांस्कृतिक विविधताओं से युक्त देश में जहाँ 160 धर्म 1652 भाषा और बोलियाँ तथा 3472 जातियाँ हो, वहाँ संचार का कार्य सरल नहीं है। जब तक निश्चित सन्दर्भ तथा मन्तव्य का स्पष्ट अनुमान नहीं होता तब तक संचार प्रक्रिया बाधायुक्त बनी रहती है।

2. तकनीकी एवं स्थानीय शब्दावली–सफल संचार के लिए आवश्यक है कि जटिल तथा तकनीकी शब्दों का कम से कम प्रयोग किया जाय। प्रायः प्रत्येक व्यवसाय की अपनी भाषा या शब्दावली होती है जिसे उस तकनीकी भाषा के जानकार या उस व्यवस्था में कार्य करने वाले के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं समझता है। कानून, इंजीनियरिंग, वैज्ञानिक क्षेत्र, पशुपालन विभाग तथा कम्प्यूटर विज्ञान इत्यादि क्षेत्रों के तकनीकी शब्द हर किसी के समझ में नहीं आते हैं।

इसी प्रकार एक ही शब्द के अर्थ स्थान तथा संस्कृति के अनुसार बदल जाते हैं। यहाँ तक कि एक ही स्थान तथा एक ही संस्कृति में एक शब्द के दो अर्थ हो जाते हैं। सफल संचार के लिए आवश्यक है कि शब्द का वास्तविक तथा विशिष्ट अर्थ भी समझा जाय।

3. व्याख्या तथा बोध की समस्या–प्रत्येक व्यक्ति की व्याख्या तथा बोध की क्षमता एवं दृष्टि अलग-अलग होती है। हमें आभास प्रायः नहीं होता कि जो संचार हम कर रहे हैं या जो सूचना हम भेज रहे हैं उसका वास्तविक अर्थ प्राप्तकर्त्ता लगा पायेगा या नहीं। अधिकांश व्यक्ति अपनी ओर से सूचना प्रेषित करके निश्चित हो जाते हैं तथा भ्रम में रहते हैं कि हमने संचार कर दिया हैं। यह हो सकता है कि सम्प्रेषक की वाणी या भाषा प्रभावी न हो या प्राप्तकर्त्ता में सुनने, देखने या समझने की क्षमता नहीं हो। ऐसा भी बहुत बार होता है कि व्यक्ति जो समझता है या जो कहना चाहता है उसे सही ढंग से अभिव्यक्त नहीं कर पाता। दूसरी ओर प्राप्तकर्त्ता कुछ सुनना या जानना ही नहीं चाहता। वास्तव में सभी कार्मिकों अथवा आम जनता की शैक्षणिक, पारिवारिक, वर्गीय, राजनीतिक, भाषायी तथा संस्कारों की पृष्ठभूमि एक जैसी नहीं होती है। साथ ही मानसिक तनाव की उलझने तथा संगठन की स्थिति भी प्रभाव दिखाती है। व्यक्ति के विश्वास, अभिवृत्ति, दृष्टिकोण तथा मूल्य उसे बाँधे रहते हैं, अतः वह अपने नजरिये से संचार को ग्रहण करता तथा दूसरों पर अपना नजरिया थोपना चाहता है

इसे स्वायभिमान कहा जाता है।

4. इच्छा का अभाव–प्रशासनिक संगठनों में संचार को एक प्रभावी तथा आवश्यक प्रक्रिया मानकर कुशल बनाने के प्रयास नहीं किये जाते हैं। बल्कि इसे अत्यन्त औपचारिक प्रक्रिया मानकर संचालित किया जाता है। उच्चधिकारियों की प्रायः यह प्रवृत्ति होती है वे कम से कम बोलना व लिखना चाहते हैं जब कि अधीनस्थों की इच्छा विस्तारपूर्ण निर्देश प्राप्ति की रहती है। नौकरशाहीनुमा सरकारी संगठनों तथा सैनिक तन्त्र में केवल 'यस सर' सुनने की मानसिकता धारण करने वाले उच्चाधिकारी जब तक द्विमार्गी या बहुमार्गी संचार को बढ़ावा नहीं देंगे तब तक संचार आधा-अधूरा बना रहेगा।

5. माध्यम और प्रक्रिया की समस्या–संचार के अनेक माध्यम हैं यथा लिखकर, बोलकर, इशारे करके, अथवा प्रतीक बनाकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक सूचना सम्प्रेषित की जा सकती है। परन्तु कोई भी माध्यम अपने आप में पूर्णतया त्रुटिपूर्ण नहीं है। क्योंकि मूल समस्या माध्यम प्रक्रिया की ही नहीं बल्कि मानव व्यवहार की है। अतः पिफनर और प्रिस्थस ने सुझाया है कि औपचारिक मार्गों के सुझावों या जटिलताओं को कम करना एक श्रेष्ठ प्रबन्धक की आवश्यक कला है। कई बार प्रेषक की सूचना प्राप्तिकर्त्ता तक पहुँचते-पहुँचते आधी-अधूरी हो चुकी होती है।

6. आकार एवं दूरी–संगठन का आकार तथा दूरी संचार की राह में स्वाभाविक बाधाएँ हैं। बड़े संगठनों में प्रायः बहुत से विभाग, उप विभाग तथा असंख्य कार्मिक कार्य करते हैं; अतः संचार प्रक्रिया भी जटिल हो जाती है। विकेन्द्रित या भौगोलिक आधार पर बिखरे हुए संगठनों में भी संचार कार्य तुलनात्मक रूप से भी बाधित होता है। पदसोपान के अनेक स्तर कार्यों का विशिष्टीकरण, संगठन की कार्य, संस्कृति तथा नेतृत्व की क्षमताएँ इत्यादि संचार को प्रत्यक्ष प्रभावित करती हैं।

9.5 अच्छे संचार के सिद्धान्त

मिलेट ने अच्छे संचार के निम्नलिखित सिद्धान्त बताये हैं–

1. संचार स्पष्ट होना चाहिए।
2. यह प्राप्तकर्त्ता की अपेक्षा के अनुरूप होना चाहिए।
3. संचार सम्पूर्ण या समुचित होना चाहिए।
4. समयानुसार संचार करना चाहिए।
5. समानता या एकरूपता का ध्यान रखना चाहिए जिससे कार्यवाही भी एक सी ही की जा सके।
6. इसमें लोचशीलता होनी चाहिए।
7. प्राप्तकर्त्ता को स्वीकार होना चाहिए।

टैरी ने प्रभावी संचार के लिए आठ सुझाव दिये हैं–

1. संचार के सम्बन्ध में सम्प्रेषण को सम्पूर्ण जानकारी करनी चाहिए।
2. परस्पर विश्वास उत्पन्न करना चाहिए।
3. अनुभव के समान आधार की खोज करनी चाहिए।
4. ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो आपस में सभी को ज्ञात हों।
5. प्रसंग को ध्यान में रखा जाय।
6. सूचना प्राप्त कर्त्ता का ध्यान आकृष्ट करना एवं उसे बनाए रखना चाहिए।

7. उदाहरणों तथा दृश्य साधनों को काम में लाना चाहिए।

चेस्टर वर्नार्ड ने अच्छे सिद्धान्त के सात बिन्दु बताये हैं--

1. संचार के माध्यम निश्चित तथा सभी को ज्ञात होने चाहिए।
2. संगठन के प्रत्येक सदस्य से सम्पर्क का निश्चित औपचारिक माध्यम होना चाहिए।
3. जहाँ तक हो सके संचार तंत्र सीधा एवं छोटा होना चाहिए।
4. सामान्यतयः संचार के लिए पूर्व औपचारिक तन्त्र का उपयोग किया जाना चाहिए।
5. संचार केन्द्रों के रूप में कार्यरत व्यक्तियों को योग्य होना चाहिए।
6. संगठन जब कार्यरत हो तो संचार तंत्र में बाधा नहीं आनी चाहिए।
7. प्रत्येक संदेश प्रामाणिक होना चाहिए।

संचार साधनों का स्वरूप संगठनों एवं मुख्य कार्यालय के बीच स्थित सम्बन्धों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती है। संचार संगठन के संचालन में सहयोगी होने के साथ-साथ उसकी सफलता, असफलता एवं प्रभावशीलता भी निर्णायक होते हैं। जब एक संगठन का क्षेत्रीयकरण किया जाता है तो औपचारिक रूप से स्पष्ट कर दिया जाता है कि संचार का रूप क्या होगा और किसके द्वारा किसे आज्ञायें दी जायेगी? संगठन में संचार से सम्बन्धित औपचारिक व्यवस्था पर्याप्त से बहुत कम होती है। जब हम किसी संगठन में वास्तविक व्यवहार का अध्ययन करते हैं तो पाते है कि वहाँ संचार से सम्बन्धित समस्यायें बहुत अधिक होती हैं। अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए एक सबल संचार व्यवस्था आवश्यक होती है। संचार व्यवस्था द्वारा कराये जाने वाले कार्य इसलिए महत्त्वपूर्ण है ताकि क्षेत्रीय अध्यक्ष अपने अधीनस्थों को तकनीकी परामर्श देते रहे, क्षेत्रीय अधिकारी पूरे अभिकरण के पूर्ण कार्यक्रम से परिचित रहें। मुख्य कार्यालय की विशेषज्ञ अधिकारी क्षेत्रीय स्तर के विशेषज्ञ अधिकारियों की उपलब्धियों एवं समस्याओं से परिचित रहे। क्षेत्रीय अभिकरणों के मध्य स्थित संचार व्यवस्था से मुख्य कार्यालय परिचित रहे। क्षेत्रीय अभिकरण अपनी प्रगति से मुख्य कार्यालय को परिचित कराते रहें। इस प्रकार संचार व्यवस्था प्रशासकीय मशीन में तेल का कार्य करती है, जिसके द्वारा क्रियाओं एवं व्यवहारों की गति में हल्कापन आता है।

9.6 जनसम्पर्क का अर्थ एवं परिभाषा

वर्नेस ने जनसम्पर्क के लिए तीन अर्थों का प्रयोग किया है–

1. जनता को दी गयी सूचना।
2. जनता के रुख और कार्य में संशोधन के लिए प्रयास करना।
3. जनता के प्रति किसी संस्था और संस्था के प्रति जनता के कार्यों और रूपों को एकीकृत करने के लिए प्रयास करना।

मिलेट ने लोक सम्पर्क में निम्न बातों का समावेश किया है–

1. सार्वजनिक कामना करना और आकांक्षाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करना।
2. जनता को परामर्श देना कि उसे क्या कामना करनी चाहिए?
3. जनता तथा सरकार के अधिकारों के मध्य सन्तोषजनक सम्पर्क स्थापित करना।
4. सरकार के विभिन्न अभिकरण क्या कर रहे हैं? इसकी जानकारी जनता को देना।

जनसम्पर्क की परिभाषा–"जब सम्पर्क एक विज्ञान है जिसके द्वारा कोई संगठन यथार्थ रूप में अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने का तथा सफलता के लिए आवश्यक जन स्वीकृति तथा अनुमोदन प्राप्त करने का कार्य करता है।" – *रेकसहार्ली*

"यह किसी व्यक्ति, विचार, समूह या व्यापार की व्याख्या करने, उन पर प्रभाव डालने तथा उनका विश्लेषण करने की कला है, जिससे यह लोक हित में मान्य एवं स्वयं भी लाभान्वित हो।" –*अमेरिकी विश्वकोष।*

9.7 जन सम्पर्क की आवश्यकता और महत्व

1. प्रत्येक संगठन का निर्माण किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया जाता है। उस उद्देश्य की प्राप्ति के सम्बन्ध में मात्र संगठन की आन्तरिक कार्य प्रणाली संसाधन तथा नियम ही पर्याप्त नहीं होते बल्कि संगठन का बाहरी पर्यावरण अर्थात् मानव समाज भी एक निर्णायक भूमिका निभाता है। लोक प्रशासन से सम्बन्ध प्रशासनिक संगठनों तथा सरकार को जनसम्पर्क की आवश्यकता अधिक पड़ती है क्योंकि इन संगठनों का निर्माण भी जनकल्याण के लिए है।
2. संगठन तथा जनता के मध्य तारतम्य स्थापित करने, जनता की इच्छाओं एवं रुझान को जानने तथा संगठन का पक्ष स्पष्ट करने के लिए जनसम्पर्क आवश्यक है।
3. सामान्यतः सरकारी संगठनों का जन सम्पर्क प्रक्रिया का उद्देश्य जनमत निर्माण तथा जनता के रुझान को वांछित दिशा में मोड़ना होता है, इसलिए जनसम्पर्क को जनता की अभियांत्रिकी भी कहा जाता है। क्योंकि आधुनिक युग में कोई भी संगठन जनमत तथा जनता की शक्ति की अवहेलना करने का दुस्साहस नहीं कर सकता बल्कि जन सम्पर्क के माध्यम से जनता की बात सुनने और अपनी कहने का प्रयास किया जाता है।
4. विकास प्रशासन मानवाधिकार, औद्योगिकीकरण, प्रशासन में जनसहभागिता, उपभोक्ता आन्दोलन तथा परिस्थितिकी उपागम की लोकप्रियता इत्यादि से लोकप्रशासन के संगठन में जनसम्पर्क की आवश्यकता ने एक नया रूप धारण कर लिया है।

9.8 जनसम्पर्क के साधन

जन सम्पर्क के निम्नलिखित साधन हैं।

1. श्रव्य साधन–रेडियो, सार्वजनिक भाषण, आडियो कैसेट, टेलीफोन आदि हैं।

2. दृश्य साधन–प्रदर्शनी, अखबार, पत्र-पत्रिकायें, पेम्पलेट, पोस्टर, अपील पत्र, विभागीय प्रकाशन, इन्टरनेट, ईमेल, डाक सम्पर्क आदि हैं।

3. श्रव्य दृश्य साधना–इसमें फिल्म, टेलीफोन, वृत्तचित्र, परस्पर वार्तालाप, वीडियो, शिविर, आयोजन, नाटक, लोकनृत्य, पेजर, टेलीकान्फ्रेंसिंग आदि आते हैं।

वस्तुतः जन सम्पर्क के माध्यमों तथा साधनों का स्पष्ट वर्गीकरण सम्भव नहीं है, क्योंकि यह सब साधन संचार तथा प्रचार के लिए प्रयुक्त होते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से जन सम्पर्क हेतु यह प्रयास दिखायी देते हैं–

1. अधिकांश सरकारी, निजी संगठन जनसम्पर्क हेतु जन सम्पर्क अधिकारी या सम्पर्क अधिकारी या प्रवक्ता की नियुक्ति कर देते हैं ताकि वह संगठन तथा जनता के मध्य सम्पर्क सूत्र का कार्य कर

सके।

2. बहुत से संगठन पत्र-पत्रिकाओं तथा जन संचार के अन्य माध्यमों से अपने जनसम्पर्क को अंजान देते हैं। सरकार द्वारा जारी विज्ञप्तियाँ जन साधारण के लिए सूचनाएँ, अपील तथा सरकार की उपलब्धियों के कुछ विज्ञापन कई बार जन सम्पर्क का काम करते हैं।

3. भारत में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा जन सम्पर्क हेतु कुछ विशिष्ट अभिकरण भी बनाए गये हैं–

(i) केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अधीन कार्यरत आकाशवाणी, दूरदर्शन, प्रकाशन विभाग, गीत एवं नाटक प्रभाग, फोटो प्रभाग, फिल्म प्रभाग, पत्र सूचना कार्यालय तथा विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार निदेशालय इसी कार्य को सम्पादित करते हैं।

(ii) राज्य सरकारों के सूचना एवं जन सम्पर्क निदेशालय भी राज्य सरकार की ओर से जन सम्पर्क का कार्य करते हैं।

(iii) विभागीय पत्रिकाओं, समाचार पत्रों में सरकार की उपलब्धियों के प्रकाशनों तथा अन्य सरकारी समाचार सूचना माध्यमों में जन सम्पर्क किया जाता है, कुछ विभागों में सूचना शिक्षा संचार ब्यूरो भी कार्य करते हैं।

राज्य के बढ़ते हुए दायित्व ने प्रशासन को लोगों के समीप ला दिया है। लोग भी प्रशासन के बारे में जागरूक हो गये हैं तथा वे अपने पहले की तरह चुपचाप आदेश प्राप्त नहीं करते। इसके विपरीत उनका दृष्टिकोण बहुत आलोचनात्मक हो गया है, वे प्रशासन के प्रत्येक कार्य में सहयोग नहीं देते। इस आलोचनात्मक दृष्टिकोण के कारण प्रशासकों का कार्य और भी कठिन हो गया है। एक ओर तो उसे आदेश है कि वह वैधानिक रूप से अभिव्यक्त लोगों की इच्छा को पूरा करे जिसके अधीन वह कार्य कर रहा है तथा दूसरी ओर प्रशासक का यह भी कार्य है कि वह नागरिक को अनुभव करवाए कि उसके हित का ध्यान रखा जा रहा है। परन्तु यह कठिनाई ऐसी नहीं जिसे दूर न किया जा सके। इसके लिए कर्मचारियों तथा लोगों में उचित सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है।

लोक सम्पर्क को आधुनिक लोकतन्त्र की आवश्यकताओं के अनुसार ढालने के लिए यह आवश्यक है कि लोक सम्पर्क के विभिन्न साधनों को इस प्रकार पूर्ण कराया जाय कि लोक सम्पर्क के सारे उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। लोक सम्पर्क की शिक्षा के लिए प्रयुक्त किया जाये न कि प्रोपगण्डा के लिए। इसे लोगों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए इसका सहयोग केवल औपचारिकता के साथ नहीं। बल्कि कर्मचारियों तथा नागरिकों के व्यक्तिगत सम्बन्धों से हैं। जहाँ कहीं लोक सम्पर्क की समस्यायें हैं, वे कर्मचारी के हाथ में है। वह लोक सम्पर्क में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। वह अपने ग्राहक के साथ अपने व्यवहार द्वारा लोक सम्पर्क का संचालक है। वह संगठन का स्रोत भी है क्योंकि इसे लोगों की आवश्यकताओं, आशाओं, इच्छाओं तथा सन्तुष्टियों का ज्ञान है।

9.9 नेतृत्व का अर्थ और परिभाषा

अंग्रेजी शब्द Lead से Leadership बना है। शब्द कोषीय दृष्टि से Lead के कई अर्थ हैं जैसे आगे होना, उच्च होना, मार्गदर्शन देना इत्यादि। Leader वह व्यक्ति है जो Lead करता है तथा Ship का अर्थ किसी स्थिति या परिस्थिति से है अर्थात् Leadership किसी व्यक्ति की वह योग्यता तथा स्थिति है जो दूसरों को राह दिखाने का कार्य करती है।

इसकी परिभाषा निम्नलिखित है–

"नेतृत्व वह क्रिया है जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति, उद्देश्यों के लिए व्यक्तियों को स्वेच्छा से कार्य करने हेतु उन्हें प्रभावित करता है।" *–टैरी*

"किसी उद्यम के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समान प्रयत्न द्वारा व्यक्तियों को प्रेरित तथा प्रभावित करना ही नेतृत्व है।" *–सेकलर हडसन*

"नेतृत्व, व्यक्तियों के व्यवहार को उत्तमता की ओर निर्देशित करता है जिसके द्वारा वे किसी संगठित प्रयत्न में संलग्न लोगों या उनकी क्रियाओं का मार्गदर्शन करते हैं।" *–बर्नार्ड*

9.10 नेतृत्व की आवश्यकता और उपयोगिता

सार्वजनिक क्षेत्र में लगातार वृद्धि होने के कारण निरन्तर प्रसारोन्मुख कल्याणकारी राज्य के अधीन अनेक बड़े तथा जटिल संगठन बनते जा रहे हैं। छोटे और बड़े इन सभी संगठनों को प्रशासकीय नेतृत्व की आवश्यकता होती है। बर्नार्ड का यह कथन सत्य है कि जनसंख्या की तुलना में नेताओं का आवश्यक अनुपात अधिक बढ़ गया है। प्रौद्योगिकी तथा विशिष्टीकरण की वृद्धि ने नेतृत्व की समस्या को और अधिक जटिल बना दिया है। सेकलर हडसन के शब्दों में, "नेतृत्व की समस्याओं का असाधारण महत्त्व, प्रशासनिक आकार की वृहदता, जटिलता, विशिष्टीकरण, सांगठनिक सत्ता, प्रविधिक विकास तथा सामाजिक आवश्यकताओं जैसे तत्त्वों में क्रान्तिकारी वृद्धि के साथ बहुत बढ़ गया है।"

नेतृत्व की उपयोगिता–किसी भी संगठन को एक संतुलित स्वरूप देने, उसके उद्देश्यों की कुशलतापूर्वक प्राप्ति सुनिश्चित करने कार्मिकों का सहयोग एवं सन्तुष्टि बनाए रखने तथा संगठनात्मक प्रभावशीलता का स्तर उच्च रखने के लिए अच्छे नेतृत्व से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। नेतृत्व की उपयोगिता दो दृष्टिकोण से समझी जा सकती है। नकारात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम यह मान सकते हैं कि नेतृत्व के द्वारा संगठन में अनुशासनहीनता, संघर्ष, सहयोग, विखराव तथा समन्वय की समस्या से मुक्ति पायी जा सकती है तो सकारात्मक दृष्टिकोण के आधार पर कहा जा सकता है कि नेतृत्व के द्वारा संगठन में सहयोग, नियन्त्रण, समन्वय, संचार, अभिप्रेरणा तथा अनुशासन की स्थापना होती है।

9.11 नेतृत्व के कार्य एवं गुण

चेस्टर बर्नार्ड ने नेता के चार कार्य बताए हैं–

1. उद्देश्यों का निर्धारण
2. कार्य के साधनों पर नियन्त्रण
3. साधनों का प्रबन्ध
4. समन्वित क्रियाओं को जीवंत रखना।

मेरी पार्कर फालेट ने नेता के तीन कार्य बताए हैं–

1. समन्वय करना
2. उद्देश्य का निर्धारण

सारांशतः कहा जा सकता है कि नेतृत्व करने वाले व्यक्ति को निम्न कार्य करने पड़ते हैं–

1. नीतियों और प्रक्रियाओं को नियोजित तथा परिभाषित करना।
2. सभी अलग-अलग व्यक्तियों को संगठित करना।
3. अधिकार और उत्तरदायित्वों का प्रतिनिधित्व करना।
4. वांछित लक्ष्य प्राप्ति हेतु नियन्त्रण करना।
5. समूह के कार्यों का पर्यवेक्षण करना।
6. सामान्य आदेश एवं दिशा निर्देश देना।
7. नीतियों और कार्यक्रमों की व्याख्या कर इन्हें लोगों तक पहुँचाना
8. कार्यकारी कर्त्तव्यों को विभक्त करने के लिए प्रमुख सहायकों को प्रशिक्षित करना।
9. समन्वय करना।
10. परिश्रम तथा योगदान देने वाले सभी कार्मिकों को प्रेरित करना तथा उनमें उत्साह का संचार करना।
11. अधीनस्थों की समस्यायें जानना एवं उसका समाधान करना।
12. सहयोग लेना तथा देना।
13. संगठन के प्रति निष्ठा एवं समर्पण की भावना उत्पन्न करना।
14. एक आदर्श के रूप में अनुयायियों के दिलों में उपस्थित रहना।

नेतृत्व सम्बन्धी कार्यों को मूर्त रूप देते समय नेता को कई भूमिकाओं को निर्वहन करना पड़ता है–

1. प्रतिनिधि की भूमिका
2. संघर्षों का समाधान कर्त्ता
3. आघातों का सहनकर्त्ता
4. आदर्श प्रतिमान
5. लक्ष्य निर्धारण कर्त्ता
6. समनवय कर्त्ता पर्यवेक्षक
7. पुरस्कार एवं दण्ड प्रधानकर्त्ता
8. भले-बुरे का भेदकर्त्ता
9. पर्यवेक्षक।

नेतृत्व के गुण

चेस्टर वर्नार्ड के अनुसार नेता में चार गुण होने चाहिए–

1. जीवन शक्ति तथा सहनशीलता

2. निर्णय की क्षमता
3. प्रोत्साहित करने की क्षमता
4. उत्तदायित्व एवं बौद्धिक विकास।

मिलेट ने नेतृत्व के गुण को इस प्रकार व्यक्त किया है–

1. अच्छा स्वास्थ्य
2. कार्य करने की इच्छा
3. दूसरे लोगों में रुचि लेना
4. बुद्धिमत्ता
5. विस्वास पैदा करने की क्षमता
6. ईमानदारी
7. निर्णय शक्ति
8. निष्ठा।

टेली के अनुसार नेतृत्व के निम्न गुण होने चाहिए–

1. कार्य शक्ति
2. भावनात्मक स्थायित्व
3. मानव सम्बन्धों का ज्ञान
4. व्यक्तिगत उत्प्रेरणा
5. संचार कौशल
6. शिक्षा देने की योग्यता
7. सामाजिक कौशल
8. विधिक दक्षता।

आर्ड वे टीड ने अच्छे नेता में दस गुणों का होना आवश्यक बताया है–

1. शारीरिक और मानसिक ऊर्जा
2. उद्देश्य एवं निर्देशन की भावना
3. उत्साह
4. मैत्रीभाव एवं स्नेह
5. तकनीकी दृष्टि से निपुणता
6. बौद्धिक ज्ञान
7. चारित्रिक बल
8. शिक्षण कौशल

9. निर्णय क्षमता

10. विश्वास।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रशासनिक संगठनों में नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों में निम्नलिखित योग्यताएँ एवं गुण होने चाहिए ताकि उसे योग्य एवं कुशल नेतृत्व कहा जा सके।

1. नेता को स्वस्थ एवं प्रसन्नचित रहना चाहिए।
2. नेता में स्पष्टता और दृढ़ता होनी चाहिए।
3. नेता में तुरंत स्पष्ट एवं परिपक्व निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए।
4. नेता में उत्साह, साहस, सहयोग, स्नेह तथा मानवता के स्वाभाविक गुण होने चाहिए।
5. नेता को स्वयं तथा अधीनस्थों की क्षमताओं पर अटल विश्वास होने चाहिए। यदि अधीनस्थों का मनोबल निम्न स्तरीय है तो नेता को उसमें निरन्तर प्रेरणा तथा ऊर्जा का मन्त्र फूँकना चाहिए।
6. नेता को अच्छा संगठनकर्त्ता होना चाहीए।
7. एक नेता के अन्दर अच्छे लोक सम्बन्ध को बनाए रखने का गुण होना चाहिए। नेता में अपना कार्य ठीक ढंग से बना लेने की चतुरता होनी चाहिए।
8. नेता को रूढ़िवादी नहीं अपितु सुधारवादी, परिवर्तनवादी तथा नव प्रवृत्तियों के संवाहक का पर्याय होना चाहिए।
9. प्रत्येक नेतृत्वकर्त्ता को सम्बन्धित संगठन की तकनीक बारीकियों सहित एक सामान्य कार्मिक से अधिक ज्ञान कौशल एवं जागरूकता होनी चाहिए।

9.12 नेतृत्व की विचारधाराएँ

नेतृत्व की विचारधाराओं में कुंट्ज तथा 'ओ' डोनेल तीन उपागमों या दृष्टिकोणों, लक्षणवादी, स्थितिवादी तथा तत्ववादी विचारधारा को महत्त्वपूर्ण माना है–

1. लक्षणवादी विचार धारा–प्राचीन रोमन तथा यूनानी सभ्यता से प्रभावित इस सिद्धान्त को 'महान आदमी सिद्धान्त' भी कहा जाता है क्योंकि इस विचारधारा के अन्तर्गत यह माना जाता है कि नेताओं में कुछ शैक्षणिक, शारीरिक तथा नैतिक गुण होते हैं। जो संगठन में नेतृत्व को सफल बनाते हैं। आर्डवे, टीड, हीसेली इस विचारधारा के समर्थक माने जाते हैं। लक्षणवादियों ने उदगनात्मक पद्धति को अपनाया है। जिसमें योग्य नेता का निरीक्षण करते प्रत्येक के लक्षणों की गणना की गयी है। उनमें एकसमान गुणों को आवश्यक माना गया है और नेतृत्व की शक्ति को नापने के लिए मापदण्ड के रूप में एक मापक प्रस्तुत किया है। परन्तु इस सिद्धान्त की मुख्य कठिनाई यह है कि नेतृत्व के समान लक्षणों का कोई प्रमाण नहीं है, नेतृत्व के समान गुणों पर लक्षणवादी बहुत कम सहमत है और इस प्रकार सर्वमान्य स्वीकार्य लक्षण उपस्थिति करने में वे असफल है।

2. स्थितिवादी विचारधारा–परिस्थित्यात्मक परीक्षण सिद्धान्त के नाम से प्रचलित इस विचारधारा का मुख्य चिन्तन उन परिस्थितियों की खोज पर है जो नेतृत्व की भूमिकाओं, कुशलताओं तथा व्यवहार को प्रभावित करती है। इस सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक फ्रेड ई० फीडलर के अनुसार नेतृत्व परिस्थिति में उभरता है एवं उस स्थिति के अनुसार प्रभावित भी होता है। कई बार परिस्थितियाँ ही ऐसी होती हैं कि

लोग नेता का प्रभाव मानते हैं अर्थात स्थितिवादी विचारधारा में नेता का प्रभाव या निष्प्रभाव अर्थपूर्ण नहीं है। बल्कि उस सफल कारक या सन्दर्भ को देखा जाता है जो एक परिस्थिति में नेता को सफल, तो दूसरी परिस्थिति में असफल बनाता है। मिलेट भी इस विचारधारा का समर्थन करते हैं। जर्मनी तथा अमेरिका जैसे पश्चिमी देशों में सेना तथा पुलिस अधिकारियों के चुनाव के लिए केवल प्रयोगात्मक रूप में इस उपागम का प्रयोग किया जाता है इस सिद्धान्त को ``Contingency theory" भी कहा जाता है। जब कि कूंट्ज तथा 'ओ' डोनेल ने इसे अवसर प्रदान करने का सिद्धान्त भी कहा है।

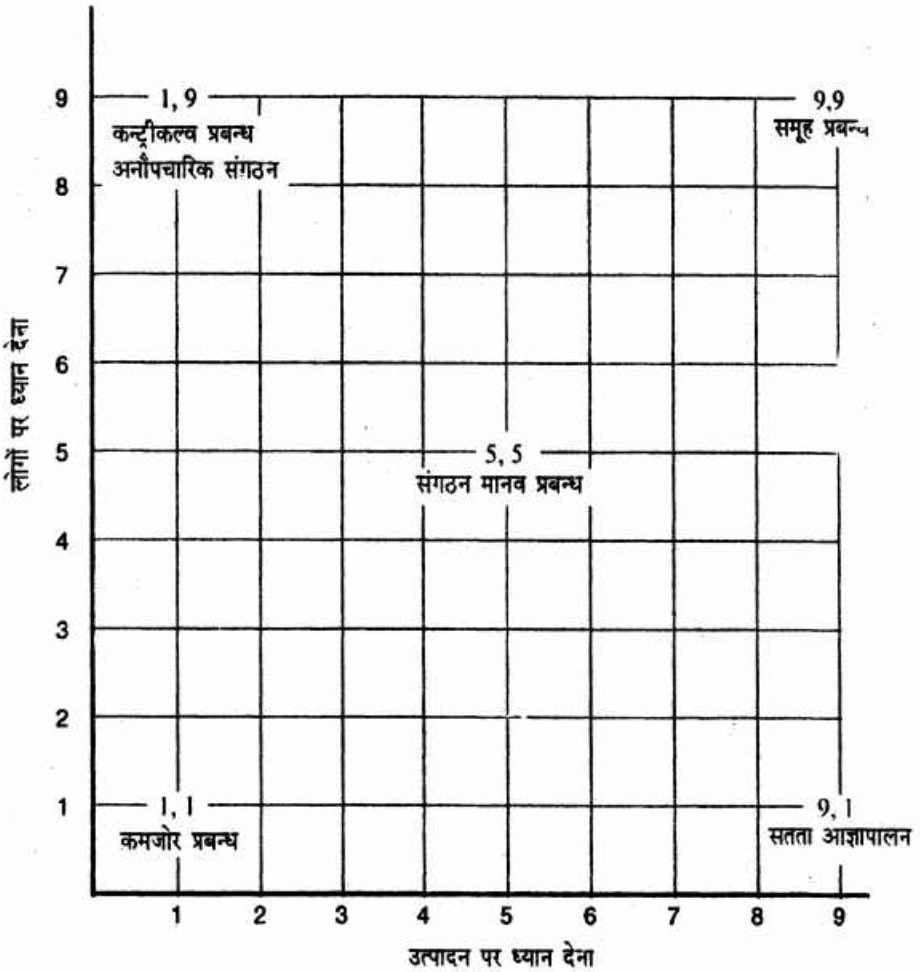
3. समूह विचारधारा–नेतृत्व के अनुयायी या समूह सिद्धान्त का विकास, सामाजिक मनोवैज्ञानिक चिन्तकों तथा अध्येताओं द्वारा किया गया है। इस सिद्धान्त में यह माना जाता है कि नेता अपने अनुयायिओं को लाभ पहुँचाता है और अनुयायी नेता पर निर्भर करते हैं। अनुयायी तब तक नेता का साथ देते हैं जब तक कि वह अनुयायियों की आवश्यकताएं पूरी करता रहता है। एच0 एस0 सेस फोर्ड इसके प्रतिपादक माने जाते हैं। इस विचारधारा के अन्तर्गत इस बात पर बल दिया जाता है कि नेता की नेतृत्व क्षमता के अध्ययन हेतु नेता तथा अनुयायी सम्बन्धों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

4. पथ लक्ष्य विचारधारा–इस सिद्धान्त का विकार मार्टिन जी0 इवान्स तथा रावर्ट जे0 हाउस ने किया है। अभिप्रेरणा के प्रत्याशा सिद्धान्त से विकसित हुई इस नेतृत्व विचारधारा की मुख्य मान्यता यह है कि नेता का प्रभाव इसलिए रहता है कि वह अधीनस्थों की प्रेरणा क्षमता, उत्साह तथा सन्तुष्टि को प्रभावित करता है। रावर्ट हाउस ने पथ लक्ष्य विचारधारा में निदेशात्मक नेतृत्व, मददगार नेतृत्व, सहभागी नेतृत्व तथा उपलब्धि उन्मुख नेतृत्व को सम्मिलित करते हुए कहा है कि नेतृत्व के विभिन्न प्रारूप तथा कार्य के विभिन्न प्रतिफल कार्मिकों का अनुयायिओं की संतुष्टि कार्यक्षमता तथा निष्पादन को प्रभावित करते हैं। नेतृत्व को लक्ष्यों का निर्धारण, तथा उनकी प्राप्ति के लिए आवश्यक मार्गों का निर्माण करना चाहिए।

5. जीवन वृत्त–पाली हर्सी तथा ब्लैकार्ड द्वारा विकसित यह सिद्धान्त नेतृत्व तथा सम्बन्धित कार्मिकों की परिपक्वता को महत्त्वपूर्ण मानता है। इन्होंने नेतृत्व की कार्य शैली तथा सम्बन्ध सूत्रता को चार प्रकारों यथा–कथन शैली, विक्री शैली, भागीदारी शैली तथा प्रतिनिधित्व शैली में विभक्त किया है। तथा यह बताया है कि अच्छे नेतृत्व के लिए सही शैली का प्रयोग करना चाहिए। जहाँ अधीनस्थों की परिपक्वता का स्तर निम्न हो वहाँ पर कथन शैली एवं विक्री शैली कारगर सिद्ध होती है। जबकि बागीदारी शैली प्रतिनिधित्व शैली उच्च स्तर की परिपक्वता वाले अधीनस्थों के लिए उपर्युक्त रहती है। यहाँ परिपक्वता से तात्पर्य कार्मिकों या अधीनस्थों की आयु अथवा संगठन में उसके स्थायित्व से नहीं बल्कि कार्य करने की इच्छा, उत्तरदायित्व, ग्रहण करने की तत्परता तथा संगठन में प्राप्त अनुभव से है।

6. एक्स-वाई विचारधारा–डगलस मैकग्रेगर द्वारा प्रतिपादि ``x" – ``y" विचारधारा अभिप्रेरणा सिद्धान्त से सम्बन्धित है। x सिद्धान्त के अन्तर्गत मैकग्रेगर ने व्यक्ति को कामचोर, आलसी तथा रूढ़िवादी मानते हुए नेता से यह अपेक्षा की है कि वह दण्ड एवं भय से अधीनस्थों से कार्य ले। जब कि y सिद्धान्त के अन्तर्गत अधीनस्थों को उत्साही, आशावादी, कर्मठ तथा परिश्रमी मानते हुए नेता से यह अपेक्षा की गयी है कि वह अधीनस्थों को प्रोत्साहन एवं सम्बल प्रदान करें एवं स्वयं निर्णयन में उनकी सहायता भी लें।

नेतृत्व के अन्य सिद्धान्तों में कुर्त लेविन का कार्यालय सिद्धान्त भी प्रमुख है। जिसमें एक व्यक्ति के बजाय समूह के कार्यों पर ध्यान दिया जाता है व्यवहारवादी विचारधारा में नेता क्या है? के स्थान पर नेता क्या करता है? पर बल दिया गया है। करिश्माई नेतृत्व विचारधारा में यह माना जाता है कि कुछ



ब्लेक तथा माउटन द्वारा सन् 1964 में प्रतिपादित प्रबन्धकीय ग्रिड में नेता के व्यवहार के दो आयामों तथा उत्पादन पर ध्यान देना तथा लोगों पर ध्यान देने में दिक्कत करते हुए 1 से 9 तक अंकों का आरेख प्रस्तावित किया जाता है। कम उपलब्धियों के लिए एक नं0 तथा अधिकतम के लिए 9 नं0 देकर उन्हें दूसरे पक्ष के 9 नं0 से मिलान किया जाता है। इस प्रकार नेता की सोच उत्पादन या लोगों के प्रति उन्मुखता के आधार पर कुल 81 प्रकार की स्थितियाँ नेतृत्व की हो सकती हैं। इसमें पाँच विशेष शैलियाँ हैं।

प्रबन्धकीय ग्रिड में उत्पादन, उन्मुख नेतृत्व सत्ता तथा आज्ञापालन पर जोर देता है। जबकि व्यक्ति उन्मुख नेतृत्व अनौपचारिक संगठन की भाँति कार्य करना पसंद करता है। समूह प्रबन्धन में उत्पादन तथा व्यक्ति के दोनों अंक सर्वोच्च होते हैं तो अत्यन्त कामचोर प्रबन्ध में दोनों पक्ष निम्नतम होते हैं तो ब्लेक ताथ माउटन ने दोनों पक्षों के 5-5 अंक को मध्यम मार्गीय या संगठन मानव प्रबन्ध करार दिया है।

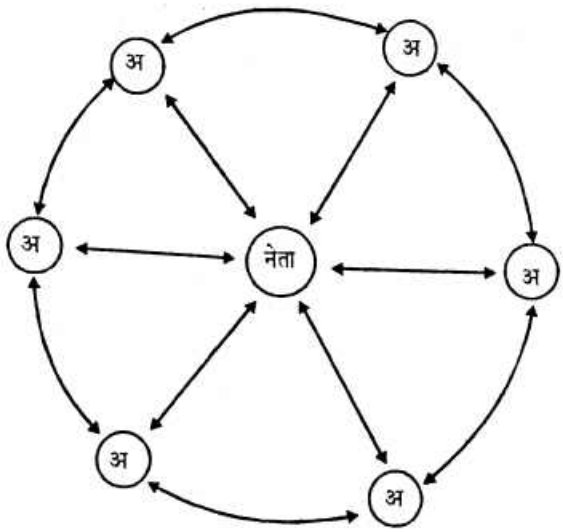
वस्तुतः नेतृत्व के सम्बन्ध में बहुत से शोध कार्य हुए हैं। परन्तु सर्वमान्य या त्रुटि रहित सिद्धान्त एक भी नहीं है।

9.13 नेतृत्व के प्रकार

MAPS-104/125

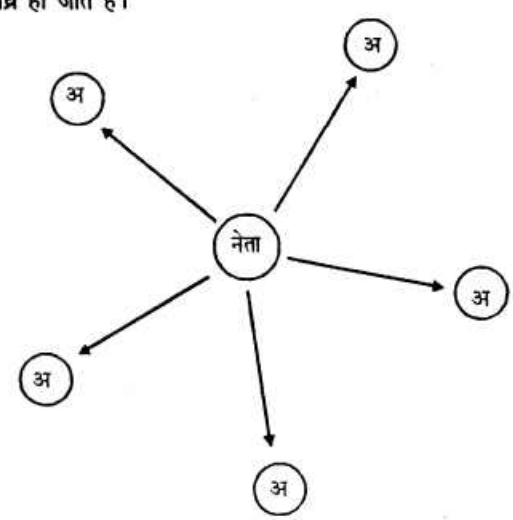
नेतृत्व के प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. लोकतान्त्रिक नेतृत्व–इसे सहभागिता नेतृत्व भी कहा जाता है। इस प्रकार के नेतृत्व में संगठन के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के क्रम में अधीनस्थों का पर्याप्त सहयोग लिया जाता है। निर्णय में नेता तथा अधीनस्थ मिलकर भूमिका निर्वाहित करते हैं। नेता अन्तिम निर्णय नहीं करता बल्कि विकल्प सुझाता है। समूह के सदस्यों को स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। नेता यह विश्वास करता है कि अधीनस्थ में क्षमताएं एवं योग्यताएं हैं। संगठन में पारदर्शिता को अपनाया जाता है। परन्तु दोष यह है कि इस प्रकार के नेतृत्व में निर्णय देरी से हो पाते हैं तथा गुणवत्ता की कमी बनी रहती है इसको निम्नांकित चित्र द्वारा समझा जा सकता है।



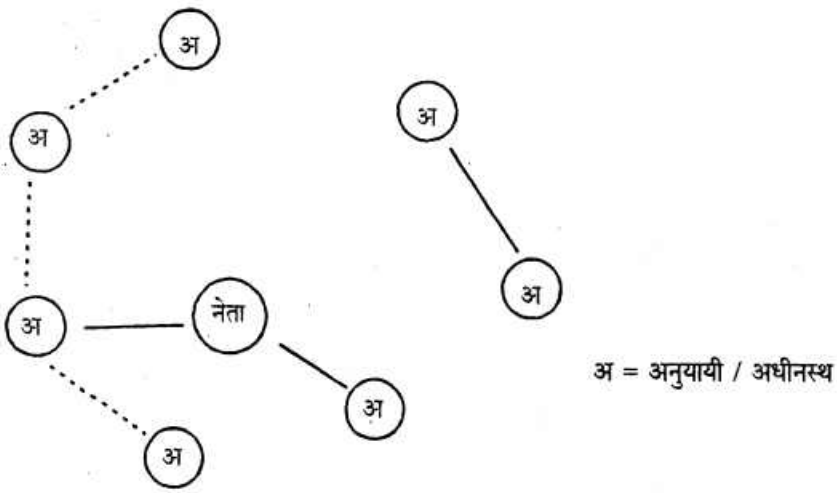
लोकतान्त्रिक नेतृत्व

2. निरंकुश नेतृत्व–निरकुश नेतृत्व में एकतरफा संचार होता है। क्योंकि निर्णयन में नेता अधीनस्थों से परामर्श नहीं लेता। वह केवल नीति निर्णय, आदेश तथा मार्गदर्शन निर्धारित करता है तथा स्वयं ही परिवर्तन कर सकता है। संगठन में अन्य सभी नेता के आदेश मानने पड़ते हैं। यह शैली नेता समूह से पृथक तथा स्वयं को श्रेष्ठ समझते हैं। यह शैली अधीनस्थों के लिए कष्टदायी होती है। असन्तोष को जन्मदेती है तथा लक्ष्यों की प्राप्ति में कार्मिक उदासीनता को जन्म देती है। तथापि निरंकुश नेतृत्व में निर्णय शीघ्र हो जाते हैं।



निरंकुश नेतृत्व

3. अहस्तक्षेपवादी नेतृत्व–इस प्रकार के नेतृत्व में नेता कोई हस्तक्षेप नहीं करता। निर्णय लेने में नेता की सहभागिता बहुत कम होती है। अधीनस्थ स्वयं की प्रेरणा से ही कार्य करते हैं तथा उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता स्वयं की प्रेरणा से ही कार्य करते हैं तथा उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता भी प्राप्त रहती है। इस शैली में नेता स्वयं समूह के सदस्य जैसी भूमिका निभाता है नेता जैसा नहीं। यह नेतृत्व अराजकता, अव्यवस्था, निराशा तथा अनुशासनहीनता को जन्म देती है।



अहस्तक्षेप नेतृत्व

4. नौकरशाहीनुमा नेतृत्व–प्रशासनिक संगठनों विशेषतः विकासशील देशों के सरकारी तन्त्र में इस प्रकार का नेतृत्व पाया जाता है। नेता अपनी निर्धारित संगठनात्मक परिस्थिति की भूमिका निभाता है। औपचारिक व्यवहार करता है तथा व्यक्तिगत नेता का रूप धारण किये रहता है, कानून, नियमों तथा प्रक्रियाओं से मोह रखने वाले इस प्रकार के नेता दिनों दिन कार्यों को महत्त्व देते हैं।

5. कूटनीतिक नेतृत्व–इस प्रकार का नेतृत्व प्रायः विदेश विभाग प्रतिनिधि मंडलों तथा बड़े उपक्रमों के व्यावहारिक सम्बन्धों में पाया जाता है। नेता का स्वभाव कूटनीतिज्ञों जैसा हो जाता है। कूटनीतिज्ञ नेतृत्वकर्त्ता विकास कार्यों के संगठनों में सर्वथा अनुपयुक्त सिद्ध होते हैं। इस प्रकार का नेता अवसरवादी तथा शोषणकर्त्ता माना जाता है। उसे अधीनस्थों पर विश्वास नहीं होता।

6. विशेषज्ञ नेतृत्व–इस प्रकार का नेतृत्व आजकल वक्ष है। संगठनों में कार्यरत विशेषज्ञ या तकनीकी क्षेत्र के जानकार व्यक्ति जब नेता की स्थिति में आते हैं तो वे केवल अपने विशिष्ठ क्षेत्र के सम्बन्ध में सोचते एवं कार्य करते हैं। तथापि वह क्षेत्र से सम्बन्धित सहयोगियों या अधीनस्थों में लोकप्रिय होता है तथा सहयोगात्मक व्यवहार करता है, किन्तु अधीनस्थ परिवर्तन के विरुद्ध होते हैं।

नेतृत्व का संगठन में महत्त्वपूर्ण स्थान है यदि नेता गुण सम्पन्न है अर्थात उसमें प्रभावशीलता निर्णय लेने की क्षमता, दूसरों को समझाने की योग्यता एवं बुद्धिमता आदि है तो संगठन में समस्त प्रशासकीय कार्यों को सरलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है। नेतृत्व एक ऐसा कार्य है जिसके सम्बन्ध में पुरानी धारणा अब बदल चुकी है कि नेता पैदा होते हैं बनाए नहीं जाते। आज तो सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है कि प्रशिक्षण द्वारा नेतृत्व के गुणों को विकसित किया जाता है और नेता में नये गुण विकसित किये जा सकते हैं।

पुरातन धारणा के पीछे सम्भवतः तथ्य यह था कि प्रशिक्षण के सुविकसित तरीके उस समय उपलब्ध नही थे किन्तु फिर भी उस काल में सेवकों को प्रशिक्षण द्वारा स्वामी योग्य बना देते थे। आजकल तो

प्रशिक्षण का उद्देश्य बहुत ही बढ़ गया है। क्योंकि पुरातन संगठनों में नेतृत्व को जिस रूप की आवश्यकता होती थी उसमें व्यक्तिगत गुणों का बाहुल्य रहता था और लक्षणवादी विचारधारा उस समय प्रभावशील थी। नेतृत्व के लिये जिन गुणों की आवश्यकता रहती थी वे व्यक्ति में जन्म से ही आ जाती थी। परन्तु आज परिस्थितियाँ और संगठन की आवश्यकताएं क्रान्तिकारी रूप में परिवर्तित हो चुकी हैं। इनके सन्दर्भ में जन्मजात गुण चाहे उनकी संख्या और प्रकार कितना भी सशक्त क्यों न हों नेतृत्व के लिए पर्याप्त नहीं माने जा सकते। नेतृत्व से सम्बन्धित वर्तमान तकनीकें जन्म से नहीं अपितु प्रशिक्षण से आती हैं। नेतृत्व के अन्तर्गत एक नेता को सदा इस बात का प्रयास करना होता है कि वह स्थिति के अनुसार अपने अनुयायी अथवा अनुयायियों के व्यवहार को प्रभावित कर सके। नेतृत्व उस प्रक्रिया का नाम है जो एक संगठन के सदस्यों से सूझ-बूझ तथा प्रेरणा द्वारा सहयोग प्राप्त करती है। शक्ति या बल प्रयोग द्वारा नहीं। अच्छे प्रशासनिक नेता में अच्छा स्वास्थ्य, उत्साह, सेवा भाव ईमानदारी तथा निष्ठा जैसे गुणों का होना अनिवार्य है। कुछ व्यक्तियों का कहना है कि एक प्रशासनिक नेता की वास्तविक विशेषताएँ तभी स्पष्ट होती है जब वह एक विशिष्ट स्थिति में व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह में कार्य करता है। एक ही नेता को विविध प्रकार की स्थितियों में सफलतापूर्वक काम करने के लिए अनेक प्रकार के गुणों की आवश्यकता होती है।

9.14 निर्णयन का अर्थ एवं परिभाषा

शब्दकोष के अनुसार 'निर्णय' का अर्थ है "अपने मन में किसी विचार अथवा कार्रवाई के बारे में निर्धारित करना।" प्रस्तुत कई विकल्पों में से एक विकल्प चुनना होता है। इसकी परिभाषा को इस प्रकार समझा जा सकता है।

"दो या अधिक सम्मिलित विकल्पों में से किसी एक व्यावहारिक विकल्प को चुनना ही निर्णय लेना है।" – *'टैरी'*

"निर्णयन मुख्यतः विकल्पों को सीमित करने की तकनीक है।" – *'वर्नार्ड'*

हरवर्ट साइमन ने निर्णयन को प्रबन्ध या प्रशासन का हृदय मानते हुए सभी प्रशासनिक प्रक्रियाओं को निर्णयात्मक प्रक्रिया करार दिया है अर्थात् प्रशासन में जो कुछ घटित होता है वह निर्णयन से ही सम्बन्धित है।

9.15 निर्णयन की विशेषताएँ

इसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. निर्णय भूमिका मूल रूप से एक मानवीय प्रक्रिया है जिसके लिये पर्याप्त बुद्धि, ज्ञान, विवेक, अनुभव की आवश्यकता होती है।
2. निर्णयन अनेक विकल्पों में सर्वोत्तम विकल्प के चयन की प्रक्रिया है।
3. निर्णयन नियोजन का अंग है जिसमें चुनाव की स्वतन्त्रता होती है।
4. निर्णय प्रक्रिया में दृष्टा आवश्यक है यह वास्तविक स्थिति के अनुरूप होते हैं।
5. निर्णय का स्वरूप तथा प्रभाव सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है।
6. प्रत्येक निर्णय उद्देश्य युक्त होता है प्रत्येक निर्णय अपने आप में साध्य न होकर साध्य तक पहुँचने का एक साधन होता है।

9.16 निर्णय निर्धारण के घटक और निर्णय लेने की तकनीक

मिलेट के अनुसार निर्णय निर्धारण के निम्न घटक हैं–

(1) **व्यक्तिगत अन्तर, जो कुछ को निर्णायक और दूसरों को अनिर्णायक बनाता है–**

कुछ लोग ऐसे हैं जो निर्णय में देर लगाते हैं, अस्थायी निर्णय करते हैं, उन्हें स्थापित कर देते हैं तथा इससे किनारा कस लेते हैं। वे किसी भी निर्णय पर दृढ़ नहीं रह सकते हैं और सदा उनमें कोई न कोई ऐसी कमी रखते हैं जिससे बाद में स्वयं बचकर निकल जाय। दूसरी तरफ कुछ लोग निर्णय लेने में कृतसंकल्प, दृढ़ तथा शीघ्रगामी होते हैं। किसी कारण लोग एक या दूसरी तरह आचरण करते हैं। यह इस अध्ययन के क्षेत्र की परे की समस्या है। कदाचित सामाजिक तथा व्यावसायिक पृष्ठभूमि का इससे कुछ सम्बन्ध है। उदाहरण स्वरूप वकीलों की अपेक्षा न्यायाधीशों में निर्णयात्मक प्रवृत्ति अधिक जाती है। इस प्रकार यह भी अनुमान है कि बुद्धिजीवी लोग जिन्हें किसी विषय का गहन ज्ञान होता है। प्रायः निर्णय देने की कम ही योग्यता रखते हैं। उदाहरण के लिए नेतृत्व के मामले में वे अनुत्तरदायी निर्णन न कर सकने वाले तथा विश्वास न दिला सकने वाले सिद्ध होते हैं।

2) **निर्णय करने में ज्ञान का योग**–मिलेट के अनुसार विस्तृत तथ्यों का सावधानी के साथ संचय, इनका विश्लेषण तथा व्याख्या, भावी विकासों का पूर्वानुमान, मानवीय तथा मौलिक आचरण की आमान्य अवधारणाओं का प्रयोग ऐसे तत्त्व हैं जो निर्णय करने में ज्ञान का प्रयोग करते समय भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रभावित करते हैं। निर्णय लेने के लिए ठीक विवरण एकत्र करने हेतु सांख्यकीय कार्य अध्ययन, प्रवर्तन अनुसंधान तथा प्रबन्ध सर्वेक्षण का काम हितकारी होता है।

3) **सीमाएँ**–व्यक्तिगत तथा संस्थागत सीमाएँ निर्णय करने में प्रतिबन्ध लगाती हैं। मिलेट का मत है कि एक ओर निर्णय करने में उच्चाकांक्षाओं, परम्पराओं तथा कार्य को सम्पन्न करने वाले अभिकरण के दृष्टिकोणों को समझना आवश्यक है। दूसरी ओर प्रशासकों में निहित व्यक्तिगत रुचि एवं भावना भी निर्णय करने के कार्य को सीमित कर देती है।

निर्णय कौन करता है–किसी भी संगठन में निर्णय बहुत से लोगों द्वारा किया जाता है। अतः निर्णय सहकारी रूप में सहयोग पूर्वक ही किये जाते हैं। सार्वजनिक विश्लेषण सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय कदाचित ही एक मनुष्य करता है। सेकलर हडसन के शब्दों में "शासन में निर्णय करना एक ऐसा कार्य है जिसे एक से अधिक लोग मिलकर करते हैं। अकेला व्यक्ति निर्णय की घोषणा भले ही कर दे किन्तु निर्णय तक पहुँचने की प्रक्रिया में बहुत सी चीजों का योग रहता है यह कार्य राजनीतिक अगाली का ही भाग है। फिर भी जब निर्णय के विश्लेषण का समय आता है तब संगठन के प्रबन्धक के मुख्य निष्पादक को ही अन्तिम निर्णय करना होता है।

निर्णय करने के आधार–निर्णय करने का कोई निश्चित आधार नहीं है और न हो सकते हैं। यह बहुत कुछ निर्णय की प्रकृति तथा निर्णय लेने वाली एजेंसी की प्रकृति पर निर्भर होता है। सेकलर जान्सन ने ऐसे 12 तत्त्व गिनाये हैं जो निर्णय करते समय अवश्य विचारणीय हैं। कानूनी मर्यादायें, लोकाचार, बजट तथ्य, इतिहास, मनोबल, अनुमानित भविष्य, उच्च श्रेणी, दबाव समूह, कर्मचारी वर्ग कार्यक्रम की प्रकृति तथा अधीनस्थ कर्मचारी गण।

निर्णय करते समय जिस बात पर जोर दिया जाना चाहिए वह यह है कि निर्णय का आधार कल्पना न होकर व्यावहारिक होना चाहिए।

निर्णय लेने की तकनीक–हैरी ने निर्णय लेने के लिए तकनीक बतायी है–

1. यह निश्चय करना कि समस्या क्या है?

2. समस्या की सामान्य पृष्ठभूमि से सम्बन्धित सूचना तथा विभिन्न दृष्टिकोण एकत्र करने चाहिए।
3. कार्य साधन के सर्वोत्तम मार्ग को बनाना चाहिए।
4. योजना तथा कामचलाऊ निर्णय निश्चित करने का प्रयास करना चाहिए।
5. इस काम चलाऊ निर्णय का मूल्यांकन करना चाहिए।
6. निर्णय करना तथा उसे क्रियान्वित करना।
7. प्राप्त परिणामों के प्रकाश में भावी कदम निश्चित और यदि आवश्यक हो तो निर्णयों में संशोधन करना चाहिए।

9.17 निर्णयन की समस्यायें और प्रतिमान

प्रो माच ने निर्णयन के सम्बन्ध में तीन समस्याओं की व्याख्या की है–

1. बहुत सी समस्याओं या प्रकरणों में से वह पहले किसे निपटाएं।
2. किसी समस्या की अनिश्चितता को समाप्त करने के लिए कितना प्रयत्न और धन लगाएँ।
3. समस्या के समाधान के लिए वह किस विकल्प को अपनाएं।

इसके अतिरिक्त निर्णयन तन्त्र के सामने निम्न समस्यायें हैं–

1. निर्णयन तन्त्र की सीमा–संगठनात्मक स्तर तक प्रवर्तित निर्णय प्रक्रिया की व्यवस्था में भी अनेक प्रकार के दोष व्याप्त रहते हैं। किस अधिकारी को कितनी सत्ता तथा अधिकार दिये जायं तथा उसी के अनुरूप उत्तरदायित्व निर्धारित किये जायें इत्यादि का निर्धारण संगठन में सरलता से नहीं हो पाता। अधिकतर कर्मठ व्यक्तियों के पास काम का बोझ अधिक रहता है। लोक प्रशासन में निर्णयन तन्त्र को प्रभावित करने वाले कारकों में सत्ता का मापदण्ड, समय, कानून मूल्य तथा नियन्त्रण आदि की सीमाएं एवं राजनीतिक दल, दबाव समूह, सामाजिक परिवेश, अर्थव्यवस्था, भौगोलिक परिस्थितियाँ सांस्कृतिक प्रतिमान तथा राजनीतिक निर्णयों की प्रकृति निर्णायक भूमिका निभाती है निर्णय के लिए आवश्यक विकल्पों का न मिलना या बाध्यताओं का घेरा अथवा सूचनाओं की कमी की इस प्रक्रिया को बाधित करती है।

2. मानव व्यवहार की सीमाएँ–निर्णयन वास्तविक रूप में मानव व्यवहार का मूर्तरूप होता है जो अन्य किसी के व्यवहार को प्रभावित करता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी पारिवारिक सांस्कृतिक, शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि होती है। जिसके अनुरूप व्यक्ति के विचार मूल्य एवं सरकार पल्लवित होते हैं। आयु, जाति, धर्म, नस्ल लिंग, भाषा, देश, काल, बुद्धि तथा चरित्र निर्णयन को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं।

3. अभिनति की समस्या–अभिनति या या वायस का अर्थ है कुछ तिरछा या एक ओर झुका हुआ। जब किसी व्यक्ति का मत या विचार सशक्त ढंग या पक्षपातपूर्ण रूप से एक ओर झुके हुए प्रतीत हों तो इसे अभिनति कहा जाता है। अभिनति के कारण निर्णयन में विवेकशीलता का समावेश कठिन हो जाता है। अभिनति की समस्या वंश, परिवार, जाति, भाषा, क्षेत्र लिंग, आयु, धर्म से लेकर शिक्षा एवं अनौपचारिक समूहों तक किसी के भी प्रभाव के कारण आ सकती है।

प्रशासनिक संगठनों में अभिनति का सर्वाधिक दुष्प्रभाव वहाँ पड़ता है जहाँ अधिकारी के पास स्वविवेकीय शक्तियों हों। परम्परायें, नियम या प्रक्रियायें निश्चित न हो, समाज से सम्बन्धित सीधी

सेवाएं देनी हो, एक वर्ग का, समूह का लाभ हेतु चयन करना हो तथाकार्मिक का चयन, पदोन्नति या निष्कासन करना हो। ऐसी परिस्थितियों में निर्णय लेते समय व्यक्ति अनजाने में ही अभिनति का शिकार हो जाता है।

4. दिनचर्या की समस्या–प्रो० मार्च एवं साइमन का मानना है कि दैनिक कार्यप्रणाली तथा समस्यायें कई बार व्यक्ति पर इतनी हावी हो जाती हैं कि वह महत्त्वपूर्ण दीर्घकालीन तथा तात्कालिक महत्त्व के निर्णयों को टालता रहता है। कांग्रेसी इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नोलाजी में शोध कार्य करने के पश्चात प्रो० मार्च ने इस स्थिति को योजना सम्बन्धी नियम करार दिया है। अधिकांश प्रबन्धकों का समय रोजमर्रा के कार्यों एवं निष्पादन में व्यतीत हो जाता है अर्थात् रोजमर्रा के कार्यों में वास्तविक दूरगामी तथा महत्त्वपूर्ण निर्णयन बहुत कम हो पाते हैं। मात्र पत्रों के उत्तर देना, फाइलों पर टिप्पणी लिखना या अधीनस्थों को निर्देश देने में ही सारा दिन व्यतीत हो जाये तो निर्णयों के लिए समझ कैसे दिया जा सकता है? समय की सीमा तथा गति निश्चित होती है, परन्तु संगठन में कार्यों का बोझ अनिश्चित होता है।

अन्य समस्यायें–निर्णयन के क्रम में प्रबन्धक यह निर्धारित नहीं कर पाते कि कौन सी समस्या पहले सुलझायी जाय। इसी प्रकार ठीक निर्णय क्या है, इसका निर्णय करना भी टेढ़ी-खीर होता है। प्रत्येक संगठन में तथ्यों, सूचनाओं, आकड़ों का एकत्रण तथा संग्रहण की अपनी सीमाएँ होती हैं। कई बार समस्या अपने आप में इतनी जटिल अस्पष्ट था बहुआयामी होती है कि उसका ओर-छोर ढूँढ़ना मुश्किल हो जाता है। लोक प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप तथा संसाधनों की कमी भी निर्णयन को प्रायः प्रभावित करती रहती हैं।

निर्णयन के प्रतिमान–निर्णयन के सम्बन्ध में मानव व्यवहार तथा संगठनात्मक परिस्थितियों को आधार बनाकर दो प्रकार के प्रतिमान प्रचलित हैं–

1. आर्थिक मानव प्रतिमान या पूर्णविवेकशीलता प्रतिमान।

2. प्रशासनिक मानव या सीमित विवेकशीलता प्रतिमान

1. आर्थिक मानव प्रतिमान–यह प्रतिमान दो मान्यताओं पर आधारित है–

क. कि मनुष्य आर्थिक रूप से विवेकशील होता है।

ख. कि मनुष्य क्रमबद्ध तरीके से लाभ या उपयोगिता की प्राप्ति के अधिकाधिक प्रयास करता है।

हरवर्ट साइमन ने आर्थिक आर्थिक मानव प्रतिमान के पाँच आयाम बताये हैं–

1. इस प्रकार के निर्णय पूर्णतया विवेकयुक्त तथा साधन-साध्य सम्बन्ध पर आधारित होते हैं।
2. विकल्पों में से प्राथमिकतानुसार विकल्प चुनने हेतु पूर्ण तथा नियमित व्यवस्था होती है।
3. सभी सम्भावित विकल्पों के प्रति पूर्ण सजगता रहती है।
4. सर्वश्रेष्ठ विकल्प के चयन हेतु गणनाओं की कोई सीमा नहीं होती है।
5. सम्भाव्यता की गणना हेतु कोई आशका या रहस्य नहीं होता है।

आर्थिक मानव प्रतिमान में निर्णय के निम्न चरण होते हैं–

(i) समस्या या प्रकरण के उद्देश्य या लक्ष्य जानना या समस्या की पहचान करना।

(ii) समस्या को परिभाषित करना या जो लक्ष्य प्राप्त करता है उसे निश्चित करना।

(iii) वैकल्पिक साधनों के मूल्यांकन के लिए प्रमाण विकसित करना।

(iv) समस्त वैकल्पिक विधियों को खोजना।

(v) प्रत्येक विकल्प के सम्भावित परिणामों पर विचार करना।

(vi) प्रत्येक विकल्प के परिणामों को समस्त रूप से जानकर श्रेष्ठ विकल्प चुनना।

(vii) निर्णय को क्रियान्वित करना।

"वस्तुतः आर्थिक मानव प्रतिमान निर्णय कैसे लेना चाहिए" का आदर्श रूप तो प्रस्तुत करता है जो अधिकतम लाभ उपयोगिता तथा विवेक पर आधारित माना जाता है किन्तु वास्तव में निर्णय कैसे किए जाते हैं? का वर्णन नहीं करता है। साइमन के अनुसार मनुष्य के लिए पूर्ण विवेकी होना अनिवार्य नहीं है अतः आर्थिक मानव के प्रतिमान का व्यावहारिक प्रयोग भी नहीं है।

2. प्रशासनिक मानव प्रतिमान–साइमन की दृष्टि में निर्णयन में तथ्य तथा मूल्य का समावेश रहता है तथ्य का आशय वस्तु तथा मूल्य का आशय पसंद से हैं। मूल्य वरीयता की अभिव्यक्ति होते हैं तो तथ्य सहमति को प्रकट करते हैं। साइमन ने प्रशासनिक मानव के निर्णयों को चार प्रतिमान वर्णित किये हैं–

1. प्रशासनिक मानव विभिन्न विकल्पों का चयन करते समय मात्र सन्तोषजनक या ठीक-ठाक या पर्याप्त रूप से अच्छे विकल्प से ही सन्तुष्ट हो जाता है। उसकी नजर में उचित कीमत या पर्याप्त लाभ इत्यादि मापदण्ड संतुष्टिदायक हैं।
2. प्रशासनिक मानव यह मानकर चलता है कि वास्तविक संचार लगभग रिक्त है। अतः सरलीकरण के द्वारा सन्तुष्टि पा लेता है।
3. अधिकतम के बजाय सन्तोषजनक का चयन प्रशासनिक मानव की विशेषता है। अतः वह सम्भावित विकल्पों का निर्धारण किये बिना ही सन्तुष्टिदायक विकल्प चुन लेता है।
4. चूँकि प्रशासनिक मानव संचार को रिक्त मानता है अतः वह अपने सामान्य ज्ञान अंगूठा नियम व व्यापार के दाँव-पेंचों के अनुरूप निर्णय ले लेता है।

प्रशासनिक मानव प्रतिमान में तीन प्रकार के प्रयास किये जाते हैं–

(i) किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए अनुक्रमात्मक ध्यान से विकल्पात्मक समाधान की ओर जाते हुए यह प्रयास किया जाता है कि कोई कामचलाऊ काम मिल जाये।

(ii) स्वतः शोध करके सीखने के तरीके के माध्यम से भी निर्णय लिए जा सकते हैं। जो मुख्यतः वैज्ञानिक नियम न होकर इन्हें रणनीतियों का सरलीकरण या अंगूठा नियम कह सकते हैं। पूर्व के निर्णय इसमें सहायता करते हैं।

(iii) सन्तोष जनक हल या विकल्प की प्राप्ति ही इस प्रकार के निर्णयों का मुख्य उद्देश्य होता है अर्थात् सर्वोत्तम विकल्प तक पहुँचने का प्रयास ही नहीं किया जाता है।

इस प्रतिमान में निर्णयन के आठ चरण होते हैं–

(1) लक्ष्य निर्धारण करना, या समस्या को परिभाषित करना।

(2) अभिलाषा का उपर्युक्त स्तर निर्धारित करना।

(3) एक एकल आशाजनक विकल्प की सूत्र समस्या क्षेत्र अन्वेषण विधि का उपयोग करना।

(4) यदि कोई व्यावहारिक विकल्प न मिल सके तो–

(i) अभिलाषा के स्तर को नीचे की ओर ले जाना।

(ii) एक नये वैकल्पिक समाधान की खोज करना।

(5) व्यावहारिक विकल्प की खोज के पश्चात इसकी स्वीकार्यता निश्चित करने के लिए मूल्यांकन करना।

(6) यदि चयनित विषय स्वीकार योग्य नहीं है तो नये विकल्प को खोजना।

(7) यदि खोजा गया विकल्प स्वीकार योग्य है तो समाधान को क्रियान्वित करना।

(8) इस निर्णय के क्रियान्वयन के आधार पर भविष्य में इससे मिलती-जुलती समस्याओं का समाधान या अभिलाषा के स्तर को उच्च या निम्न करने का आधार बनाना।

प्रशासनिक निर्णयन में साइमन के योगदान के अतिरिक्त अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत प्रतिमान भी उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं जिसका विवरण इस प्रकार है–

1. लिण्डब्लोम या वृद्धिपरक प्रतिमान–लिण्डब्लोम का मानना है कि प्रशासन में निर्णयन कई व्यावहारिक समस्याओं से घिरा हुआ है। अतः समग्र तार्किकता की बात का व्यर्थ है। इसलिए प्रशासन में निर्णयकर्त्ता प्रवर्तित कार्यक्रमों तथा नीतियों में कुछ जोड़कर या थोड़ा संशोधन करके नये निर्णय लेते रहते हैं। संगठन में पूर्व में लिए गये निर्णय तथा परम्परायें सन्दर्भ का कार्य करते हैं तथा यही भविष्य के मार्ग का आधार भी बनते हैं। लिण्डब्लोम ने निर्णयन के क्रम में दो अवधारणाएं वर्जित करते हुए कहा है कि "वास्तविक निर्णयन में सीमान्त वृद्धि परकवाद तथा सम्पूर्ण सहयोगात्मक साझा एकीकरण की अवधारणाएं महत्त्वपूर्ण साबित होती हैं अर्थात संगठन के निर्णय में या तो थोड़ी नई बात जोड़ दी जाती है या फिर सभी सम्बद्ध पथ मिलकर उत्साहपूर्वक साझा मुद्दे तय कर लेते हैं।

2. एटिजियोनी का मिश्रित स्केनिंग प्रतिमान–ए० एटिजियोनी ने साइमन के समस्त तार्किकता मॉडल तथा लिण्डब्लोम के वृद्धिपरक प्रतमान के मध्य एक नया प्रतिमान प्रस्तुत किया है। यद्यपि एटिजियोनी भी लिण्डब्लोम की भाँति साइमन के सम्पूर्ण विवेकशीलता प्रतिमान का समर्थन नहीं करते हैं तथापि वे लिण्डब्लोम के प्रतिमान का भी यह कहकर विरोध करते हैं कि इसमें सामाजिक विचारों को हतोत्साहित किया जाता है तथा यह प्रतिमान मूलभूत निर्णयों के लिए उपर्युक्त नहीं है। अतः एटिजियोनी का सुझाव है कि निर्णयन हेतु मिश्रित स्केनिंग प्रितमान अपनाए जाय जिसमें तार्किकता व्यावहारिकता, मूल्य-तथ्य तथा परिस्थितियों का भी स्थान हो।

3. डोर का इष्टतम सिद्धान्त–डोर के अनुसार उसका प्रतिमान निर्णयन के सभी आदर्शात्मक प्रतिमानों में श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें आर्थिक विवेकशीलता के साथ-साथ अतिरिक्त तार्किकता भी सम्मिलित है। वस्तुतः डोस्का यह प्रतिमान नीति निर्माण का तार्किक तथा इष्टतम प्रतिमान है। इसमें गुणात्मक पक्ष पर बल दिया गया है मात्रात्मक पर नहीं। इसमें विवेकशीलता तथा अतिरिक्त विवेकशीलता का समावेश है। यह मूलभूत विवेकशीलता से आर्थिक विवेकशीलता की ओर केन्द्रित है यह प्रतिमान तीन प्रमुख चरणो तथा Meta policy making, policy making तथा past policy making का वर्णन करता है।

9.18 निर्णयन के प्रकार

निर्णय निम्न प्रकार के होते हैं–

1. कार्यक्रमिक एवं अकार्यक्रमिक निर्णय–हरवर्ट साइमन ने सभी प्रकार के निर्णयों को दो श्रेणी यथा कार्यक्रमिक तथा अकार्यक्रमिक निर्णयों में विभक्त किया है। इनके अनुसार कार्यक्रममिक निर्णय दिन-प्रतिदिन के निर्णयों से सम्बन्धित होते हैं तथा जिनकी एक प्रक्रिया पहले से निश्चित की हुई होती है प्रशासनिक संगठनों में कार्मिकों का वेतन देना, अवकाश स्वीकृत करना तथा रिपोर्ट भेजना इत्यादि कार्यक्रमिक निर्णय है। जबकि अकार्यक्रमिक निर्णय वे होते हैं जो किसी परिस्थिति विशेष के कारण एक नई समस्या के रूप में सामने आते हैं तथा जिनका पूर्वानुमान नहीं रहता है। इसके लिए अधिक सृजनात्मकता धैर्य तथा विश्लेषण क्षमता की आवश्यकता होती है। संगठन के नये कार्य तथा योजना इसी श्रेणी में सम्मिलित है।

2. व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक निर्णय:–चेस्टर वर्नार्ड ने निर्णयों को व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक श्रेणी में विभक्त किया है। उनके अनुसार व्यक्तिगत निर्णय वे होते हैं जो व्यक्ति किसी अपनी व्यक्तिगत स्थिति में लेता है तथा इन निर्णयों में किसी का हस्तक्षेप नहीं रहता है। संगठनात्मक निर्णय वे है जो अधिकारी द्वारा अपनी पद स्थिति के कारण लिये जाते हैं तथा निर्णयों के अधिकार का प्रत्यायोजन भी किया जा सकता है।

3. नियोजित एवं अनियोजित निर्णय–आर० ए० फिलियन्स ने निर्णयों को नियोजित तथा अनियोजित रूप में बाँटा है। फिलियन्स की दृष्टि में नियोजित निर्णय वे हैं जो तथ्यों पर आधारित होते हैं तथा इनमें प्रायः वैज्ञानिक रीति का प्रयोग किया जाता है जब कि अनियोजित निर्णय अवसर आने पर लिये जाते हैं।

4. नीति प्रशासनिक तथा कार्यकारी निर्णय–अर्नेस्ट डेल के अनुसार प्रशासन में तीन प्रकार के निर्णय होते हैं। संगठन के उच्चतर स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय, वित्तीय व्यवस्था विपणन संरचना तथा सामान्य उद्देश्य से सम्बन्धित निर्णय नीतिगत निर्णय होते हैं। शासन सचिवालय या लोक उपक्रमों तथा निजी उद्यमों में संचालन मण्डल या प्रबन्ध मण्डल इसी प्रकार के निर्णय लेते हैं। संगठन के मध्य स्तर पर प्रशासनिक निर्णय लिये जाते हैं जो नीति सम्बन्धी निर्णयों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु आवश्यक हैं जब कि कार्य को मूर्त रूप देने के लिए निम्न स्तर पर लिये जाने वाले निर्णय कार्यकारी निर्णय कहलाते हैं।

5. एकाकी एवं सामूहिक निर्णय–प्रशासन में एक व्यक्ति तथा अधिकारी द्वारा लिया गया निर्णय एकाकी निर्णय कहलाता है जब कि एकाधिक व्यक्तियों या समूह द्वारा लिए गये निर्णय सामूहिक निर्णय कहलाते हैं। मैक्फार लैण्ड की मान्यता है कि समूह द्वारा लिये गये निर्णय एक व्यक्ति द्वारा लिये गये निर्णय से बेहतर होते हैं।

6. सामान्य एवं विशिष्ट निर्णय–पीटर एण्ड ड्रकर के अनुसार संगठन में दो प्रकार के निर्णय लिये जाते हैं। सामान्य निर्णय व विशिष्ट निर्णय–सामान्य निर्णयों की प्रकृति व्यापक तथा दैनन्दिन प्रकृति की होती है जब कि विशिष्ट निर्णय सीमित, तात्कालिक तथा गंभीर मंथन की प्रकृति से जुड़े हुए माने जाते हैं। निर्णयों का यह विभाजन साइमन के कार्यक्रमिक तथा अकार्यक्रमिक निर्णयों से मिलता जुलता है।

संगठन में विभिन्न स्तरों पर अनेक प्रकार के निर्णय लिये जाते हैं। ये निर्णय लेने की प्रक्रिया भी संगठन के दूसरे कार्यों की भाँति स्वचालित नहीं होती। निर्णय लेने की प्रक्रिया पर अनेक बाहरी और आन्तरिक प्रभाव ऐसे पड़ते हैं जो संगठन से सम्बन्धित हो भी सकते हैं और नहीं भी, निर्णयकर्त्ता के सामने कई विकल्प रहते हैं जिनमें से उसे चयन करना होता है। ऐसा करते समय उसकी आशायें, अनुभूतियाँ और भावनाएँ अपना-अपना प्रभाव डालती हैं। संगठन में अनेक प्रशासकीय, मानवीय, संगठनात्मक आदि समस्यायें उत्पन्न होती हैं। जिनके पीछे कारणों की एक लम्बी श्रृंखला रहती है। इन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ते समय नेता को जिस प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है। वह अस्पष्ट

जटिल तथा लम्बी प्रक्रिया होती है। किसी एक क्षण में लिया गया निर्णय संगठन के भाग्य का महत्त्वपूर्ण मोड़ बन जाता है। वह उसकी सफलता एवं असफलता का केन्द्रबिन्दु हो जाता है। कई बार नेता यह जानने में भी असमर्थ होता है कि उसका निर्णय किसके द्वारा प्रभावित हुआ। निर्णय लेने की प्रक्रिया की जटिलता व दुरूहता को हम व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों द्वारा आँक सकते हैं। जीवन के ऐसे अवसर प्रायः हर व्यक्ति के सम्मुख आते हैं जबकि वह यह सोचने में असमर्थ होता है कि एक विशेष निर्णय उसने क्यों किया? व्यक्ति अपनी इच्छा के विपरीत निर्णय लेने के लिए भी परिस्थितियों एवं व्यक्तियों द्वारा मजबूर किया जाता है। व्यक्तिगत जीवन की भाँति संगठन के जीवन में भी निर्णय लेने की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कई बार हमें ऐसा लगता है कि निर्णय संगठन के अध्यक्ष द्वारा लिये जा रहे हैं परन्तु वास्तविकता इससे भिन्न होती है और अध्यक्ष के स्थान पर निर्णय उनका सहयोगी ले रहा होता है। प्रत्येक निर्णय चाहे वह कितना ही सोच समझकर लिया गया हो उससे कुछ व्यक्तियों को प्रसन्नता होती है और अन्य को चिन्ता। कुछ व्यक्ति उसे अच्छा मानते हैं जब कि दूसरे लोग उसे आलोचना का विषय बनाते हैं।

9.19 अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषा

अभिप्रेरणा का अंग्रेजी रूपान्तर Motivation है। अंग्रेजी के इस शब्द की उत्पत्ति मोटिव (Motive) से हुई है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है "व्यक्ति में किसी ऐसी इच्छा अथवा शक्ति का विभाजन होना है जो उसे कार्य करने की प्रेरणा देती है।"

"अभिप्रेरणा एक विधि है जिसमें प्रेरणाओं, इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं, प्रयत्नों या आवश्यकताओं द्वारा मानवीय व्यवहार का निर्देशन, नियन्त्रण तथा स्पष्टीकरण किया जाता है।" *–मैकफारकैण्ड*

"अभिप्रेरणा ऐसी कोई विशेष आन्तरिक कारक या स्थिति है जो क्रिया को आरम्भ करने तथा बनाये रखने की ओर प्रवृत्त करती है।" *–'गिलफोर्ड'*

"अभिप्रेरणा प्रबन्ध का हृदय है।" *–'रेन्सिस लिकर्ट'*

9.20 अभिप्रेरणा की विशेषता एवं महत्त्व

अभिप्रेरणा की निम्न विशेषताएँ हैं–

1. अभिप्रेरणा एक सतत् प्रक्रिया है, जो निरन्तर व्यक्ति के अन्दर जारी रहती है। संगठनों में भी अभिप्रेरणा, प्रक्रिया को निर्बाध गति से सक्रिय रखा जाता है।
2. यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है चाहे व्यक्ति की आवश्यकताएं शारीरिक ही क्यों न हो, अभिप्रेरणा प्रक्रिया प्रत्यक्षतः मन तथा व्यवहार से जुड़ी रहती है।
3. यह प्रक्रिया मानव की आवश्यकताओं अथवा कमियों की पूर्ति के लिए प्रारम्भ होती है तथा एक आवश्यकता की पूर्ति या एक लक्ष्य की प्राप्ति पर समाप्त हो जाती है।
4. अभिप्रेरणा प्रक्रिया में बहुत सी प्रेरणाएं जैसे वेतन पुरस्कार, प्रशंसा, प्रताड़ना तथा हानि की आशंका इत्यादि निर्णायक भूमिका निभाती हैं।
5. अभिप्रेरणा का सीधा सम्बन्ध मानव सन्तुष्टि से है। एक इच्छा की संतुष्टि के पश्चात दूसरी इच्छा जागृति हो जाती है बहुधा कई इच्छाएँ या आवश्यकताएं साथ-साथ चलती हैं।
6. प्रत्येक व्यक्तियों में कार्य करने की क्षमता तथा इच्छाशक्ति दोनों होती है फिर भी वह

कार्य नहीं कर पाता है अभिप्रेरणा क्षमता एवं इच्छा के बीच पुल का कार्य करते हुए पुल का निर्माण करती है।

7. अभिप्रेरणा प्रक्रिया मनोबल को प्रभावित करती है क्योंकि मनोबल अपने आप में कार्य करने की क्षमता इच्छा शक्ति का आन्तरिक बल का पर्याय है अर्थात अभिप्रेरणा मनोबल को बढ़ा सकती है।

8. अभिप्रेरणा कार्य निष्पादन, कुशलता तथा उत्पादकता सहित कार्यों की संतुष्टि को भी प्रभावित करती है।

अभिप्रेरण के महत्त्व–किसी भी संगठन में कार्य, अभिप्रेरणा का अपना महत्त्व है। इसके द्वारा निम्नांकित उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है–

1. कर्मचारियों की कार्यशक्ति में अधिकतम वृद्धि करना है जिससे सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति सरलता से की जा सके।
2. कार्मिकों का मनोबल तथा उसकी संतुष्टि का स्तर उच्च उठाना।
3. संगठन कार्य तथा कार्मिकों के मध्य सामंजस्य स्थापित करना।
4. कार्मिकी की आर्थिक, सामाजिक मनोवैज्ञानिक, शारीरिक तथा मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
5. संगठन में उपलब्ध मशीनी, वित्तीय तकनीकी, कच्ची सामग्री तथा मानवीय संसाधनों का सदुपयोग करना।
6. नियोक्ता कार्मिक सम्बन्धों तथा श्रम पूँजी सम्बन्धों में सुधार करना।

9.21 अभिप्रेरणा के प्रकार तथा सिद्धान्त

अभिप्रेरणा का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

1. सकारात्मक और नकारात्मक अभिप्रेरणा–सकारात्मक अभिप्रेरणा से आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा लाभ, पारिश्रमिक, आनन्द, संतुष्टि की आशा कार्मिकों को रहती है। यह अभिप्रेरणा वित्तीय या गैरवित्तीय दोनों प्रकार की होती है जैसे–नकद, पारिश्रमिक, पदोन्नति पुरस्कार, कार्य सुरक्षा, सेवा शर्तें एवं सुविधाओं में सुधार। नकारात्मक अभिप्रेरणा वह होती है जिससे भय या नकारात्मक वातावरण से कार्मिकों को प्रभावित किया जाता है। जैसे वेतन भत्तों में कमी पदावनति, निलम्बन या बर्खास्तगी, डाट-फटकार, वेतन वृद्धि में रोक आदि। नकारात्मक अभिप्रेरणा से संगठन में विद्रोह व अशान्ति का वातावरण व्यक्त हो सकता है।

2. मौद्रिक एवं अमौद्रिक अभिप्रेरणा–मुद्रा अर्थात विनिमय का एक सशकत साधन जो लेन-देन में काम आता है। जब कोई अभिप्रेरणा मुद्रा के रूप में दी जाती है तो वह मौद्रिक अभिप्रेरणा कहलाती है। जैसे–वेतन, नकद ईनाम, लाभांश आदि।

अप्रत्यक्ष तथा अमौद्रिक अभिप्रेरणा का सम्बन्ध मुद्रा से नहीं बल्कि मानसिक सम्बल से है। इसमें कार्मिक का सम्मान, आदर, प्रशंसा, कार्य सुरक्षा, पदोन्नति, उच्च अधिकार देना, अवकाश बढ़ाना इत्यादि सम्मिलित है।

3. औपचारिक एवं अनौपचारिक अभिप्रेरणा–जब कोई अभिप्रेरणा संगठन के लिखित कानूनों, नियमों तथा प्रक्रियाओं के अन्तर्गत दी जाती है तो वह औपचारिक अभिप्रेरणा कहलाती है। जैसे–वेतन,

भत्ते, बोनस, पदोन्नति, पुरस्कार, अवकाश, बर्खास्तगी, अनुशासनात्मक कार्रवाई इत्यादि। दूसरी ओर जब बिना संगठन के कानूनों, नियमों और प्रक्रियाओं का सहारा लिए केवल व्यक्तिगत या सामूहिक सम्बन्धों के आधार पर अभिप्रेरणा दी जाती है तब उसे अनौपचारिक अभिप्रेरणा कहते हैं। जैसे कार्मिक की प्रशंसा करना, पीठ थपथपाना, आदर देना, या उपेक्षा करना आलोचना करना इत्यादि।

4. व्यक्तिगत एवं सामूहिक अभिप्रेरणा–जब किसी एक कार्मिक को अभिप्रेरणा दी जाती है तो वह व्यक्तिगत अभिप्रेरणा होती है जैसे प्रमाण पत्र, सम्मान, प्रशंसा, फटकार, परन्तु जब समूह को लक्ष्य बनाकर अभिप्रेरित करने का प्रयास किया जाता है तो वह सामूहिक अभिप्रेरणा का परिचायक होता है। जैसे–पूरे विभाग एवं इकाई को पुरस्कार देना, समूह से सुझाव माँगना या समूह को दण्डित करना।

अभिप्रेरणा के सिद्धान्त

1. अभिप्रेरणा का एकात्मक सिद्धान्त–अभिप्रेरणा का एकात्मक सिद्धान्त मनुष्य को आर्थिक मनुष्य मानता है। इस सिद्धान्त के समर्थकों की मान्यता है कि मनुष्य केवल धन, मुद्रा या पदार्थ को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं अतः कार्मिकों को जितना अधिक धन दिया जायेगा उतनी ही उनकी संतुष्टि बढ़ेगी और कार्यकुशलता पर इसका प्रभाव पड़ेगा। हेमन्तू मैसी तथा एक टेलर इसके मुख्य समर्थक हैं इसी प्रकार एकात्मक सिद्धान्त यह भी मानता है कि व्यक्ति समूह के बजाय व्यक्तिगत प्रेरणाओं से अधिक प्रभावित रहता है परन्तु यह सिद्धान्त सर्वथा उचित नहीं है। व्यक्ति मौद्रिक अभिप्रेरणा योजनाओं से अधिक कार्य करने के लिए अभिप्रेरित नहीं होता अपितु शारीरिक, सुरक्षात्मक सामाजिक, स्वाभिमान और आत्मविकास की आवश्यकताओं की पूर्ति योजनाओं से अधिक प्रभावित होती है।

2. अभिप्रेरणा के परम्परागत सिद्धान्त–इसके सिद्धान्त निम्नवत् हैं–

(i) भय एवं दण्ड सिद्धान्त–यह सिद्धान्त भय तथा प्रताड़ना पर विश्वास करता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि कार्मिकों को डरा-धमकाकर या शक्ति के बल पर काम करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

(ii) पुरस्कार सिद्धान्त–यह सिद्धान्त प्रशंसा तथा प्रोत्साहन को केन्द्र बिन्दु मानता है। यदि कार्मिकों को अच्छे कार्य के लिए उचित पुरस्कार सम्मान तथा अच्छी कार्यदशाएं दी जायेगी तो वे अधिक अच्छा कार्य करेंगे। टेलर की मान्यता थी कि श्रमिकों को उचित धन देने से अधिक उत्पादन करते हैं।

(iii) गाजर एवं छड़ी सिद्धान्त–यह सिद्धान्त पुरस्कार एवं भय-दण्ड सिद्धान्तों को व्यक्ति के कार्य के साथ जोड़ता है। अच्छा कार्य करने पर गाजर अर्थात् प्रोत्साहन तथा कम कार्य करने पर छड़ी अर्थात दण्ड दिया जाता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह सिद्धान्त उस समय तक ही कार्य करता है जब तक कि व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताएँ नहीं पूरी हो जाती। जैसे ही जीवन निर्वाह की आवश्यकताएं पूरी हुई। सम्मान प्रेम, सुरक्षा तथा आत्मसिद्धि की अन्य आवश्यकता बढ़ जाती है तब वह सिद्धान्त कारगर नहीं रहता।

(iv) मानव सम्बन्ध सिद्धान्त–यह सिद्धान्त एल्टन मेयो द्वारा होर्थान स्थान पर किये प्रयोगों से विकसित हुआ। एल्टन मेयो तथा उसके साथियों ने सफलतापूर्वक यह सिद्ध कर दिखाया था कि मनुष्य केवल आर्थिक कारकों से प्रेरित नहीं होता बल्कि संगठन में अनौपचारिक सम्बन्ध तथा आर्थिक क्रियायें भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। अभिप्रेरणा का यह मानव सम्बन्ध सिद्धान्त इसी बात पर बल देता है कि मौद्रिक अभिप्रेरणाओं के साथ अन्य अमौद्रिक अभिप्रेरणाएँ भी कार्मिकों को दी जानी चाहिए। संगठन में अच्छे मानव सम्बन्धों को विकसित किया जा सकता है।

3. अभिप्रेरणा का आधुनिक सिद्दान्त–इसको मूल रूप से निम्न भागों में बाँट सकते हैं–

1. मैस्लो का आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त–इस सिद्धान्त के मुख्य समर्थक अब्राहम मैस्लो हैं। जिन्होंने आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। 1943 में मैस्लो ने अपने लेख ``A Dynamic Theory of Human Motivation" के द्वारा यह सिद्ध किया है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त हैं, अतः उन्हें एक साथ संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। संगठन तथा व्यक्ति का रिश्ता, व्यक्ति की आवश्यकताओं के स्वरूप एवं पूर्ति पर निर्भर करता है। इसको निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है।



मैस्लो की आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त

मैस्लो ने बताया कि सर्वप्रथम मनुष्य की शारीरिक या दैहिक आवश्यकताएँ जैसे भूख, प्यास, काम-वासना, तत्पश्चात सुरक्षा आवश्यकताएं जैसे–प्राकृतिक विपत्तिआयँ, खतरे, अभाव, आपराधिक गतिविधियों में सुरक्षा इत्यादि हैं। तीसरे चरण में सामाजिक आवश्यकताएँ आती हैं। हर व्यक्ति प्रेम, सौहार्द, सहयोग, मित्रता चाहता है इसके पश्चात व्यक्ति स्वाभिमान की आवश्यकताएँ जैसे सफलता, सम्मान, प्रतिष्ठा, पहचान, मान्यता तथा सत्ता की कामना करता है। पाँचवे एवं शीर्ष शिखर पर वह चरमोत्कर्ष एवं सिद्धि की आवश्यकता अर्थात आगे बढ़ने की इच्छा, सफलता के साथ कार्य में निपुणता तथा स्वयं की एक विशिष्ट पहचान चाहता है। इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति या सन्तुष्टि ही अभिप्रेरणा प्रदान कर सकती है।

2. एल्डोल्फर क्लेटन का ई0 आर0 जी0 सिद्धान्त–एल्डोल्फर क्लेटन ने अपने विस्तारित आवश्यकता प्राथमिकता सिद्धान्त प्रस्तावित करके मैस्लो के सिद्धान्त की पुनः अभिव्यक्ति की है। E.R.G. का अर्थ है Existance (अस्तित्व) सम्बद्धता (Relatedness) तथा विकास आवश्यकताएं (Growth needs)। क्लेटन के अनुसार एक से अधिक स्तरों पर आवश्यकताएं किसी भी समय विशेष रूप से सक्रिय रहती है तथा आधार से प्राथमिकता पर उच्च स्तर तक उसके उर्ध्ववार तथा अधोगमी अधिशीलन होता जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी उच्च स्तरित आवश्यकताओं को सन्तुष्ट न कर पाने के कारण परेशान सा रहता है, तो वह उससे निचले स्तर की आवश्यकताओं की ओर वापस आयेगा तथा उसको पूरा करने ही सन्तोष की साँस लेगा।

3. अभिप्रेरणा का द्विघटक या स्वास्थ्य सिद्धान्त–अभिप्रेरणा का यह सिद्धान्त फ्रेडरिक हर्ष वर्ग द्वारा प्रतिपादित किया गया जिसमें यह बताया गया है कि संगठन में दो प्रकार के घटक कार्मिकों की संतुष्टि या असंतुष्टि को प्रभावित करते हैं। आरोग्य घटक वह है जो संगठन के वातावरण से सम्बन्धित है। आरोग्य घटक स्वयं कर्मचारियों को अधिक कार्य के लिए प्रेरित नहीं करते। बल्कि घटकों की अनुपस्थिति कार्मिकों में असन्तुष्टि पैदा करती है। आरोग्य घटकों में कम्पनी या संगठन की नीति एवं प्रशासन, वेतन, अन्तरवैयक्तिक सम्बन्ध तथा कार्य दशायें भी सम्मिलित हैं।

आरोग्य घटक	अभिप्रेरक घटक
1. कम्पनी की नीति एवं प्रशासन	1. उपलब्धि
2. पर्यवेक्षण	2. मान्यता
3. वेतन	3. स्वयं कार्य
4. अन्तरवैयक्तिक सम्बन्ध	4. उत्तरदायित्व
5. कार्यदशाएँ	5. प्रगति

दूसरे घटक अभिप्रेरक घटक कहलाते हैं जो कार्मिकों में कार्य संतुष्टि के वास्तविक कारक हैं। यही घटक कार्मिकों में कार्यकुशलता तथा अभिप्रेरणा को प्रोत्साहित करते हैं तथा अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। अभिप्रेरक घटकों में उपलब्धि मान्यता स्वयं कार्य उत्तरदायित्व तथा प्रगति सम्मिलित है। हर्ज वर्ग का यह सिद्धान्त मैस्लो के सिद्धान्त का सुधरा रूप है। आरोग्य शब्द चिकित्सा एवं स्वास्थ्य से लिया गया है जिसका अर्थ है "स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले पर्यावरण तथा स्वयं को स्वच्छ रखना ताकि रोगों से बचाव हो जिस प्रकार दैनिक स्नान, साफ-सफाई हमें रोगों से बचाते हैं, रोगों को ठीक नहीं कर सकती, उसी प्रकार हर्ष वर्ग के आरोग्य तत्व अभिप्रेरणा प्रदान करते बल्कि असंतुष्टि रोकते हैं।

4. एक्स-वाई सिद्धान्त–डगलस मैकग्रेगर ने मानवीय अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में परम्परागत एक्स (x) विचारधारा तथा आधुनिक (y) वाई विचारधारा की विवेचना की है। मैस्लो के आवश्यकता–प्राथमिकता का समर्थन करते हुए संगठन में कर्मचारियों की अभिप्रेरणाओं को बढ़ाने के लिए विकेन्द्रीकरण तथा अधिकार सौंपनें, कार्य विस्तार भागीदारी तथा परामर्शात्मक प्रबन्ध प्रगति मूल्यांकन आदि प्रणालियों का सुझाव दिया है। मैकग्रेगर की x विचारधारा की मान्यता है कि औसत कर्मचारी आलसी होते हैं कार्य से मन चुराते हैं उनमें कार्य करने की इच्छा नहीं होती। वे उत्तरदायित्वों को टाल देना चाहते हैं इसलिए किसी उपक्रम के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों पर आवश्यक दबाव एवं नियन्त्रण रखना पड़ता है। परन्तु कर्मचारी की प्रकृति के सम्बन्ध में x विचारधारा की मान्यताएँ ठीक नहीं है और इन मान्यताओं के आधार पर कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए आरम्भ की गयी प्रत्येक योजना सफल नहीं हो सकती।

वाई विचारधारा (y Theory) मानवीय व्यवहार का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करती है। इस विचारधारा की मान्यता है कि जिस प्रकार व्यक्ति के लिए आराम करना या खेलना स्वाभाविक है ठीक उसी प्रकार कार्य करना भी स्वाभाविक है। औसत कर्मचारी उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने की कला सीख सकते हैं। व्यक्ति स्वतः अपने से अधिक अनुभवी व्यक्ति से निर्देशन प्राप्त कर सकते हैं एवं यदि उन्हें ठीक ढंग से अभिप्रेरित किया जाय तो ये महान सृजनशील कार्य कर सकते हैं।

जैसा कि स्पष्ट है कि x सिद्धान्त अपने आप में अपूर्णता तथा संकीर्णता का परिचायक है क्योंकि यह मानवीय व्यवहार को नकारात्मक अवधारणा से विश्लेषित करता है। अतः मैकग्रेगर ने y सिद्धान्त प्रस्तुत किया। मैकग्रेगर के वाई सिद्धान्त को परिवर्तन के लिये खुला निमन्त्रण कहा है। मैकग्रेगर ने फ्रेडरिक लिसायर के साथ स्केनलाज योजना पर कार्य किया था। जो मूलतः वाई सिद्धान्त पर आधारित प्रबन्ध का दर्शन था। जिसकी मूल मान्यताएं प्रभावी सहभागिता तथा खोई हुई कमी को पुनः बाँटना था। इस योजना के शोध परिणाम यह स्पष्ट करते हैं कि चतुराई और समझदारी के साथ प्रयोग में लायी गयी सहभागिता प्रबन्ध को नये आयाम दे सकती है, बशर्ते कि एकीकरण तथा आत्म नियन्त्रण को मान्यता दी जाये।

5. पथ लक्ष्य सिद्धान्त–यह सिद्धान्त गोरगोपेलस मेहान तथा जोन्स द्वारा विकसित किया गया है। इसकी मुख्य मान्यता यह है कि विशिष्ट तथा कठिन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्मिक उच्च स्तरीय कार्य निष्पादन का परिचय देते हैं अर्थात् जब व्यक्ति को यह पता हो कि इच्छित लक्ष्य और कठोर परिश्रम से ही प्राप्त हो सकता है तो व्यक्ति अधिक परिश्रम करता है। उत्पादकता में वृद्धि से सम्बन्धित यह सिद्धान्त व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार की अभिप्रेरणाओं पर बल देता है।

6. प्रत्याशा सिद्धान्त–विक्टर एच0 ब्रूम द्वारा 1964 में विकसित यह सिद्धान्त मुख्यतः व्यक्ति की अपेक्षाओं तथा प्रयासों के मध्य सहसम्बन्ध बताता है। ब्रूम के अनुसार एक कार्मिक उच्चस्तरीय प्रयास तभी करता है जब उसे यह आशा रहे कि उसकी कार्य निष्पत्ति का समुचित आंकलन किया जायेगा तथा अच्छा कार्य निष्पादन किसी प्रकार का लाभ या पुरस्कार प्रदान करेगा। ब्रूम ने कार्मिक की कार्य करने की इच्छा एवं शक्ति को Valance नाम दिया। (इसका शब्दकोषीय अर्थ अणु की उस शक्ति से है जो दूसरों के साथ संयुक्त होती है। यह शक्ति कार्य में तभी लगायी जा सकती है जब कि परिणामों के प्रति आशंका न हो।) ब्रूम ने तीन सम्बन्ध वर्णित किये हैं–

(i) प्रयास तभी उच्च स्तरीय होंगे जब कि व्यक्ति निष्पादन के प्रति आश्वस्त हो।

(ii) प्रयासों की मात्रा इस पर भी निर्भर करती है कि निष्पादन तथा पुरस्कार में समुचित सम्बन्ध बनेगा अर्थात निष्पादन से लाभ होगा।

(iii) संगठन द्वारा मिलने वाले पुरस्कार या दिये जाने वाले पुरस्कार कार्मिक के व्यक्तिगत लक्ष्यों या कार्मिक की क्षमता का सही आंकलन कर उसे संतुष्ट कर पायेंगे।

कार्मिक यह सोचता रहता है कि मैं उच्चतम प्रयास करूँगा तो वे कार्य निष्पादन मूल्यांकन में सम्मिलित होंगे, अच्छे प्रयास, संगठनात्मक पुरस्कार देंगे तथा पुरस्कार मुझे आकर्षित एवं संतुष्ट कर पायेंगे। इसी पूर्वाशा से कार्मिक अभिप्रेरित होता है। ब्रूम के अनुसार–

अभिप्रेरणात्मक बल = Σ शक्ति × प्रत्याशा

Σ सेमशन का यह चिन्ह योग को दर्शाता है अर्थात कार्मिकों की कुल शक्ति तथा प्रत्याशा के गुणन का योग अभिप्रेरणात्मक बल के बराबर होगा।

7. समानता का सिद्धान्त–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जे स्टासी एडम्स द्वारा किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक कार्मिक समान परिस्थितियों में अपने प्रयासों तथा पुरस्कारों की तुलना दूसरे के प्रयासों तथा पुरस्कारों से करता है यदि असमानता हो तो कार्मिक असंतुष्टि अनुभव करते हैं। असमानता के भाव के कारण व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है यह तनाव कार्मिक को अधिक या कम काम करने को प्रेरित करता है ताकि दूसरे के साथ उसके प्रयासों एवं पुरस्कारों में संतुलन स्थापित हो जाय। व्यक्ति अपने कार्य में हुए निवेश तथा निष्पति का दूसरों के निवेश या निष्पत्ति से तुलना कर स्वयं अपने कार्य का निर्धारण कर लेता है।

असमानता

कार्मिक कि निष्पति/कार्मिक का निवेश < दूसरों की निष्पति/दूसरों का निवेश

कार्मिक की निष्पति/कार्मिक की निवेश > दूसरों की निष्पति/दूसरों का निवेश

समानता

कार्मिक की निष्पत्ति/कार्मिक का निवेश = दूसरों की निष्पत्ति/दूसरों का निवेश

8. तीन आवश्यकता सिद्धान्त–तीन आवश्यश्यकताओं का सिद्धान्त डेविड मैक्कलीलैण्ड द्वारा प्रतिपादित किया गया है इसके अनुसार व्यक्ति की तीन आवश्यकता होती है जिन्हें वह पूरा करता है।

1. **उपलब्धि आवश्यकता**–सफलता तथा निर्धारित मापदण्डों की प्राप्ति।

2. **शक्ति आवश्यकता**–दूसरों पर प्रभुत्व तथा अधिकार जताने की इच्छा।

3. **सम्बद्धता आवश्यकता**–मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध तथा अपनत्व की आवश्यकता।

सभी व्यक्तियों में यह सभी आवश्यकताएं एक समान विद्यमान नहीं रहती है। बल्कि कुछ लोग उपलब्धि को अधिक महत्त्व देते हैं तो कुछ शान्ति को। व्यक्ति की जो आवश्यकता पूरी हो जाती है उसी से संतुष्ट हो जाता है।

किसी भी संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति तथा संगठनात्मक प्रभावशीलता के स्तर को उच्च बनाने के साथ-साथ कार्मिकों की संतुष्टि एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि कार्मिकों को संगठनात्मक लक्ष्यों की ओर प्रेरित किया जाय। यही प्रेरित करने की प्रक्रिया अभिप्रेरणा कहलाती है। अभिप्रेरणा एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जो कार्य क्षमता एवं इच्छा के मध्य पुल का कार्य करती है। अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों में विगत एक दो दशक में नई विचारधारा का जन्म होता रहा है। अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों को ही संगठन का सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपागम कहा जाता है क्योंकि आज भी कुछ मूलभूत प्रश्न यथावत हैं जैसे–लोग संगठनों में कार्य क्यों करते हैं? कौन-सी स्थितियाँ है जिनसे कार्य निष्पादन तथा कार्मिक संतुष्टि में वृद्धि होती है। मानव व्यवहार तथा उसके संगठन सम्बन्धों को पूरी तरह से समझना ही आधुनिक प्रबन्धकीय चिन्तन है।

कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रबन्धकों को चाहिए कि वे विकेन्द्रीकरण, कार्य विस्तार, भागीदारी तथा परामर्शात्मक प्रबन्ध प्रणालियों का प्रयोग करें और कर्मचारियों को स्वयं अपना कार्य तय करने तथा अपने दायित्व का मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित करें। प्रबन्धक एक शिक्षक परामर्शदाता तथा सहयोगी तो होता है अधीक्षक नहीं।

9.22 मनोबल की परिभाषा एवं विशेषताएँ

प्रशासन में कार्यकुशलता हेतु जो तत्व सहायक होते हैं उनमें लोक अधिकारियों में मनोबल महत्त्वपूर्ण पूर्ण तत्त्व है। मनोबल अर्थात 'मनका बल' व्यक्ति की तथा आत्मविश्वास का पर्याय है। मनोबल का शब्दकोषीय अर्थ है किसी विशिष्ठ समय में व्यक्ति या समूह द्वारा प्रदर्शित आत्मविश्वास, उत्साह तथा दृष्टा इत्यादि की भावना।

"मनोबल कुछ मनोवैज्ञानिक गुणों का योग है जिसमें साहस, पौरुष, निश्चय तथा विश्वास इत्यादि एकीकृत है।" *–मूने।*

"व्यक्तियों एवं समूह का उनके संगठन के श्रेष्ठतम हित में क्षमतानुरूप स्वैच्छिक योगदान एवं उनके कार्य के पर्यावरण के प्रति अभिवृत्तियाँ मनोबल की प्रतीक हैं।" *–कीथ डेविस*

मनोबल की विशेषताएँ–इसकी विशेषताएं निम्नवत हैं–

1. मनोबल में एक व्यापक दृष्टिकोण की झलक देखने को मिलती है। यह प्रशासन के अपने कार्य के वातावरण सहयोगियो, संस्था के उद्देश्यों और अपने कर्त्तव्य के प्रति व्यापक दृष्टिकोण की झलक होती है।

2 मनोबल का तात्पर्य उसी समय स्पष्ट होता है जब इसका प्रयोग किसी विशेष सन्दर्भ में उच्च या निम्न मनोबल के लिए किया जाता है।

3. यह एक व्यक्ति विशेष के उत्साह तथा टीम भावना के रूप में सामूहिक दृष्टिकोण को भी अपनाता है।

4. यह एक मानसिक दशा है जिस पर अनेक तत्वों का प्रभाव पड़ता है इसमें भूत के प्रति सन्तोष, वर्तमान का उत्साह और भविष्य की आशा की झलक मिलती है।

9.23 मनोबल का तत्व एवं महत्त्व

मनोबल के अंग या तत्त्वों को स्पष्ट करते हुए लेटन एवं सिलिन्डर ने यह व्याख्या प्रस्तुत की है।

1. नोबल क्या है?–मनोबल मानव मस्तिष्क की एक अभिवृत्ति है, कार्य की प्रवृत्ति है, अच्छाई की एक स्थिति तथा एक भावनात्मक दबाव है।

2. मनोबल क्या करता है? – मनोबल उत्पादन, लागत, सेवा निष्पादन, सहयोग, उत्साह, अनुशासन, कार्यकुशलता तथा सफलता सम्बन्धी तत्वों को दिशा प्रदान करता है।

3. मनोबल उपलब्ध कहाँ रहता है?–यह व्यक्ति या सहयोगियों के मानसिक चिन्तन भावनाओं तथा सामूहिक प्रतिक्रियाओं में विश्वास करता है।

4. मनोबल किसको प्रभावित करता है?–मनोबल कार्य के प्रति अभिरुचि, संगठन के सर्वोत्तम हित में सहयोग तथा व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से सहयोग इत्यादि को प्रभावित करता है।

मनोबल का महत्त्व–व्यक्ति तथा संगठन दोनों के जीवन में मनोबल की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। मनोबल कार्मिकों की आशावादी, उत्साही, प्रभावशाली अनुशासित तथा साहसी बनाता है। मनोबल से कार्मिक अपना कार्य अधिक रुचि तथा निपुणता से निष्पादित करता है। कार्मिक का उच्च मनोबल उसकी प्रतिबद्धता संगठन के उद्देश्यों के प्रति विश्वास तथा संतुष्टि का परिचायक है जब कि निम्न मनोबल निराश असंतुष्टि का उत्साह हीनता का द्योतक है। मनोबल का स्तर उत्पादन, कार्य निष्पादन, संगठन की छवि, अनुशासन तथा प्रभावशीलता को स्पष्टतः प्रभावित करती है किसी संगठन में यदि कार्मिकों का मनोबल निम्न स्तरीय बना हुआ है तो कार्य कुशलता के लिए अन्य सभी प्रयास व्यर्थ जायेंगे यदि मनोबल के वृद्धि के व्यावहारिक प्रयास न किये जाय।

9.24 अभिप्रेरणा और मनोबल तथा इसे प्रभावित करने वाले कारक

मनोबल को कभी-कभी अभिप्रेरणा तथा अभिवृत्ति समझा जाता है। अभिप्रेरण मुख्यतः उस आन्तरिक प्रेरणा को कहा जाता है जो किसी व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। इसे कल्पित परिणाम के लिए भी लागू किया जाता है जिसकी अभिलाषा व्यक्ति को प्रेषित करती है। मनोबल का सम्बन्ध संगठन के कर्मचारियों की अभिप्रेरणाओं तथा अभिवृत्तियों की समग्रता से होता है। मनोबल प्रायः सामूहिक है परन्तु अभिप्रेरणा पूर्णतया व्यक्तिगत है। अभिप्रेरणा, कार्य करने की इच्छा तथा कार्य करने की शक्ति के बीच पुल का कार्य करता है जब कि मनोबल तो स्वयं कार्य करने की इच्छा एवं शक्ति का पर्याय है।

मनोबल को प्रभावित करने वाले कारक

किसी भी संगठन में कार्यरत कार्मिकों का मनोबल किसी एक कारण या कारक से नहीं बल्कि अनेक कारणों से प्रभावित होता है–

1. निम्नस्तरीय कार्य–यदि किसी योग्य, कुशल, वरिष्ठ तथा अनुभवी कर्मचारी को उसकी प्रतिष्ठा तथा क्षमता से निम्न स्तर का कार्य दिया जायेगा तो उसका मनोबल गिर जाता है। ठीक इसके विपरीत कार्मिक को उसकी क्षमता से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य मिलने पर वह अधिक अभिप्रेरित एवं मनोबल से

युक्त अनुभव करेगा।

2. कार्यबोझ–प्रायः कर्मशील व्यक्ति के पास कार्यभार अधिक होते हुए भी प्रबन्धकों को यह विश्वास रहता है कि वह व्यक्ति अतिरिक्त कार्य को भी निबटा देगा। बहुत से कार्मिक जब निरन्तर कार्यबोझ से ग्रस्त रहते हैं तो उनका मनोबल टूटने लगता है। क्योंकि बिना प्रेरणा अतिरिक्त कार्य सम्पादन बहुत दिनों तक नहीं हो सकता है।

3. वकमास्टर सिप–यह पार्किन्सन द्वारा प्रतिपादित नियम है। जिसका अर्थ यह है कि जब उच्चाधिकारी या नेता कठिन कार्यों से बचना चाहते हैं तो उन्हें अधीनस्थों के कन्धे पर डाल देते हैं साथ-साथ कमियाँ मिलने पर अधीनस्थों को डाँटा जाता है इससे उनका मनोबल गिरता है।

4. कठोर नियन्त्रण–परस्पर सम्बन्धों (चाहे घर हो या आफिस) से मधुरता तथा स्थायित्व के लिए "विश्वास से बढ़कर कोई अन्य सहारा नहीं" है। यद्यपि संगठन में नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण आवश्यक है परन्तु अत्यधिक पर्यवेक्षक तथा कठोर नियन्त्रण कार्मिकों के कार्य में रुचि को कम करता है।

5. नेतृत्व का चरित्र–नेता संगठन का मुखिया ही नहीं होता बल्कि वह अधीनस्थों का आदर्श मार्गदर्शक तथा संरक्षक भी होता है। जिस संगठन में नेतृत्व का चारित्रिक मानसिक तथा तकनीकी पक्ष दुर्बल होता है उस संगठन में कार्मिकों का मनोबल गिर जाता है।

संगठन में मनोबल को प्रभावित करने वाले कारक बहुत से हैं। जैसे–वेतन, भत्ते, संचार समन्वय व्यवस्था संगठन के लक्ष्य कार्य तथा प्रक्रियायें कार्य संतुष्टि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवेश इत्यादि।

सरकार एक मानवीय संस्था है और इसे केवल औपचारिक प्रबन्ध एवं सिद्धान्तों के आधार पर संचालित नहीं किया जा सकता वरन् इसके लिए मानवीय दृष्टिकोण, उत्साह एवं स्वामिभक्ति की आवश्यकता होती है और प्रशासकीय कार्य मूल रूप से एक मानवीय कार्य है और इसलिए इससे सम्बन्धित सभी समस्यायें मानवीय मनोदशा एवं बौद्धिक चेतना की समस्यायें हैं। दूसरे शब्दों में प्रशासन का स्वरूप उसके कर्मचारियों एवं अधिकारियों के मनोबल तथा भावनात्मक सन्तोष के आधार पर निर्धारित होता है जिस संगठन के पदाधिकारियों को अपने कार्य से सन्तोष है वे अपेक्षाकृत संगठन को अपना अधिक योगदान दे पाते हैं। इस प्रकार जिस कर्मचारी के कार्य का उचित मूल्यांकन किया जाता है तथा उसके व्यवहार की उचित प्रशंसा की जाती है वह कई बार आशातीत रूप में अपनी योग्यताओं के संगठन को लाभान्वित करता है। एक मानवीय क्रिया होने के कारण प्रशासकीय संगठन की सफलता कुल मिलाकर उसके सेवीवर्ग के सन्तोष, दुख, असन्तोष, ग्लानि, प्रशंसा तथा ऐसे ही अन्य अनेक भावों तथा प्रवृत्तियों द्वारा निश्चित की जाती है। जिस देश के लोग सेवक अपने कार्य में पूरा उत्साह दिखाते हैं और देश भक्तिपूर्ण भावनाओं से अभिप्रेरित रहते हैं। उस देश का प्रशासन निश्चित रूप से प्रभावशाली रूप में संचालित होता है। ब्रिटिश नागरिक सेवा के सम्बन्ध में जो प्रशंसात्मक वाक्य लिखे गये हैं, उन सबके पीछे सेवी वर्ग का उच्च मनोबल ही कार्य कर रहा था। यदि किसी संगठन में योग्य व्यक्तियों को भर्ती किया जाये, प्रशिक्षण द्वारा उनकी क्षमताओं को निखार दिया जाये, साथ ही सेवी वर्ग के साथ उचित व्यवहार किया जाये तो उस संगठन के असफल होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

9.25 सच्चरित्रता का अर्थ एवं परिभाषा

सचरित्रता अंग्रेजी शब्द `Integrity' का हिन्दी रूपान्तर है। इस शब्द को नैतिक सिद्धान्तों की दृढ़ता, निर्दोष चरित्र, स्पष्ट, ईमानदारी एवं निष्कपटता के पर्यायवाची शब्द के रूप में जाना जाता है। "किसी व्यक्ति के पद स्थिति या स्त्रोतों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक हित के लिए प्रयोग करना

हीं सच्चरित्रता है।"

9.26 प्रशासन में सच्चरित्रता के पतन के कारण

भारतीय प्रशासन में व्याप्त रिश्वत एवं भ्रष्टाचार के व्यापक प्रसार में निम्न कारणों ने योग दिया है।

1. भूतकालिक कारण–इसके दो कारण हैं।

(अ) युद्ध कालीन अभाव तथा नियन्त्रण–द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व यह भ्रष्टाचार मात्र निम्न श्रेणी के अधिकारी विशेषकर राजस्व एकत्रित करने वाले जैसे आयकर, कस्टम, रेलवे, वन-विभाग, आदि तक ही सीमित था। उच्च श्रेणी के अधिकारी इससे वंचित थे परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात इस स्थिति में परिवर्तन आया। विशाल युद्ध प्रयत्नों ने जिनके फलस्वरूप करोड़ों रुपया विभिन्न प्रकार की युद्धकालीन वस्तुओं और अनुबन्धों पर खर्च हो रहा था, अनुचित तरीकों और साधनों से धन एकत्र करने के लिए मार्ग खोल दिये। इसके अतिरिक्त युद्ध कालीन अभाव एवं नियन्त्रणों ने भी रिश्वत, भ्रष्टाचार के रास्ते खोले थे क्योंकि इस समय सरकार के समक्ष एकमात्र लक्ष्य यह था कि युद्ध में सफलता कैसे प्राप्त हो?

(आ) युद्धोत्तर मुद्रा स्फीति–युद्ध कालीन नियन्त्रणों एवं अभावों ने सच्चरित्रता के लिए आवश्यक उपयुक्त वातावरण को युद्धोत्तर कालीन धन की वृद्धि और इसके फलस्वरूप उत्पन्न मुद्रा स्फीति ने विषाक्त कर दिया।

2. स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की समस्यायें एवं वातावरण–स्वतन्त्र भारत ने जो प्रशासनिक व्यवस्था विरासत में पायी थी वह कमजोर हो चुकी थी। इसके मुख्य रूप से दो कारण थे–प्रथम युद्धकालीन उपेक्षा और द्वितीय स्वतन्त्रता के पश्चात् अक्समात् ही ब्रिटिश एवं मुस्लिम अधिकारियों की कमी। जिसके परिणामस्वरूप योग्यता को बिना ध्यान किये हुए एक बड़ी संख्या में अयोग्य व्यक्तियों की पदोन्नति की गयी।

3. विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में मूल्यों में संघर्ष–प्राचीन काल में सादा जीवन उच्च विचार के नैतिक आदर्श ने सामाजिक नियन्त्रण एवं सामाजिक पर्यावरण को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया था। परन्तु विकसित समाज में जिसमें शहरीकरण और औद्योगीकरण पर बल दिया जाता हो, प्राचीन सामाजिक एवं वैयक्तिक मूल्यों का क्रमशः ह्रास हो रहा है। वे दिन-प्रतिदिन कमजोर होते जा रहे हैं। इधर उनका स्थान नवीन मूल्य नहीं ले रहे हैं। मूल्यों के ऐसे ही संघर्ष में सच्चरित्रता का पतन हो रहा है।

4. घोर निर्धनता–घोर निर्धनता एवं अत्यधिक समृद्धि के सह अस्तित्व ने जनता से सच्चरित्रता को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया है। उच्च वेतनों के फलस्वरूप आरामदायक जीवन व्यतीत करना सम्भव होता है। उच्च वेतनभोगी कर्मचारियों के जीवन स्तर को देखकर दूसरे भी उसी की कामना करते हैं प्रत्येक अधीनस्थ अपने वरिष्ठ अधिकारी का अनुसरण करता है यदि उसका वेतन कम होता है तो वह अनुचित साधनों से आमदनी करता है, जिससे व्यक्ति की नैतिकता का ह्रास होता है।

इसके अतिरिक्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध तीव्र जनमत का अभाव, आर्थिक आवश्यकता, शासन की संरचना या प्रणाली प्रभावोत्पादकता, शासकीय कार्यालयों की जटिल पद्धति तथा भारत में लोक सेवकों को प्राप्त संरक्षण के कारण भी प्रशासन में सच्चरित्रता का ह्रास हो रहा है

9.27 प्रशासन में सच्चरित्रता बनाए रखने के उपाय

प्रशासन में सच्चरित्रता बनाए रखने के निम्न उपाय हैं–

1. स्वविवेकी निर्णयों के क्षेत्र में प्रतिक्रिया–वर्तमान नियमों को कार्यान्वित करके, प्रक्रिया के संशोधित नियमों का निर्माण करके, आचरण के आदर्श स्थापित करके और परम्पराओं तथा रूढ़ियों की स्थापना द्वारा स्वविवेकी निर्णयों को सीमित किया जा सकता है।

2. मन्त्रणा निकायों तथा सम्मेलनों का अधिकाधिक प्रयोग–इस व्यवस्था के फलस्वरूप निर्णय पर पहुँचने के पूर्व विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार विमर्श किया जाता है। प्रशासन द्वारा गैरसरकारी लोगों के सम्बन्ध में जो निर्णय दिये जाते हैं उस सन्दर्भ में इससे सहायता मिलेगी।

3. बाह्य दबावों से रक्षा–प्रजातन्त्र में अधिकारी पर राजनीतिक दलों, श्रमिक संघों तथा अन्य अर्द्धसरकारी या गैर सरकारी संगठनों के दबाव की सम्भावना सदैव रहती है, कभी-कभी तो सरकार को जनता के दबाव के फलस्वरूप नीति बदलनी पड़ती है एवं अधिकारी को अपने कार्य का औचित्य सिद्ध करने के लिए जवाब भी देना पड़ता है।

4. जवाबदारी–किसी भी अधिकारी में नैतिकता बनाए रखने के लिए सबसे बड़ा कठिन तरीका यह है कि उसे प्रत्यक्षतः अपने वरिष्ठ अधिकारी के प्रति और अप्रत्यक्ष मंत्री द्वारा संसद के प्रति अपने आचरण के औचित्य के लिए उत्तरदायी होना चाहिए।

5. हितों के टकराव की धारा–प्रशासकीय अधिकारियों पर न्यायिक सिद्धान्त लागू होना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति किसी भी मामले में जज नहीं होगा और न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए बल्कि स्पष्टतः तथा असंदिग्ध लोगों को यह ज्ञात भी होना चाहिए कि वस्तुतः न्याय किया गया।

6. भर्ती तथा प्रशिक्षण–लोक सेवकों में से भ्रष्टाचार को उखाड़ फेंकने में भर्ती तथा प्रशिक्षण की श्रेष्ठ प्रणाली योगदान दे सकती है। हमारी सरकार ने मध्य तथा शीर्ष स्तर के अधिकारियों की उन्नति के लिए बड़े पैमाने पर प्रशिक्षण कार्यक्रम पहले से ही स्थापित कर दिया है। इसको और मजबूत बनाकर नौतिकता को सुरक्षित रखा जा सकता है।

आज सम्पूर्ण भारतीय प्रशासन में यह एक विवाद का विषय बन चुका है कि भ्रष्टाचार को समाप्त करके नैतिकता अथवा सच्चरित्रता को कैसे स्थापित किया जाय? चूँकि भ्रष्टाचार को पूर्णतः नष्ट करना बड़ा ही कठिन कार्य है फिर भी हमारी सरकार इस समस्या के विषय में जागरूक है और इस बुराई को जड़ से फेंकने के लिए दृढ़संकल्प है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि भ्रष्टाचार का हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत नैतिक मूल्यों और परम्पराओं तथा पर्यावरण सम्बन्धी प्रभावों से गहरा सम्बन्ध है। इन सभी तत्त्वों में विधि आदि द्वारा परिवर्तन नहीं किये जा सकते। वस्तुतः हमारे नैतिक आदर्शों, मूल्यों तथा स्तरों के विषय में विद्यमान भ्रम तथा चिन्तन इसका परिणाम है हम एक ऐसे संक्रान्ति काल से गुजर रहे हैं, जिसमें पुराने परम्परागत देहाती समाज के स्थान पर नवीन शहरी, औद्योगिक, वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी समाज की स्थापना हो रही है। एक बार परिवर्तन का यह कार्य पूरा हो जायेगा और समाज में स्थायित्व आ जायेगा तभी अधिकारियों में सच्चरित्रता का विकास सम्भव है सच्चरित्रता लाने का दूसरा उपाय यह हो सकता है कि लोकमत इस प्रकार सजग, संगठित तथा जागरूक रहे कि वे अपने अधिकारियों के प्रति सजग रहने के साथ-साथ कर्त्तव्यों के प्रति भी सावधान रहे। यह एक लम्बा सफर है और इसमें काफी समय लगेगा।

9.28 प्रबन्ध का अर्थ, परिभाषा, एवं प्रकृति

प्रबन्ध शब्द को आधुनिक प्रशासनिक संगठन जगत में अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। संकीर्ण अर्थ में प्रबन्ध दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराने की युक्ति है और वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्तियों से

कार्य कराता है 'प्रबन्धक' कहलाता है। विस्तृत अर्थ में प्रबन्ध कला तथा विज्ञान दोनों है और यह निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न मानवीय प्रयासों से सम्बन्ध रखता है। प्रबन्ध तो निश्चित कार्यों को मिलाकर बनी एक प्रक्रिया को कहते हैं, जो लोग इन कार्यों को सम्पन्न करते हैं प्रबन्धक कहलाते हैं।

प्रबन्ध की परिभाषा–"प्रबन्ध, किसी वांछित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए औपचारिक समूहों में व्यवस्थित व्यक्तियों के कार्यों को सुविधाजनक बनाने तथा निर्देशित करने की प्रक्रिया है।" –*'मिलेट'*

"प्रबन्ध वह कार्य कलाप है जो संगठनात्मक के अन्तर्गत किये जाते हैं।" –*'मीयर'*

"प्रबन्ध, पूर्व निर्धारित उद्देश्य को दूसरे व्यक्ति के यत्नों से प्राप्त करना है।" –*'टेरी'*

प्रबन्ध की प्रकृति–इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(क) प्रबन्ध की प्रक्रिया की सार्वजनिक सार्वभौमिकता–इसका अर्थ है कि प्रबन्ध के मूलभूत कार्य एक प्रकार के विशेष कौशल होते हैं? और प्रबन्धक उनका पालन करता है, चाहे उद्यम का स्वरूप मुख्य क्रिया-कलाप या वह स्तर जिस पर प्रबन्धक कार्य करता है कुछ भी क्यों न हो। इस विचार के अनुसार प्रबन्ध एक तकनीक है जिसका अध्ययन सम्भव है और इसके प्रयोग का प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है। इस कुशलता का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को स्थानान्तरण भी किया जा सकता है। सामान्यवादी प्रशासन की सम्पूर्ण अवधारणा इसी पर आधारित है। इस अर्थ में प्रबन्ध को निश्चय ही विज्ञान कहा जा सकता है।

(ख) समूह कार्य के रूप में प्रबन्ध–प्रबन्ध से अर्थ केवल प्रबन्ध की क्रियाओं से नहीं, वह प्रबन्धक एवं उसके कार्यों से भी कुछ अधिक होता है। वस्तुतः यह समूह द्वारा किया गया सामूहिक प्रयास है। प्रबन्ध की प्रक्रिया संगठन के किसी विशेष स्तर तक ही सीमित नहीं होती है। यह प्रक्रिया सत्ता तथा उत्तरदायित्व के बहुत से लेकिन विभिन्न पद सोपानों के स्तरों पर सम्पूर्ण संगठन के प्रयत्नों में विद्यमान होती है। फेयोल के शब्दों में "प्रबन्ध किसी व्यापार के वरिष्ठ सदस्यों या प्रावधान का अनन्य विशेषाधिकार या विशेष उत्तरदायित्व नहीं होता है यह तो निगम निकाय के प्रधान तथा सदस्यों के बीच अन्य सभी क्रियाओं की भाँति फैली हुई है।"

(ग) वृत्ति (पेशे) के रूप में प्रबन्ध–वृत्ति या व्यवसाय की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है–"यह एक आजीविका है जिसमें कोई व्यक्ति विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेता है और जिसका प्रयोग शिक्षा देने, मार्ग दर्शन करने या दूसरों को मन्त्रणा देने में करता है। वर्तमान प्रबंधक वर्ग इन बातों को पूर्ण करता है फिर भी उसका पूर्ण वृत्तिकरण वर्णन नहीं हो सकता है। कर्मचारी वर्ग में, प्रवर्तन में व्यक्तियों की अपेक्षा वृत्तिकरण की अधिक सम्भावना रहती है किसी तीसरे पक्ष द्वारा अधिस्वीकृति के अर्थ में प्रबन्ध वृत्ति नहीं बन सकता। जैसे वकालत करने की स्वीकृति प्रदान करना या औषधि व्यवसाय के लिए लाइसेंस प्रदान करना। फिर भी वृत्तिकरण के अपने लाभ हैं। इससे प्रबन्ध को उनके कृत्यों में वृत्ति सम्बन्धी सन्तोष तो होता ही है वे प्रबन्ध कार्यों को सहज ही स्वीकार करते हैं। हेरोल्ड अमरिने एवं हटले ने कहा है कि "यद्यपि प्रबन्ध के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति हो रही है फिर भी यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रबन्ध पूर्णतः एक पेशा नहीं है।"

9.29 प्रबन्ध के कार्य तथा साधन

यदि प्रबन्ध एक प्रक्रिया है तो इसको बहुत से कृत्यों में विभाजित किया जा सकता है। गुलिक ने इसका सारांश स्वरचित शब्द (POSD CORB) द्वारा किया है। यह कुछ शब्दों के प्रथम अक्षरों को लेकर बनाया गया है।

P = Planning (योजना बनाना)

O = Organizing (संगठन बनाना)

S = Staffing (कर्मचारी रखना)

D = Directing (निर्देशन)

Co = Co-ordinating (समन्वय करना)

R = Reporting (प्रतिवेदन करना)

B = Budgeting (बजट बनाना)

टेरी के अनुसार प्रबन्ध के चार मूलभूत कार्य हैं, योजना बनाना, संगठन करना, क्रियाशील करना तथा नियन्त्रण करना। फेयोल के अनुसार योजना बनाना, संगठन करना, समन्वय करना, तथा नियन्त्रण रखना आदि इस प्रक्रिया में सम्मिलित है। सेकलर हडसन का दृष्टिकोण इससे अधिक व्यापक है। वे इस प्रक्रिया में नीति निर्धारण, सत्ता को सुरक्षित करना, उसकी स्थिति निश्चित करना तथा उसका उपयोग करना, योजना, संगठन बनाना, कर्मचारियों की व्यवस्था परिचालन करना, प्रतिवेदन देना, नेतृत्व संचालन तथा नियन्त्रण करना आदि को सम्मिलित करते हैं।

मिलेट ने प्रबन्ध की "मौलिक या विलक्षण समस्याओं में तथा तकनीकी समस्याओं" में भेद किया है। सरकार के प्रत्येक अभिकरण की मौलिक समस्यायें विचित्र होती है और वह जैसी सेवा सम्पत्र करता है उसी की प्रकृति से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार शिक्षा तथा पुलिस विभाग के प्रबन्ध में काफी अन्तर देखा जाता है, दूसरी तरफ तकनीकी समस्यायें सभी बड़े-बड़े संगठनों में एक सी होती हैं उनमें तिहरे कार्य अन्तर्निहित होते हैं। कार्य संचालन, कार्य प्रवर्तन तथा आन्तरिक सेवाएँ। कार्य संचालन में नेतृत्व, योजना, संचार, पर्यवेक्षण तथा लोक सम्बन्धों की समस्यायें निहित हैं। कार्य प्रवर्तन की सामान्य समस्यायें संगठन सेवी वर्ग, बजट तथा कानूनी सेवा सम्बन्धी है। आन्तरिक सेवाओं में भौतिक कारखाने, गोदाम अभिलेख इत्यादि का प्रबन्ध जैसे गृहपालक का कार्य सम्मिलित है।

संक्षेप में प्रबन्ध के अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों में नेतृत्व, नीति निर्धारण, निर्णय देना, योजना बनाना, समन्वय संचार, प्रत्यायोजन, पर्यवेक्षण, तथा लोक सम्बन्ध आते हैं।

वस्तुतः प्रबन्ध की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के मध्य कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती है और न इन कार्यों को विशेष क्रम में सम्पत्र किया जाता है। इन सभी या इनमें से कुछ कार्यों का पालन साथ-साथ भी सम्भव है। व्यवहार में सभी कार्य एक दूसरे से गुथे हुए हैं।

प्रबन्ध के साधन–प्रबन्ध अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के निम्न साधनों का प्रयोग करता है–

1. पूँजी
2. कच्चा माल
3. मानव शक्ति
4. मशीन
5. पद्धतियाँ।

9.30 अच्छे प्रबन्ध की कसौटियाँ

सुप्रबन्ध सम्बन्धी कोई सर्वस्वीकृति कसौटी प्रस्तुत करना सरल कार्य नहीं है। जो मापदण्ड कार्य

पालन के गुणों के लिए अपनाये गये हैं वे समय, स्थान, समुदाय के अनुसार अनियमितः बदलते रहते है। यह बात बहुत कुछ फिर भी स्वीकार कर ली गयी है कि प्रभावशाली कार्यपालन अच्छे प्रशासन की कसौटी है। बहुत से लोग इस प्रभावशीलता को उद्देश्यों की प्राप्ति के सीमा के आधार पर रखने के आदी होते हैं। वे मुख्यतः परिणामों में रुचि रखते हैं, परन्तु परिणाम तो मनुष्यों, द्रव्य तथा सामग्री को प्रचुर मात्रा में व्यय करके तथा गलत तरीकों और अन्यायपूर्ण साधनों के प्रयोग द्वारा भी प्राप्त किये जा सकते हैं। अतः साधनों की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है हरबर्ट साइमन के कथनानुसार प्रशासन में विवेकी व्यवहार प्रधानतः उन साधनों का उल्लेख मात्र है जिनसे एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति की पूर्ण आशा की जा सकती है।

लूथर गुलिक दक्षता को प्रशासन में एक मात्र अन्तिम मूल्य मानते हैं। इसी प्रकार वाल्डी दक्षता तथा व्यवस्था को प्रशासन के युगल संकेत मानते हैं। दक्षतः शब्द के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के गुण जैसे कार्य की शीघ्रता, व्यय में मितव्ययता, उचित प्रक्रिया, साधनों का अधिकतम उपयोग आदि आते हैं, दक्षता के तीन पहलू बताए गये हैं। मौलिक दक्षता, जो उत्पादित तथा प्रयुक्त भौतिक मात्राओं के सम्बन्ध को प्रकट करती है। व्यापारिक दक्षता जो मनुष्यों के रूप में किये गये व्यय तथा प्राप्त मान सन्तोष के सम्बन्धों को प्रकट करती है, दक्षता का इस संगठन के भीतर कार्यरत व्यक्तियों में व्यक्तिगत सम्बन्धों की स्थिति। वस्तुतः कोई भी प्रशासकीय अभिकरण तब तक अपने को अच्छा सिद्ध नहीं कर सकता जब तक कि संगठन के कर्मचारियों में सामंजस्यतः आपसी समझौता नहीं होता।

इन कसौटियों में मिलेट तीन मूल्य और देते हैं। संतोषजनक सेवा, उत्तरदायी कार्यसंचालन तथा अच्छी सरकार, संतोषप्रद सेवा का अर्थ है उचित तथा न्यायपूर्ण सेवा अर्थात प्रशासन की ओर से सभी नागरिकों के प्रति उचित व्यवहार होना चाहिए। सेवा समय पर पर्याप्त मात्रा में तथा निरन्तर सेवा प्रदान की जानी चाहिए अर्थात संगठन के कार्यों में उत्तमता तथा कार्य संचालन में निरन्तर वृद्धि होती जाती हो।

लोक सेवा के उत्तरदायी कार्य संचालन का यही अर्थ है कि प्रबन्ध उनके द्वारा संस्थागत तरीकों के माध्यम तथा सहयोग से प्रशासकीय प्रयत्नों का नेतृत्व करता है। जो लोकतान्त्रिक समाज की इच्छा को अभिव्यक्त करने के लिए विद्यमान है। कोई स्वेच्छाचारी या अनुउत्तरदायी प्रशासन आधुनिक समय में शायद ही इन शर्तों को पूरा करता है और यही कारण है कि आज प्रशासन को प्रजातन्त्रीय तथा उत्तरदायी बनाने की आवश्यकता है न कि अनुउत्तरदायी और नौकरशाही प्रधान।

अच्छी सरकार से मिलेट का अभिप्राय है संवैधानिक अथवा सीमित सरकार। ऐसी सरकार व्यक्ति के गौरव में विश्वास रखती है तथा ऐसी परिस्थितियाँ स्थापित करती है जो आधुनिक समाज के जटिल कार्य के लिए कई सामाजिक नियम एकत्र रखे।

अमेरिकन मैनेजमेन्ट एसोसिएशन ने उत्तम प्रबन्ध के दस नियम निर्धारित किए हैं।

1. प्रत्येक कार्यकारी के लिए निश्चित एवं सुस्पष्ट उत्तरदायित्व निर्धारित किये जायँ।
2. उत्तरदायित्व के साथ सदैव सदृश अधिकार भी प्रदान किए जायें।
3. समस्त सम्बद्ध व्यक्तियों की ओर से तदर्थ निश्चित समझौते के बिना किसी स्थान के कार्यक्षेत्र अथवा उत्तरदायित्वों में कोई परिवर्तन न किये जायँ।
4. संगठन में एकल स्थान पाने वाले किसी भी कार्यकारी अथवा एक से अधिक स्रोत से निश्चित आदेश न दिये जायँ।
5. अधीनस्थों को कभी भी एक जिम्मेदार कार्यकारी की उपेक्षा करके आदेश नहीं दिये जायँ। ऐसा करने के स्थान पर चतुराई से सम्बद्ध अधिकारी का स्थान ले लिया जाय।

6. जब भी सम्भव हो अधीनस्थों की आलोचना अकेले में की जाय और किसी भी हालत में किसी अधिनस्थ की आलोचना कार्यकारी की अथवा समान या निम्नपद वाले कर्मचारियों की उपस्थिति में न की जाय।

7. कार्यकारियों अथवा कर्मचारियों के मध्य किसी भी विवाद अथवा मतभेद को तुच्छ न समझा जाय और उस पर तुरन्त तथा सावधानीपूर्वक निर्णय लिया जाय।

8. प्रोन्नतियों वेतन में परिवर्तनों में तथा अनुशासनात्मक कार्यवाहियों का सदैव उस अधिकारी से अनुमोदन करा लिया जाय जो सीधे उत्तरदायी अधिकारी से सीधे वरिष्ठ हो।

9. किसी भी कार्यकारी अथवा कर्मचारी से कभी भी यह अपेक्षा न की जा कि वह एक ही समय में किसी अन्य का सहायक और आलोचक दोनों हो।

10. किसी भी कार्यकारी को जिसके कार्य का नियमित निरीक्षण होता है, जब भी व्यावहारिक हो आवश्यक सहायता एवं सुविधाएं प्रदान की जायँ। जिससे वह अपने कार्य की गुणवत्ता को स्वतन्त्र रूप से जाँच करता रहे।

9.31 सारांश

प्रबन्ध किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक सहकारी प्रयत्न है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक संगठन चाहे वह सार्वजनिक हो अथवा निजी सरकारी हो अथवा वाणिज्यिक, जिसको कोई विशेष उद्देश्य प्राप्त करना है का सुव्यवस्थित प्रबन्ध होना चाहिए। आधुनिक कल्याणकारी राज्य में सरकार अधिकतम संख्या के अधिकतम कल्याण के लिए बहुत से कार्य अपने हाथ में लेती है जिसके परिणामस्वरूप इसका प्रबन्धकीय क्षेत्र लगातार बढ़ रहा है। प्रशासन की सफलता अधिकाशतयः इस बात पर निर्भर है कि जनकल्याण के कार्यों का प्रबन्ध सरकार किस निपुणता से करती है। प्रबन्ध कोई ऐसा विषय नहीं है जैसे कि एक बटन को दबाना, एक लीवर को खींचना, आज्ञाएँ प्रसारित करना, लाभ-हानि के तथ्यों की छान-बीन करना या नियमों और परिनियमों को लागू करना। किन्तु प्रबन्ध तो एक ऐसी शक्ति है जो इस बात का निर्णय करती है कि व्यक्तियों के लिए क्या किया जायेगा और समस्त कार्यों की प्रसन्ना के लिए क्या किया जायेगा। यह वह शक्ति है जो राष्ट्र के भाग्य की रचना करती है तथा उन सभी देशों के भाग्य की रचना करती है जो इस संसार के भाग हैं। मि० डिमॉक ने अपनी काव्यात्मक एवं मनोरंजक भाषा में स्पष्ट कर दिया है कि जब तक शीर्ष के प्रबन्ध को योग्य एवं कुशल व्यक्तियों को नहीं सौंपा जायेगा। तब तक किसी भी देश का प्रशासन लोगों की अधिकाधिक संख्या के अधिकाधिक सुख के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

9.32 उपयोगी पुस्तकें

1. डॉ० परमात्मा शरण एवं दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी, 'लोक प्रशासन'
2. डॉ० एम० पी० शर्मा–'लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार'
3. अवस्थी एवं माहेश्वरी 'लोक प्रशासन'
4. डॉ० अमरेश्वर अवस्थी एवं आनन्द प्रकाश अवस्थी प्रशासनिक सिद्धान्त।
5. डॉ० सुरेन्द्र कटारिया एवं सुधा कटारिया 'प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध'
6. पी० डी० शर्मा 'लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार'

9.33 सम्बन्धित प्रश्न

(a) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संचार की परिभाषा बताइये। इसके सामने कौन कौन सी बाधाएँ हैं? उल्लेख कीजिए।
2. नेतृत्व क्या है? इसके प्रकार बताइये।
3. मनोबल क्या है? विशेषता बताइये एवं इसको प्रभावित करने वाले कारकों पर प्रकाश डालिए।
4. प्रशासन में सच्चरित्रता के पतन के कारणों एवं इसको बनाए रखने के उपाय बताइये।

(b) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जन सम्पर्क क्या है? इसके साधन बताइये।
2. निर्णयन का क्या अर्थ है? इसकी प्रमुख समस्यायें बताइये।
3. अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में डगलस मैकग्रेगर के x तथा y सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।
4. अच्छे प्रबन्ध की कसौटियों का उल्लेख कीजिए?

(c) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. चेस्टर बर्नार्ड के अनुसार नेता का गुण है।
   - A. दूसरे पर शासन करना
   - B. समन्वय करना
   - C. पूर्वानुमान लगाना
   - D. कार्य के साधनों पर नियन्त्रण।
2. प्रो० मार्च के अनुसार निर्णयन की समस्या है–
   - A. वह पहले किसे निपटाये
   - B. मूल्यांकन की समस्या
   - C. कार्य प्रगति की समस्या
   - D. इनमें से कोई नहीं।
3. अभिप्रेरणा प्रबन्ध का हृदय है। इसको परिभाषित किया है–
   - A. मैकफार लैण्ड
   - B. टैरी
   - C. रीन्सस लिकर्ट
   - D. मार्च
4. पोस्ट कार्ब शब्द को स्वरचित किया है–
   - A. फेयोल
   - B. लूथर गुलिक

C. सेकलर हडसन

D. पैरो

9.34 प्रश्नोत्तर

1. D.
2. A.
3. C.
4. B.

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

MAPS-104
लोक प्रशासन

खण्ड

4

विकास प्रशासन

इकाई 10
विकास प्रशासन अर्थ, स्वरूप और क्षेत्र 5

इकाई 11
विकास अधिकारी तन्त्र 23

इकाई 12
विकास प्रशासन में मुद्दे 38

परामर्श समिति

प्रो. केदार नाथ सिंह यादव, कुलपति	अध्यक्ष
डॉ. हरीश चन्द्र जायसवाल, वरिष्ठ परामर्शदाता	कार्यक्रम संयोजक
प्रो. के. पी. सिंह, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
डॉ. अर्जुन तिवारी, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
प्रो. ए.एन. द्विवेदी, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
डॉ. रत्नाकर शुक्ला, कुलसचिव	सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. आर.के. मणि त्रिपाठी — विषय विशेषज्ञ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

प्रो. एल.डी. ठाकुर — विषय विशेषज्ञ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
राजनीतिशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

प्रो. एस.एम. सईद — विषय विशेषज्ञ
राजनीतिशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. मंजूलिका श्रीवास्तव — दूरस्थ शिक्षा विशेषज्ञ
रीडर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. एस. के. द्विवेदी — सम्पादक
राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

PGPS-05 :– लोक प्रशासन

लेखक मण्डल

खण्ड एकः **प्रो. ए .एन दूबे**, राजनीति शास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी 3 इकाई

खण्ड दोः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड तीनः **डॉ. आर.के. जायसवाल**, रीडर, राजनीति शास्त्र वि., के.एस. साकेत महावि.,फैजाबाद 3 इकाई

खण्ड चारः **डॉ. मनूका खन्ना**, रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड पाँचः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई
डॉ. वी.के. राय, रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, इला. विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुति अनुमन्य नहीं है।

दूरस्थ शिक्षा परिषद, नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित।

MAPS-104/154

खण्ड - 4 का परिचय : विकास प्रशासन

द्वितीय विश्वयुद्ध ने सम्पूर्ण विश्व की राजनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। युद्ध की समाप्ति के बाद साम्राज्यवादी ताकतों का एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के देशों पर स्वामित्व समाप्त हो गया। इसके परिणामस्वरूप नए देशों का जन्म हुआ। नवोदित देशों के समक्ष असंख्य आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याएं थीं। एक और परिवर्तन यहाँ आया- जनता की सरकार में भागीदारी प्रारम्भ हुई। साम्राज्यवादी ताकतों ने जनता को अपने आधीन रखा था तथा सरकार और प्रशासन में उनकी भागीदारी नहीं थी। इन देशों में लोगों ने पहली बार अपना सहयोग देने का अवसर पाया। शासक की प्रजा होने से नागरिक का स्थान पाने तक का सफर तय करने के बाद यहाँ के लोगों ने सरकार के साथ मिलकर राष्ट्र-निर्माण करना प्रारम्भ किया।

राष्ट्र-निर्माण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सभी देश प्रयत्नरत थे। बीसवीं शताब्दी में 'वैज्ञानिक-प्रबन्ध' पर विशेष बल दिया गया तथा सोवियत-संघ के अनुभवों के आधार पर यह माना गया कि नियोजन द्वारा अधिक उपलब्धि तथा सफलता प्राप्त की जा सकती है। इन विचारों के कारण यह विश्वास जागृत हुआ कि सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों को प्रशासन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, यदि प्रशासन को विकास के लक्ष्यों के अनुरूप ढाला गया हो। इस विश्वास ने 'विकास प्रशासन' की नींव धरी।

अमरीका विकास प्रशासन की विचारधारा का प्रमुख प्रचारकर्ता बना। अमरीकी विद्वानों तथा प्रशासकों ने यह सत्यापित करने का प्रयास किया कि यदि नियोजित तथा प्रशासित सामाजिक-आर्थिक बदलाव लाने का प्रयास किया जाए तो, बिना साम्यवाद का रास्ता अपनाए हुए ही, तीसरे विश्व के देश अपना विकास कर सकते हैं। इन नवोदित देशों की समस्याओं से निपटते हुए, पुराने संगठनों तथा प्रक्रियाओं को समाप्त करने के प्रयत्नों ने एक नए प्रशासनिक आयाम को जन्म दिया। इस नए आयाम को 'विकास प्रशासन' के नाम से जाना गया। राष्ट्र-निर्माण के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए साम्राज्यवादी व्यवस्था के प्रशासन को तथा उससे सम्बन्धित अधिकारी-तन्त्र को पर्याप्त नहीं पाया गया। यह माना गया कि यह संस्थाएं तथा प्रक्रियाएं केवल साम्राज्यवाद के प्रभुत्व को बनाए रखने में सक्षम थीं। यह व्यवस्थापिकाओं तथा अलग-अलग स्तरों पर जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी नहीं थीं। साथ ही, कृषि तथा उद्योग के क्षेत्र में विकास लाने में इनकी रूचि नहीं थी। वह आर्थिक तथा सामाजिक असमानताओं तथा क्षेत्रीय असन्तुलन को समाप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहती थीं। उन सरकारों का लक्ष्य केवल राजस्व संकलन, कच्चे माल का निर्यात, न्यूनतम जन सेवाओं की व्यवस्था तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित था। इन सरकारों में प्रशासनिक व्यवस्था केन्द्रीकृत थी तथा अधिकारिकी और संशय पर आधारित थी।

नए युग में प्रशासन के लक्ष्यों में प्रभावी परिवर्तन आया। अब प्रशासन न केवल नियोजित परिवर्तन पर आधारित था अपितु वह जनता की भागीदारी तथा प्रतिक्रिया को भी महत्व देता था। साम्राज्यवाद के अन्त के बाद, प्रशासन ने 'विकास के प्रबन्धन' को महत्वपूर्ण लक्ष्य माना। वह निश्चित और नियोजित संस्थागत क्षमता को विकसित करके विकास के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को उचित नीतियों, कार्यक्रमों तथा योजनाओं के द्वारा प्राप्त करने में विश्वास करने लगा। प्रबन्धन प्रक्रिया जनता का समर्थन तथा भागीदारी चाहती थी, उनकी माँगों तथा आवश्यकताओं के प्रति सचेत थी तथा अन्तिम रूप में वह जनता तथा जन-प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी थी। इन नए प्रशासनिक लक्ष्यों तथा लक्षणों के आधार पर 'विकास प्रशासन' का जन्म हुआ। कुछ ने इसे लोक प्रशासन की एक उप-शाखा माना, जबकि किसी ने उसे

एक नया विषय माना। कुछ विचारकों ने तुलनात्मक प्रशासन के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ा और यह माना कि यह तुलनात्मक प्रशासन का व्यावहारिक पक्ष है ('अप्लाइड-साइड ऑफ कम्परेटिव एडमिनिस्ट्रेशन')।

इकाई - 10 : विकास प्रशासनः अर्थ, स्वरूप और क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 अवधारणा का विकास

10.3 विकास का अर्थ

10.4 विकास प्रशासन की परिभाषा

10.5 विकास प्रशासन के लक्षण

10.6 लोक प्रशासन तथा विकास प्रशासन

10.7 तुलनात्मक प्रशासन तथा विकास प्रशासन

10.8 विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास

10.9 विकास प्रशासन की आवश्यक शर्तें

10.10 विकास प्रशासन का क्षेत्र

10.11 विकास प्रशासन के घटक

10.12 विकास प्रशासन का महत्व

10.13 सारांश

10.14 उपयोगी पुस्तकें

10.15 सम्बन्धित प्रश्न

10.16 प्रश्नोत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- विकास प्रशासन की परिभाषा उनके लक्षण और स्वरूप तथा क्षेत्र के बारे में विवेचन कर सकेंगे,
- विकास प्रशासन की तुलना अन्य प्रशासनों से कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

विकास प्रशासन आधुनिक लोक प्रशासन का परिचायक है। यह विचारधारा बहुत पुरानी नहीं है। यह प्रमुखतः द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार की जाती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात, साम्राज्यवाद के अन्त ने लोक प्रशासन के स्वरूप को मुख्य रूप से परिवर्तित कर दिया। साम्राज्यवादी व्यवस्था में लोक प्रशासन प्रमुखतः नियन्त्रणकारी था तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने से सम्बन्धित था। किन्तु नई विश्व-व्यवस्था ने एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था का माँग की जो नागरिकों के जीवन स्तर को ऊपर उठानें के लिए

योजनाएँ एवं कार्यक्रम चला सकें।

इस युग में अनेक नई लोकतान्त्रिक सरकारें उभर कर सामने आईं। इन नए देशों में अर्थव्यवस्था तथा प्रशासनिक व्यवस्था को विकसित करने की एक प्रमुख समस्या थी। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका में नवस्वतन्त्र राज्यों में प्रशासन को सभी क्षेत्रों में विकसित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। साम्राज्यवाद के अन्त के कारण, इन देशों के लिए यह पहला अनुभव था जब प्रशासन ने जनता को बराबर का भागीदार मानते हुए, उसके साथ मिलकर कार्यों को करने का प्रयास किया। जन सहायता के लिए कार्य पहले प्रशासन के द्वारा किए जाते थे, किन्तु उस समय राज्य द्वारा प्रजा के लिए कार्य किया जाता था, न कि नागरिक के लिए। इसके कारण प्रशासन और जनता के बीच खाई बनी रहती थी। नए युग में प्रशासन नागरिकों के साथ मिलकर सरकार के लिए नहीं, अपितु राष्ट्र-निर्माण के लिए कृषि-विकास, शिक्षा प्रसार, परिवार नियोजन जैसे कार्यों का सम्पादन करने लगा।

प्रारम्भ में इन नवोदित देशों ने पाश्चात्य विकसित देशों को ही अपने विकास का मॉडल स्वीकार किया। अमरीका, जो 'प्रथम विश्व' (First World) का नेतृत्व सम्हाले था, इन देशों के विकास के लिए आर्थिक एवं तकनीकी सहायता तथा सलाह देने के लिए आगे आया। किन्तु इन देशों में विकास की गति धीमी बनी रही। 'तुलनात्मक प्रशासन दल' ने अपने अध्ययनों के माध्यम से यह पता लगाने का प्रयत्न किया कि 'तीसरे विश्व' (Third World) के विकासशील देशों में प्रशासन का कौन सा मॉडल या तकनीक विकास को और तेज बना सकती है। रिग्स आदि के अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि परिस्थितियाँ प्रशासन को प्रभावित करती हैं, तथा इन देशों में 'नियामकीय प्रशासन' के बजाय 'विकास प्रशासन' की स्थापना का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

साठ के दशक में 'तुलनात्मक प्रशासन दल' (CAG) ने 'अच्छे जीवन' (good life) के चित्रण के आधार पर अपने विचार प्रस्तुत किए। इस दशक में यह विचार तीसरे विश्व के देशों में अत्यधिक प्रचलित हुआ। इसका एक कारण यह भी था कि संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 1961 में इस दशक को 'द यूनाइटेड नेशन्स डेवेलप्मेन्ट डिकेड' घोषित किया था। इसके परिणमस्वरूप विश्व के विकसित देश, विशेषतः अमरीका, इन विकासशील देशें में राष्ट्र-निर्माण तथा आर्थिक-सामाजिक विकास के कार्यक्रम तथा योजनाएँ चलाने के लिए प्रस्तुत हुए। राष्ट्रीय विकास के लक्ष्य को पूरा करने के लिए विकास प्रशासन पूरी लोक प्रशासनिक व्यवस्था को सुधारने के लिए कार्यरत रहता है।

अमरीका ने तुलनात्मक तथा विकास प्रशासन के क्षेत्र में पूर्ण सहयोग तथा प्रोत्साहन दिया। अन्य देशों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना उसके हित में था। वह अपनी समस्याएं केवल घरेलू आधार पर (domestic basis) हल नहीं कर सकता था। उसको हल करने के लिए विश्व स्तर पर उन्हें समझना आवश्यक था। साथ ही, प्रशासन का एक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए भी आवश्यक था कि वह राष्ट्रीय स्तर से ऊपर उठ कर प्रस्तुत किया जाय। इन कारणों ने अमरीका को विकास प्रशासन के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप, यह देखा गया कि, यह सिद्धान्त विकासशील देशों से सम्बन्धित है किन्तु यह प्रमुखतः एक पश्चिमी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। (The conceptual paradigm has been distinetively Western)

10.2 अवधारणा का विकास

सर्वप्रथम 'विकास प्रशासन' शब्द का प्रयोग भारत के एक प्रशासनिक अधिकारी, यू० एल०

गोस्वामी, ने अपने लेख 'दि स्ट्रक्चर ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया' में किया गया था जो सन् 1955 में 'द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इस लेख में community division के कार्यक्रम को संचालित करने वाली प्रशासनिक व्यवस्था का विवेचन किया था।

विकास प्रशासन को अवधारणा के प्रतिपादकों में जॉर्ज एफ0 ग्राण्ट का नाम अग्रणी माना जाता है। ग्राण्ट 'टेनेसी वैली अथॉरिटी' तथा 'फॉड फॉण्डेशन' के साथ सम्बन्धित रहे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'डिवेलप्मेन्ट ऐडमिनिस्ट्रेशनः कान्सेप्ट, गोल्स, मेथर्ड्स' (Development Administration: Concepts, Goals, Methods, 1972) में इगबर्ट डी व्राएस (Egbert de Vries) के साथ इस विषय पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। अमरीकी विद्वानों एडवर्ड डब्लू0 वाईडनर, फ्रेड डबलू0 रिग्स, फैरेल हैडी, जॉन डी0 मॉण्टगोमेरी, मिलटन जे0 एसमन, लूसीयन पाई, मेरेल फेन्सोड, अरविंग स्वर्डलो, विलियम जे0 सिफिन आदि ने इस अवधारणा को विकसित करने में सहयोग किया। इस अध्ययन के क्षेत्र को 1960 के दशक के आरम्भ में तुलनात्मक प्रशासन दल (Comparative Administration Groups of the American Society for Public Administration) तथा 'द कमेटी ऑन कम्परेटिव पॉलिटिक्स ऑफ द सोशल साइन्स रिसर्च कॉउन्सिल ऑफ द यू0 एस0 ए0' (The Committee on Comparative Politics of the Social Science Research Council of the U.S.A.) ने मान्यता प्रदान की थी। इन संगठनों ने विकास का मार्क्सवादी-लेनिनवादी मॉडल अस्वीकार करते हुए तीसरे विश्व में विकास का सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। मार्क्स तथा लेनिन के विचार पर आधारित वह मॉडन मानता था कि उत्पादन की प्रक्रिया को इस प्रकार संचालित करना चाहिए कि राजनीतिक जागरूकता का विकास हो, सामाजिक भेद का अन्त हो तथा अन्त में राज्य विलुप्त हो जाए। इन विचारों को अमरीकी विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया। तुलनात्मक प्रशासन दल में अधिकतर वह विद्वान सदस्य थे जो तीसरे विश्व के देशों में तकनीकी सहायता कार्यक्रमों के दौरान वहाँ रहे थे तथा अपने अनुभवों के आधार पर वहाँ की आवश्यकताएं समझते थे। अलग-अलग सदस्यों ने अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया था किन्तु उनके विचार एक संगठित सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं कर पाए थे।

हालाँकि विकास प्रशासन की परिभाषा तथा सिद्धान्त विकसित करने का श्रेय अमरीका को प्राप्त है किन्तु भारत वर्ष में विकास प्रशासन की आवश्यकता को स्वतन्त्रता के पूर्व ही स्वीकार कर लिया गया था। 1946 में आर0 टोटेन्हैम ने अपनी रिपोर्ट में यह चिन्ता व्यक्त की थी कि: (Report on the Reorganisation of the Indian Administration) 'राज्य को अपने नियन्त्रणकारी विचार को त्यागना होगा तथा ऐसी सरकार के विचार को अपनाना होगा जो कि सामाजिक एवं आर्थिक विकास के उन क्षेत्रों में कार्य कर सकें जहाँ निजी संस्थाएं एवं व्यक्तिगत प्रयास प्रभावी नहीं हो पाते हैं।'

इसी प्रकार बेन्गाल ऐडमिनिस्ट्रेशन इन्क्वाइरी कमेटी (Bengal Administration Enquiry Committee) ने सर आरचीबॉल्ड रौलाण्डस की अध्यक्षता में युद्ध के बाद के भारतीय प्रशासन के लक्ष्यों को बताते हुए कहा था कि सरकार की गतिविधियों में विकास के क्षेत्र को महत्व दिया जाएगा और समस्त आर्थिक तथा मानवीय साधनों का उसके लिए प्रयोग किया जाएगा।

आजादी प्राप्त करने के बाद यह विचार स्वतन्त्र भारत के औपचारिक लक्ष्यों के रूप में स्वीकार किए गए।

10.3 विकास का अर्थ

'विकास प्रशासन' का अर्थ समझने के लिए हमें पहले 'विकास' शब्द को समझना होगा। विकास शब्द का कोई एक निश्चित अर्थ प्रस्तुत नहीं किया गया है। उपद्येफ तथा इचमन का मानना है कि यह ऐसा शब्द है जो कि प्रयुक्त हुआ है किन्तु समझा नहीं गया है। सामान्य रूप से विकास का अर्थ होता है लक्ष्य को साधने वाला या फिर जो एक बेहतर, ऊँची तथा परिपूर्ण अवस्था की ओर जा रहा हो। कुछ विद्वान इसे एक 'एन्डलेस सिन्ड्रोम' के रूप में भी देखते हैं। यह शब्द मुख्यतः अर्थशास्त्र से सम्बन्धित रहा है तथा वहाँ से राजनीतिशास्त्र में और उसके पश्चात् लोक प्रशासन में आया है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से 'विकास' शब्द के दो अर्थ लगाए जाते हैं। पहला, 'टेक ऑफ' की स्थिति जहाँ से अर्थव्यवस्था स्वतः ही आगे बढ़ती रहती है और दूसरा, इस स्थिति तक पहुँचने की प्रक्रिया। अतः 'टेक ऑफ' की स्थिति पर 'विकसित' तथा उससे पहले विकासशील अवस्था कही जाती है।

राजनीतिशास्त्र में 'विकास' शब्द के अर्थ पर सहमति प्राप्त नहीं हो पाई है। कतिपय विद्वान राजनीतिक विकास का अर्थ राजनीतिक रूप से आधुनिकता की प्राप्ति से लगाते हैं और 'आधुनिक' स्थिति उसे मानते हैं जो पाश्चात्य देशों ने प्राप्त कर ली है। इसमें तीन तत्व सूचकांक के रूप में प्रयुक्त होते हैं:

(अ) राजनीतिक भूमिकाओं एवं संरचनाओं में विभिन्नीकरण

(ब) समानता

(स) क्षमता

हंटिंग्टन ने संक्षेप में युक्तीकरण, राष्ट्रीय एकीकरण, प्रजातन्त्रीकरण तथा जन सहभागिता के द्वारा राजनीतिक विकास को परिभाषित किया है।

प्रो० सी० एच० डाड ने माना है कि: "राजनीतिक विकास के लिए आर्थिक एवं सामाजिक आधुनिकीकरण आवश्यक है।" साथ ही, वह प्रशासनिक विकास के लिए राजनीतिक विकास को भी आवश्यक समझते हैं।

10.4 विकास प्रशासन की परिभाषा

'विकास' शब्द के अर्थ की तरह 'विकास प्रशासन' को भी परिभाषित करने में विविद्धता देखी जाती है। अलग-अलग विचारकों ने उसे संकीर्ण तथा विस्तृत रूप से परिभाषित किया है।

मॉण्टगोमेरी ने विकास का सम्बन्ध ऐसे परिवर्तन से जोड़ा है जो पूर्व-निर्धारित यो योजना बद्ध एवं प्रकाशित किया गया हो या कम-से-कम सरकारी क्रिया द्वारा प्रभावित हो। इस आधार पर उन्होंने विकास प्रशासन को बहुत सीमित क्षेत्र में रखते हुए कहा है कि विकास प्रशासनः "अर्थव्यवस्था में योजनाबद्ध परिवर्तन लाता है (कृषि या उद्योग में, या उन दोनों में से किसी के सहयोग के लिए पूंजीगत आधार संरचना में) और कुछ कम सीमा तक राज्य की सामाजिक सेवाओं में (विशेषकर शिक्षा एवं जन स्वास्थ्य) यह सामान्यतः राजनीतिक क्षमताओं को बढ़ाने के प्रयत्नों से सम्बद्ध नहीं है।"

प्रो० बेडनर ने विकास प्रशासन को 'लक्ष्य-उन्मुखी, परिवर्तन उन्मुखी प्रशासनिक व्यवस्था' माना है। वह आर्थिक कियाओं के साथ राजनीतिक एवं सामाजिक पहलू को भी समान रूप से शामिल करते हुए लिखते हैं कि विकास प्रशासन "प्रगतिशील राजनीतिक, धार्मिक एवं

सामाजिक उद्देश्यों के चुनने तथा पूरा करने का साधन है जिसमें ये उद्देश्य अधिकारिक रूप से एक या दूसरे प्रकार से निश्चित किए जाते हैं।"

पाई पानिन्दीकर भी इस विचार का समर्थन करते हैं। वह संस्थानिक पहलू पर अधिक बल देते हुए कहते हैं: "विकास प्रशासन उस संरचना, संगठन तथा संगठनात्मक व्यवहार से सम्बन्धित है जो सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन की उन योजनाओं एवं कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए हैं जिन्हें सरकार ने पूरा करना स्वीकार किया है।"

डोनाल्ड सी० स्पेन के अनुसार: "विकास प्रशासन निर्धरित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संयुक्त प्रयास के रूप में सभी तत्वों, साधनों (मानवीय एवं भौतिक) का सम्मिश्रण है। इसका लक्ष्य निर्धारित समय क्रम के अन्तर्गत विकास के पूर्व-निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति है। इस उद्देश्य से परस्पर-सम्बन्धित योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों, परियोजनाओं, क्रियाओं और अन्य कदमों के निर्माण, मूल्यांकन और क्रियान्वयन का निरन्तर चक्र चलता रहता है।"

उसी प्रकार **लैंडन** ने भी सामाजिक परिवर्तन लाने के प्रयासें को विकास प्रशासन बताया है। फ्रेड रिग्स ने कहा है कि विकास प्रशासन उन कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं को पूरा करने के संगठित प्रयासों से सम्बन्धित है जो विकास के उद्देश्यों की पूर्ति में संलग्न व्यक्तियों द्वारा प्रवर्तित किए जाते हैं। संगठित प्रयासों को इस विषय का आधार मानती है **जी० एफ० ग्राण्ट** द्वारा दी गई परिभाषा। उन्होंने विकास प्रशासन को: "लोक प्रशासन का वह पहलू कहा है जिसमें लोक अभिकरणों को इस प्रकार संगठित और प्रशासित करने पर ध्यान दिया जाए जिसमें सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए निर्धारित कार्यक्रमों को प्रोत्साहित और आगे बढ़ाया जा सके। इसका उद्देश्य आम लोगों की दृष्टि में परिवर्तन को आकर्षक और सम्भव बनाना है।"

कतिपय विद्वान विकास प्रशासन का सम्बन्ध प्रशासन के आन्तरिक तत्वों की बजाय बाह्य तत्वों (जो प्रशासन को प्रभावित करते हैं) से अधिक मानते हैं। **रिग्ज** सामूहिक निर्णय लेने तथा उन्हें लागू करने की योग्यता को बढ़ाना ही विकास का परिस्थितिकी दृष्टिकोण मानते हैं और उनके अनुसार, विकास प्रशासन "निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपलब्ध साधनों के उपयोग में प्रभावकारिता वृद्धि की एक प्रणाली है।" नए राज्यों में प्रशासन में यह योग्यता तथा प्रभावकारिता बाह्य तत्वों पर अधिक निर्भर करती है। इन्हीं बाह्य तत्वों को प्रशासन से सम्बद्ध करते हुए प्रो० रिग्स ने लिखा है: "विकास प्रशासन केवल मात्र भौतिक, मानवीय एवं सांस्कृतिक वातावरण के रूप में परिवर्तन के लिए अभिकल्पित कार्यक्रमों को पूरा करने के सरकारी प्रयासों को ही नहीं कहेंगे बल्कि ऐसे कार्यक्रमों में अपने को लीन करने की क्षमता को बढ़ाने के प्रयासों को भी कहेंगे।"

प्रो० काज के अनुसार: "विकास प्रशासन प्रक्रिया में अपनी परिवर्तन अभिकर्ता की प्रमुख भूमिका को निभाने के लिए सरकार के कार्य के तरीके को कहा जाता है। इसमें तकनीकी क्रियाविधियां तथा संगठनात्मक प्रबन्ध शामिल किए जाते हैं। जिनके द्वारा सरकार विकास उद्देश्यों की दिशा में गति प्राप्त करती है।"

रिग्स की यह मान्यता उचित लगती है कि जिस प्रकार कृषि कार्यक्रम का प्रशासन 'कृषि प्रशासन', स्वास्थ्य का प्रबन्ध करने वाला 'स्वास्थ्य प्रशासन' होगा उसी प्रकार विकास कार्यों का प्रबन्ध करने वाला प्रशासन 'विकास प्रशासन' होगा।

संक्षेप में, विकास प्रशासन लोक प्रशासन का वह पहलू है जो कि सरकारी प्रभाव के माध्यम से प्रगतिशील, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक लक्ष्यों में परिवर्तन पर जोर देता है। विकास प्रशासन के द्विमुखी लक्ष्य हैं- राष्ट्र-निर्माण और सामाजिक-आर्थिक प्रगति ईस्मन के अनुसार

राष्ट्र-निर्माण का अर्थ है एक निश्चित भू-भाग के अन्तर्गत एक एकीकृत राजनीतिक समुदाय का सुविचारित निर्माण। सामाजिक-आर्थिक प्रगति का अर्थ है भौतिक और सामाजिक कल्याण की अविच्छिन्न और काफी विस्तृत उन्नति। इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रशासन कार्यरत रहता है।

विकास प्रशासन लोगों की समस्याओं के समाधान के लिए अनवरत ढंग से कार्य करता है, उसका लक्ष्य समाज का बहुमुखी और नियोजित ढंग से विकास होता है और वह सामाजिक परिवर्तन के एक प्रमुख अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के पिछड़े एक विकासशील देशों में लोक प्रशासन के इस आयाम को बड़ी तेजी से अपनाया गया है जिससे उनका बहुमुखी विकास निर्धारित, लक्ष्यबद्ध और योजनाबद्ध ढंग से हो सके।

संक्षेप में, विकासात्मक प्रशासन का विस्तृत क्षेत्र होता है, जिसमें न केवल भौतिक संसाधनों का उत्पादन या उनका प्रयोग ही आता है बल्कि दृष्टिकोण, रीति-रिवाज एवं संस्थाओं के परिवर्तन भी इसी में सम्मिलित हैं।

यह राजनीतिक व्यवस्था के सम्पूर्ण परिवर्तन पर बल देता है। इसका लक्ष्य है कि व्यवस्था की एकता तथा अखण्डता बनाए रखते हुए, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक आधार पर परिवर्तन तथा प्रगति को प्राप्त करना। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए विकास प्रशासन आधुनिकीकरण को स्वीकारता है। इसलिए, कुछ **विद्वान** प्रशासन के आधुनिकीकरण को 'विकास प्रशासन' के साथ जोड़ते हैं। साथ ही, कुछ **विद्वान** इसे आर्थिक विकास के एक कुशल साधन के रूप में अधिक महत्व देते हैं या कुछ इसे 'प्रशासनिक विकास' (Development of the administration) का ही पर्यायवाची मानते हैं।

10.5 विकास प्रशासन के लक्षण

विकास प्रशासन की संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए उसके तत्व या लक्षण समझना आवश्यक है। उसके कुछ प्रमुख लक्षण अग्रलिखित हैं-

(क) **परिवर्तन-उन्मुखी:** विकास प्रशासन परिवर्तन-उन्मुखी प्रशासन है। विकास का प्रशासनिक तन्त्र निश्चल और गतिहीन न होकर परिवर्तनशील होता है। उसकी एक व्यवस्था किसी एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर गतिमान होती है। बाह्य पर्यावरण लगातार बदलता रहता है। अपनी उपयोगिता बनाए रखने के लिए प्रशासन को नई परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालना चाहिए। परिवर्तन तथा प्रगति का इसमें गहरा सम्बन्ध होता है।

राजनीतिक क्षेत्र में इसका तात्पर्य है जनता की भागीदारी तथा लोकतन्त्र की **भावना** का विकास, अधिक विकेन्द्रीकरण, अधिक संघवाद तथा अनेक संगठनों की स्थापना अथवा बहुलवाद। आर्थिक क्षेत्र में विकास का लक्ष्य होता है सभी के लिए भौतिक साधन पाने के समान अवसर तथा समानता की स्थापना की ओर अग्रसर होना। सामाजिक क्षेत्र में यह सभी प्रकार के भेद-भाव का अन्त करके सामाजिक समानता की ओर अग्रसरित होता है।

(ख) **लक्ष्य-उन्मुखी:** विकास प्रशासन का केन्द्रण अधिक व्यवस्थित ढंग से लक्ष्यों की प्राप्ति पर है। वाईडनर के अनुसार यह 'लक्ष्य-उन्मुखी' प्रशासन है। इसके सभी लक्ष्य स्वभावतः प्रगतिशील होते हैं और व्यवस्था को आगे की ओर ले जाते हैं। विकास के लिए यह आवश्यक है कि लक्ष्यों को व्यवस्थित रूप से आयोजित करके गतिविधियों को संचालित

किया जाए। लक्ष्य-प्राप्ति के लिए किए गए प्रयासों को लगातार Monitor करना चाहिए तथा उचित सुधार भी किए जाने चाहिए ताकि उसका लक्ष्य-उन्मुखी तत्व बना रह सके। यदि लक्ष्य-प्राप्ति के लिए आवश्यक हो तो प्रक्रिया में भी बदलाव लाया जा सकता है तथा संगठनात्मक प्रक्रिया में भी लचीलापन स्वीकार किया जा सकता है। प्रशासनिक संस्थाओं को बदलकर या नई (Agencies) संस्थाओं का विकास कर के लक्ष्य-प्राप्ति की ओर बढ़ा जा सकता है।

परिणाम-उन्मुखी तथा समय की बाध्यता: विकास प्रशासन में परिणम पर विशेष महत्व दिया जाता है। परिवर्तनों को एक निश्चित समय-सीमा में पूरा करना ही उपयोगी माना गया है। प्रशासन की सफलता इस पर निर्भर रिती है कि उसने निश्चित अन्तराल में कितनी प्रगति की या कितनी आमदनी में बढ़त हुई। सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन अपने नियोजन के अनुरूप एक समय-सीमा में पूर्ण करना अनिवार्य होता है।

प्रगतिशीलता और सहभागिता: प्रगतिशीलता से अभिप्राय है कि शासन कार्यों में लोगों की अधिक-से-अधिक भागीदारी हो। विकास के प्रशासनिक-तन्त्र से यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर जो विकास प्रक्रिया में लोगों को सहभागी बनाने में सहायक हों। विकास प्रशासन में विकास कार्यक्रम बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने में लोगों का सहभागी होना निहित है। भारत में पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से लोगों की विकास कार्यों में सहभागिता में वृद्धि हुई है। वस्तुतः विकास का प्रशासनिक तन्त्र-कार्य व अधिकार सौंपने तथा सलाह-मशविरा लेने की रणनीति का प्रभावी ढंग से उपयोग करता है और इस प्रकार अनुशासन को 'आधार' उन्मुखी (Grass-root-oriented) बनाता है।

नियोजन: पाई पानिन्दीकर विकास प्रशासन को 'नियोजित परिवर्तन' के प्रशासन के रूप में देखते हैं। एक निश्चित अवधि में कुछ सुनिश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने के कार्यक्रम के यप में नियोजन समय और विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने वाले साधनों के अधिकतम सम्भव उपयोग में सहायक होता है। अतः अधिकांश विकासशील देशों ने सामाजिक-आर्थिक नियोजन को विकास की रणनीति के रूप में अपनाया है।

प्रभावी एकीकरण: विकास प्रशासन प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अनेक कार्यक्रम तथा योजनाएं बनाता है। सभी कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए कुछ विशेष प्रकार के कार्य होते हैं। विकास की प्रशासनिक स्थिति में विभिन्न संगठनों और इकाइयों के बीच विभिन्न पदों और कार्यकर्ताओं के बीच तथा लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु उपलब्ध संसाधनों के बीच विभिन्न स्तरों पर समन्वय प्रभावी करना आवश्यक है। उसके अभाव में संसाधनों की बरबादी और प्रभावशीलता में कमी होती है। अतः विकासात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अधिकारियों और समूहों के दल को साथ-साथ लाने के लिए प्रशासनिक संगठन में एकीकरण करने की उच्च कोटि की क्षमता आवश्यक है। यदि एकीकरण का स्तर नीचा है तो विकास के प्रतिफलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहेगी।

नवाचार: विकास से सम्बन्धित विविध समस्याओं के समाधान के लिए विकास प्रशासन का तरीका परम्पराजनित अथवा सिद्धान्तवादिता से बंधा हुआ नहीं होता। इसके बजाय वह नए ढ़ाचों, पद्धतियों, कार्यक्रमों को अपनाने पर बल देता है। भारत में डी0आर0डी0ए0, सी0ए0डी0 जैसे कार्यक्रम इन नवाचारों के परिचायक हैं।

प्रशासनतन्त्र में लचीलापन: परम्परागत प्रशासन-तन्त्र नोकरशाही पर आधरित थी जब कि विकास प्रशासन में प्रशासन-तन्त्र को राजनीतिज्ञों तथा स्वयंसेवी सस्थाओं के

साथ मिल कर कार्य करना होता है। प्रशासन नियमों के जाल में बंधा नहीं रहता, अपितु विशिष्ट परिस्थितियों में प्रशासन को स्वविवेक से नियम लागू करने की स्वायत्तता होती है।

(झ) **लाभ-भोगी अभिमुखीकरण:** विकार प्रशासन लाभ-भोगी अभिमुखी प्रशासन है। इसका उद्देश्य उन्हीं लोगों को अपनी सेवाओं और उत्पादन का अधिकतम लाभ पहुँचाना है जिनके लिए संगठन बनाए जाते हैं। यह अपने को उपभोक्ता की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने की कोशिश करता है। विकास प्रशासन जन-कल्याण के लक्ष्यों को लेकर काम करता है इसलिए यह प्रमुखतः जन-केन्द्रित सेवाएं (people-centred services) प्रस्तुत करता है। वह सेवा करने के लिए बनाया गया प्रशासन होता है, जो कि जनता की जरूरतों को ध्यान में रखता है। यह जनता के लिए स्थापित किया जाता है, इसलिए उसकी सफलता या प्रभाविकता इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी सेवाएं जनता के लिए कितनी उपयोगी रहीं।

(ञ) **उत्तरदायित्वपूर्ण:** इसकी कार्य प्रणाली पलायनवाद की नहीं है बल्कि यह समस्याओं तथा परिवर्तित परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रियाशील (रेस्पोन्सिव) व्यवहार प्रदर्शित करता है। यह समाज के प्रति अपने दायित्वों का तत्परता से पालन करने का हिमायती है।

10.6 लोक प्रशासन तथा विकास प्रशासन

आधुनिक युग में विकास प्रशासन को व्यापक मान्यता प्राप्त है और उसने लोक प्रशासन के ही नहीं, अपितु अन्य समाज-शास्त्रों के विद्वानों की रूचि को जागृत किया है। कतिपय विद्वान एक अवधारणा के रूप में विकास प्रशासन को लोक प्रशासन से पृथक एक उच्च अवधारणा मानते हैं। जब कि फ्रेड रिग्स एवं कैडेन जैसे विद्वान लोक प्रशासन और विकास प्रशासन दोनों को अलग मानते हैं। जे० एन० खोसला तथा जार्ज ग्रांट जैसे विद्वान विकास प्रशासन को लोक प्रशासन की उपशाखा ही मानते हैं। वास्तव में, दोनों विषयों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक प्रशासन में कई तरह के कार्यों का निष्पादन होता है किन्तु सभी से विकास की उतनी गहरी अनुभूति नहीं होती। जैसे कि पुलिस और राजस्व प्रशासन लोक प्रशासन के अभिन्न अंग हैं, किन्तु इनसे 'विकास' की अनुभूति नहीं होती। विकास प्रशासन लोक प्रशासन का वह अंग है जो प्रगतिशील सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार द्वारा प्रभावित परिवर्तन लाने पर केन्द्रित रहता है। यदि प्रशासनिक संरचना को ध्यान में रखें तो यह कहा जा सकता है कि विकास प्रशासन योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, विकास निगम तथा इसी तरह के नवीन अभिकरणों की रचना करके विकास कार्यों को करता है। विशेष अभिकरणों, विभागों तथा पदों की रचना के द्वारा विकास कार्यक्रमों को पूरा करने का प्रयास किया जाता है। भारत में जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (डी०आर०डी०ए०) तथा विकास अधिकारी (बी०डी०ओ०) के पद इसी प्रकार के हैं। लोक प्रशासन तथा विकास प्रशासन के विरोध नहीं है। लोक प्रशासन के अभिकरणों तथा पदों का विकास प्रशासन हेतु पुनर्निर्माण किया जाता है। जैसे कि भारत में कलक्टर के पद का रूपान्तरण जिला विकास अधिकारी के रूप में कर दिया गया है।

संक्षेप में, लोक प्रशासन प्रमुखतः सरकार का सामान्य या नियामकीय प्रशासन है जबकि विकास-प्रशासन विकास-उन्मुखी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्यरत रहता है। लोक प्रशासन

का सम्बन्ध कानून और व्यवस्था बनाए रखने, राजस्व इकट्ठा करने ओर कानून, नीतियाँ आदि लागू करना होता है। इन कार्यों को करते समय वह कुछ ऐसे कार्यों के साथ भी जुड़ता है जो विकास से सम्बन्धित नहीं होते हैं। किन्तु लोक प्रशासन के स्वरूप का प्रभाव विकास प्रशासन पर भी पड़ता है। इन दोनों के बीच कुछ प्रमुख भिन्नताएं पाई जाती हैं:

(क) नियामकीय प्रशासन रोज के कार्यों में लगा रहता है जबकि विकास प्रशासन नए कार्यों, समस्याओं तथा चुनौतियों से सम्बन्धित होता है।

(ख) परम्परावादी प्रशासन व्यक्तिगत कार्यवाही पर निर्भर होता है जबकि विकास प्रशासन सामूहिक कार्यवाही या गुटों के बीच सहयोग पर बल देता है।

(ग) विकास प्रशासन के लक्ष्य बहु-आयामी होते हैं, जबकि परम्परावादी प्रशासन सरल लक्ष्यों को अपनाता है। इसी कारण विकास प्रशासन का कार्य-क्षेत्र अधिक व्यापक होता है।

(घ) विकास प्रशासन गतिशीलता पर आधारित है न कि स्थायित्व पर जैसे कि लोक प्रशासन है। इसके परिणामस्वरूप, लोक प्रशासन कानून तथा प्रक्रिया को दृढ़ता से अपनाता है तथा एक कार्य को पूरा करने के लिए काम करता है। उसके विपरीत, विकास प्रशासन नए तरीकों को अपनाकर सफलता प्राप्त करने का प्रयास करता है। अभिकरणों तथा पदों को आवश्यकतानुसार बदला जाता है।

(ङ) निर्णय-निर्माण में कार्यवाही मिली जुली होती है तथा सहयोग के आधार पर विकास प्राप्त किया जाता है। इसके विपरीत, लोक प्रशासन केन्द्रीकृत निर्णय-निर्माण पर आधारित है। लोक प्रशासन को नौकरशाही पर आधारित प्रशासन कहते हैं तथा विकास प्रशासन को भागीदारी पर आधारित प्रशासन।

दोनों प्रशासन अपने लक्ष्यों, क्षेत्र, जटिलता तथा नवीनता के स्तर में अलग हैं, जबकि सरकार के नियम, नीतियाँ तथा सिद्धान्तों को लागू करने में एक समान हैं। विकास प्रशासन में पदसोपान तथा लालफीताशाही का प्रभाव कम होता है तथा लचीलेपन के आधार पर कार्यवाही की जाती है। इसके कारण विलम्ब तथा हृदयहीनता से बचाव रहता है। विकास प्रशासन में नागरिक और प्रशासक दोनों मिलकर सहयोग से, एक दूसरे पर विश्वास करते हुए, दोनों अपने को बराबर की स्थिति में महसूस करते हुए कार्य करते हैं।

10.7 तुलनात्मक प्रशासन तथा विकास प्रशासन

तुलनात्मक प्रशासन तथा विकास प्रशासन का लगभग एक साथ ही विकास हुआ है तथा दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। किन्तु विकास प्रशासन को तुलनात्मक लोक प्रशासन का व्यावहारिक पक्ष नहीं कहा जा सकता। दोनों विषयों के बीच कर्मचारियों तथा लक्ष्यों का स्पष्ट अन्तर पाया जाता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन में सिद्धान्त निर्माण का अधिकांश कार्य 'विकास' से सम्बन्धित है, जबकि 'विकास प्रशासन' का अध्ययन सिद्धान्त निर्माण से जुड़ा हुआ है। वस्तुतः, सिद्धान्त का विकास तथा विकास प्रशासन का सिद्धान्त एक साथ आगे बढ़ा है।

तुलनात्मक प्रशासन के क्षेत्र में वुडरो विल्सन, विलियम विलोबी, एल० डी० वाइट तथा एफ० डब्ल्यू० टेलर ने प्रबन्धकीय दृष्टिकोण को अपनाया। उनकी प्रमुख रूचि प्रशासन के कुछ 'सर्वव्यापी' सिद्धान्तों को जोड़कर प्रशासन के विज्ञान का निर्माण करना था। इस प्रयास के

कारण तुलनात्मक लोक प्रशासन ने 'क्षेत्रवाद' और 'प्रांतवाद' की संकीर्णता को समाप्त किया है। सामाजिक विज्ञान अनुसंधान का क्षेत्र जो पहले सांस्कृतिक बन्धनों तक सीमित था, तुलनात्मक विज्ञान प्रणाली से विस्तृत बना है। तुलनात्मक क्रान्ति के कारण सिद्धान्त-निर्माण में अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण आया है। इससे सामाजिक विश्लेषण के क्षेत्र को विस्तृत बनाने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला है। अतः तुलनात्मक प्रशासन प्रशासनिक व्यवहार के सम्बन्ध में सर्वव्यापी ज्ञान समूह को प्रस्तुत करने में सफल हुआ है।

विकास प्रशासन का अध्ययन क्षेत्र लगभग तुलनात्मक प्रशासन के साथ ही विकसित हुआ। 'तुलनात्मक प्रशासन दल' (CAG) के द्वारा इस विषय पर प्रकाशा डाला गया। किन्तु दोनों विषयों के लक्ष्यों में स्पष्ट अन्तर पाया जाता है। तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन के द्वारा विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता एवं विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है। किन्तु विकास प्रशासन वह प्रक्रिया है जो एक संगठन के प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक लक्ष्यों की ओर मार्गदर्शन करती है। यह लक्ष्य किसी-न-किसी प्रकार अधिकृत ढंग से निर्मित किए गए होते हैं।

इसके अतिरिक्त, तुलनात्मक प्रशासन में उन विशुद्ध वैज्ञानिक अवधारणाओं तथा प्रविधि के आधारों का अभाव है जिन पर सिद्धान्त बनते हैं। विकास प्रशासन ने अपने अध्ययन द्वारा यह बात स्वीकार की कि विकसित देशों की व्यवस्था के आधार पर विकासशील देशों को समझा नहीं जा सकता है। उदाहरण के लिए विकास से सम्बन्धित तुलनात्मक अध्ययन सरल नहीं होता है। इसका कारण यह है कि विकास अपने आप में सापेक्ष विचार नहीं है जो समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों तथा लोक प्रशासन के विद्वानों द्वारा पृथक-पृथक ढंग से विश्लेषित किया जाता है। विश्व के सभी समाज, विकास का एक जैसा अर्थ नहीं लगाते हैं। भारतवासियों के लिए सड़क, पुल, अस्पताल का निर्माण विकास है किन्तु जापानियों के लिए राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण सही विकास है। तुलना का आधार निश्चित न होने के कारण समस्या आती है।

10.8 विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास

विकास प्रशासन से अभिप्राय है विकास कार्यक्रमों का प्रशासन। रिग्स के अनुसार विकास प्राशासन के दो महत्वपूर्ण आयाम हैं। पहला, यह उस प्रक्रिया से जुड़ा है जिसके द्वारा लोक प्रशासन प्रणाली समाज में सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों का संचालन करते हैं। दूसरा, यह प्रशासनिक प्रणली के भीतरी परिवर्तन की गति का अध्ययन करता है। पहला आयाम 'विकास के प्राशासन' से तथा दूसरा आयाम 'प्रशासनिक विकास' की प्रक्रिया से सम्बद्ध है। वस्तुतः 'प्रशासनिक विकास' विकास प्रशासन का एक अनिवार्य परिणाम है। प्रशासनिक विकास का अर्थ है निर्धारित प्रगतिशील नवीनतापरक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रशासनिक तन्त्र की सामर्थ्य और क्षमता बढ़ाना। यह प्रक्रिया प्रशासनिक सुधार, प्रशासनिक प्रक्रिया के आधुनिकीकरण, प्रशासकों की मनोवृत्ति आस्था और आचरण के वास्तविक बदलाव लाने पर निर्भर करती है।

जब प्रशासनिक सुविधाओं की व्यवस्था को सुधार कर विकास प्रशासन को उसके कार्य-क्षेत्र में सफलता प्राप्ति की ओर ले जाया जाए तो उसे प्रशासनिक विकास कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रशासनिक विकास प्रशासन के विकास को कहतें हैं जबकि प्रशासनिक व्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया जाता है तथा उसमें परिवर्तन लाकर परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है। सुधार और विकास लाने के लिए संस्थाओं को उपयोगी तथा प्रक्रिया को बेहतर बनाया जाता

है। विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रशासनिक प्रक्रिया को उसके उपयुक्त बनाना ही प्रशासनिक विकास है। इस प्रक्रिया में प्रशासनिक संरचनाओं, क्रियाओं तथा व्यवहार का आधुनिकीकरण कर के विकास प्रशासन को लक्ष्य-प्राप्ति की ओर संचालित किया जाता है। प्रशासकों के व्यवहार-परिवर्तन को भी इसी में शामिल किया जाता है। अर्थात, विकास प्रशासन का अर्थ होता है विकास का प्रशासन करना जबकि प्रशासनिक विकास का अर्थ होता है विकास को प्राप्त करने के लिए प्रशासन में परिवर्तन करना। संगठनात्मक विकास के द्वारा ही व्यापक सामाजिक-आर्थिक तथा राजनैतिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

परिणामस्वरूप, 'विकास प्रशासन' के अध्येयताओं ने स्वीकार किया है कि 'विकास का प्रशासन' और 'प्रशासन का विकास' कार्यात्मक रूप से एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। रिग्स के अनुसार विकास के इन दोनों पक्षों की परस्पर सम्बद्धता में अण्डे और मुर्गी के समान कार्य-कारण भाव है। सामान्य रूप से प्रशासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन पर्यावरण में परिवर्तन के बिना नहीं ला सकते हैं और पर्यावरण स्वयं तब तक परिवर्तित नहीं हो सकता जब तक कि विकास कार्यक्रमों के प्रशासन को सुदृढ़ नहीं किया गया हो। विकास प्रशासन परिवर्तन का प्रयास करता है किन्तु परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को सक्षम सिद्ध करने के लिए स्वाभाविक रूप से प्रशासनिक विकास अनिवार्य हो जाता है।

प्रशासनिक विकास प्रशासन का एक भाग या पूर्वशर्त है। विकास प्रशासन उसी स्थिति में सफलतापूर्वक काम कर सकता है जबकि उसमें विकास कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पादित करने की प्रशासनिक क्षमता तथा योग्यता हो। इसलिए विकास कार्यों में संलग्न प्रशासनिक संगठनों, संस्थाओं, अभिकरणों तथा कार्मिकों को विकसित करने से सम्बन्धित प्रयास किए जाते हैं। प्रशासनिक व्यवस्था को विकास प्रशासन की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित करना तथा कार्यक्षमता में वृद्धि करना ही प्रशासनिक विकास है। प्रशासनिक कार्यकुशलता, प्रभावशीलता तथा प्रभावकारिता में उन्नयन करके ही प्रशासनिक विकास का उद्देश्य पूरा हो सकता है।

प्रशासनिक विकास तथा विकास प्रशासन के बीच में अन्तर इस प्रकार से स्पष्ट किए जा सकते हैं।

विकास प्रशासन	प्रशासनिक विकास
1. राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास तथा उन्नति के लक्ष्यों की प्राप्ति में रत प्रशासनिक व्यवस्था, विकास प्रशासन है।	राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास उन्नति के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रशासनिक व्यवस्था को सक्षम बनाना उसमें समयानुकूलन परिवर्तन लाना प्रशासनिक विकास है।
2. लोककल्याणकारी राज्य के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है।	विकास प्रशासन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है।
3. यह एक व्यापक प्रशासनिक क्षेत्र का छोटा द्योतक है।	यह इस व्यापक प्रशासनिक क्षेत्र का रूप या उसकी आंतरिक गतिविधि है।
4. विकास प्रशासन, प्रशासनिक विकास को आधार प्रदान करता है।	प्रशासनिक विकास, विकास प्रशासन की सफलता का आधार बनता है।
5. यह 'प्रशासन द्वारा विकास' है।	यह 'प्रशासन का विकास' है।
6. विकास प्रशासन, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा प्रशासनिक इत्यादि कई आयामों से सम्बद्ध है।	प्रशासनिक विकास तो विकास प्रशासन का एक भाग है।

यद्यपि प्रशासनिक विकास को, विकास प्रशासन की एक आवश्यक गतिविधि माना गया है तथापि यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक प्रशासन जो विकास कार्य करता है वह स्वयं विकसित हो। विकासशील देशों की अविकसित नौकरशाही तथा उपनिवेशकालीन प्रशासन, विकास प्रशासन से सम्बन्धित कार्य कर रहा है, हालांकि इन देशों में प्रशासनिक विकास की गति तथा इच्छा शक्ति दोनों ही कम हैं। दूसरी ओर यह भी आपत्ति उठायी जाती है कि प्रशासनिक विकास हमेशा विकास प्रशासन में ही हो यह भी आवश्यक नहीं है क्योंकि अमेरिका, जापान, फ्रांस तथा ब्रिटेन जैसे विकसित देश भी निरन्तर प्रशासनिक सुधार करते रहते हैं, भले ही इन देशों का प्राशासन, विकास प्रशासन की श्रेणी में न आता हो।

जब विकास प्रशासन समग्र विकास में संलग्न है तो उसी में ही प्रशासनिक विकास को समाहित मान लिया जाता है। बहुधा यह भी माना जाता है कि विकास कार्यक्रमों, योजनाओं तथा परियोजनाओं के निर्धारण तथा क्रियान्वयन की प्रक्रिया में सम्बन्धित क्षेत्र की प्रशासनिक संरचना स्वतः ही विकसित हो जाएगी। यद्यपि प्रशासनिक विकास में स्वतः उद्विकास प्रक्रिया भी एक साधन होती है तथापि परम्परागत प्रकृति के समाज और प्रशासनिक ढांचे में शीघ्रता से एवं स्वतः स्फूर्त परिवर्तनों की अपेक्षा करना व्यर्थ है। लेकिन यह भी सत्य है कि विकास प्रशासन के लक्ष्य बिना प्रशासनिक विकास के प्राप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। साथ ही, प्रशासन सभी क्षेत्रों में विकास से जुड़ा है तथा सम्पूर्ण परिवर्तन प्रक्रिया का मार्गदर्शक एवं आधार भी है। अतः इस आधार की मजबूती भी इसी बात पर निर्भर है कि यह स्वयं को परिस्थिति अनुसार ढाल ले या विकसित कर ले।

10.9 विकास प्रशासन की आवश्यक शर्तें

विकास प्रशासन का कार्यक्षेत्र निरन्तर बढ़ता जा रहा है। सरकार का कार्य है कि वह समस्त विकास की प्रक्रियाओं को निर्देशित करे। सरकारी कार्यों में बढ़ती हुई विविधता के कारण प्रशासनिक क्रियाकलाप शनैः-शनैः जटिल तथा तकनीकी-प्रधान होते जा रहे हैं। इन परिवर्तनों के कारण विकास प्रशासन को सफल बनाने के लिए कुछ शर्तें होती हैं। कुछ प्रमुख आवश्यकताएं निम्नलिखित हैं:

(क) बढ़ती हुई जटिलता को ध्यान में रखते हुए विशेषज्ञों के द्वारा कार्यों का निष्पादन करा जाना चाहिए जो कि नई तकनीकों को अपना सकें तथा परिवर्तन ला सकें।

(ख) प्रशासन के सभी स्तरों पर नेतृत्व प्रदान करने वाले व्यक्तियों में सेवा-भाव तथा समर्पण होना चाहिए।

(ग) प्रशासन तथा जनता के बीच सहयोग और विश्वास होना चाहिए। प्रशासन को स्थानीय जरूरतों, अपेक्षाओं तथा मांगों के सन्दर्भ में जानकारी होनी चाहिए क्योंकि इस प्रशासन में नियोजन के अधिकांश कार्य स्थानीय स्तर पर किए जाते हैं।

(घ) कल्पनाशक्ति तथा लचीलेपन के आधार पर निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया आधारित होनी चाहिए।

(ङ) प्रशासनिक तथा प्रबन्धकीय उन्नयन पर अत्यधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

(च) विकास प्रशासन की प्रक्रिया में कार्मिकों के प्रशिक्षण पर अनवरत जोर दिया जाना

(छ) विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया जाना चाहिए जिससे क्षेत्र स्तर (स्थानीय) की विकास एजेन्सियां अधिक स्वायत्त तौर से कार्य कर सकेंगी।

इन शर्तों को पूरा करने से विकास प्रशासन को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

10.10 विकास प्रशासन का क्षेत्र

विकास प्रशासन एक ऐसा विषय है जो समय के साथ विस्तृत होता जा रहा है। दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति पर जो नए राज्य उभर कर सामने आए उनमें गरीबी तथा भोजन का अभाव एक प्रमुख समस्या थी। इस कारण, आजादी के तुरन्त बाद विकास प्रशासन का लक्ष्य प्रमुखतः आर्थिक था अर्थात उसका लक्ष्य था आम आदमी के जीवन स्तर को ऊँचा करना, उत्पादन बढ़ाना इत्यादि। पचास तथा साठ के दशकों में आर्थिक विकास को दिए गए महत्व के कारण विकासशील देशों में अनेक नई परेशानियाँ सामने आईं। आर्थिक विकास पर अधिक महत्व देने के कारण समाज में असन्तुलन व्याप्त हो गया। विकास की परियोजनाओं के परिणमस्वरूप गरीबी और बेरोजगारी और बढ़ी। अमीर और गरीब के बीच में अन्तर और बढ़ गया। इन समस्याओं के कारण न्याय के साथ आर्थिक विकास करने के लिए कार्यवाही शुरू की गई। प्रयास किया गया कि गरीबी, असमानता तथा बेरोजगारी को कम या दूर करने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था को विकसित किया जाए।

समय के साथ बहुत सी नई बाधाएं सामने आईं। कुछ ने सुझाव दिया कि केवल तकनीकी ज्ञान ही समस्याओं का अन्त कर सकता है। दूसरों का कहना था कि भारतीय परम्पराएं एवं रूढ़िवादी विचारों को बदलने के उपरान्त ही विकास सम्भव हो पाएगा। कुछ ने तो भारतीय संयुक्त परिवार को भी कठिनाइयों का कारण बतलाया। विकास प्रशासन को इन बाधाओं का सामना करते हुए राष्ट्रीय एकता के लक्ष्य को भी अपनाना था, ताकि राष्ट्र-निर्माण एवं राष्ट्रवाद का भी विकास हो सके। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से केवल संतुष्ट न होकर सब नागरिकों को 'हिन्दुस्तानी' बनाकर एक सूत्र में बाँधना जरूरी था।

उन्नीस सौ साठ के दशक तक अपनाई गई विकास की परिभाषा को अत्यन्त सीमित तथा अपर्याप्त माना जाने लगा। आर्थिक उपलब्धियों के साथ सामाजिक न्याय को भी विकास के लक्ष्यों के साथ जोड़ा गया। धीरे-धीरे और भी नए आयाम प्रस्तुत किए गए। आज 'विकास' मनुष्य के जीवन के सभी पहलुओं को साथ लेकर चलता है- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक।

विकास के पूर्ण रूप को आज अपनाया जाता है। वर्तमान समय में पर्यावरण एवं धरती के संरक्षण को भी विकास के साथ सम्बन्धित माना गया है। प्रदूषण पर नियन्त्रण, जंगलों का बचाव, वन्य-प्राणियों की सुरक्षा इत्यादि भी विकास के साथ जुड़ गए हैं क्योंकि आज के युग का विकास करने के लिए हम भविष्य को नकार नहीं सकते हैं। इस लक्ष्य के आधार पर 1987 में 'वर्ल्ड कमीशन ऑन एन्वाइरन्मेन्ट एण्ड डेवेलप्मेन्ट' में 'सस्टेनाबेल डेवेलप्मेन्ट' (Sustainable Development) का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया था। अतः यह लक्ष्य वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रयास में आने वाली पीढ़ियों की सम्पदा को हानि नहीं पहुँचाता है।

विकास प्रशासन के विस्तृत कार्य-क्षेत्र में आने वाली गतिविधियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है- 'डिस्क्रीट' (discrete) और 'डिफ्यूज' (diffuse) जैसे कि एक उर्वरक कारखाना (fertilizer factory) या एक इस्पात उद्योग (steel plant) में जहाँ कार्य समाप्त करने के

लिए पहले से समय निर्धारित किया गया है। उसे 'डिस्क्रीट' गतिविधि कहा जाता है। उसके विपरीत लोक प्रशासन में बहुत सी गतिविधियों के पूरा होने की तिथि पहले से निर्धारित नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, ग्रामीण विकास या समाज सुधार। इसको 'डिफ्यूज' गतिविधि कहते हैं। विकास प्रशासन के कार्य-क्षेत्र का अधिकतर भाग 'डिफ्यूज' गतिविधियों से सम्बन्धित है। इस प्रकार की गतिविधियाँ अधिक जटिल होती हैं तथा उन्हें मूल्यांकित करना कठिन होता है। पी0ई0आर0टी0 (Programme Evaluation and Review Technique) और सी0पी0एम0 (Critical Path Method) के आधीन इनको मूल्यांकित नहीं किया जा सकता है।

विकास प्रशासन का कार्य-क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसे पूर्णतया स्पष्ट रूप से विभाजित नहीं किया जा सकता। वर्तमान में कार्यरत अधिसंख्य प्रशासनिक अभिकरण विकास प्रशासन के क्षेत्र से ही सम्बन्धित हैं जिन्हें निम्नांकित बिन्दुओं की सहायता से वर्गीकृत किया जा सकता है:

(क) **सामान्य प्रशासन:** इसके अन्तर्गत वे अभिकरण तथा प्रशासनिक कार्य सम्मिलित किए गए हैं जो सरकारी नीतियों के निर्धारण, राजनीति एवं प्रशासन के मध्य समन्वय, प्रशासनिक कार्यों में निर्देशन, नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण से सम्बन्धित हैं। भारत में मंत्रिमण्डल सचिवालय, प्रधानमंत्री कार्यालय तथा केन्द्रीय सचिवालय इसी श्रेणी में आते हैं।

(ख) **विकासात्मक प्रशासन अभिकरण:** इसमें वे प्रशासनिक संगठन तथा उनके कार्मिक सम्मिलित माने जा सकते हैं जो सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए प्रत्यक्षतः उत्तरदायी हैं जैसे विशिष्ट योजना संगठन, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, पंचायतीराज तथा ग्राम विकास, कृषि विभाग इत्यादि।

(ग) **नियोजित परिवर्तन का प्रशासन:** यद्यपि नियोजित परिवर्तन के प्राशासन का विकासात्मक प्रशासन के अभिकरणों के मध्य स्पष्ट अन्तर नहीं है फिर भी नियोजित परिवर्तन के प्रशासन की श्रेणी में योजना आयोग, राज्य नियोजन विभाग, समाज कल्याण विभाग तथा पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित करने वाले अभिकरण सम्मिलित किए जा सकते हैं।

(घ) **प्रशासन की आंतरिक एवं कार्मिक समस्याओं का प्रशासन:** विकास प्रशासन के कार्यक्षेत्र में केवल विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ही नहीं बल्कि प्रशासनिक संगठनों की आन्तरिक कार्यकुशलता तथा कार्यरत कार्मिकों के कार्मिक प्रशासन जैसे भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा पदस्थापना इत्यादि को भी सम्मिलित किया जाता है।

(च) **मानवीय तत्वों का अध्ययन:** विकास प्रशासन के क्षेत्र में समाज, मूल्य, परम्पराओं, राजनीतिक शक्तियों, वर्ग, जातियों, समुदायों तथा आर्थिक संसाधनों सहित उन सभी मानवीय दशाओं तथा तत्वों का अध्ययन भी सम्मिलित है जो विकास एवं सामाजिक-आर्थिक नियोजन से किसी न किसी रूप से सम्बद्ध हैं क्योंकि विकास प्रशासन को पारिस्थिति के सन्दर्भों में समझना नितान्त आवश्यक है।

(छ) **बहुआयामी:** कार्यात्मक दृष्टि से विकास प्रशासन का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विशाल तथा बहुआयामी है। वास्तव में लोक प्रशासन तथा विकास प्रशासन का क्षेत्र लगभग समान है लेकिन विकास प्रशासन एक विशिष्टता से सम्बन्धित है। वह है- विकास। कृषि, सिंचाई, ऊर्जा, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय, संचार तथा उद्योग इत्यादि इसके बहुआयामी विषय क्षेत्र हैं जो सामाजिक-आर्थिक विकास एवं परिवर्तन से प्रत्यक्षत सम्बद्ध हैं।

कतिपय विद्वानों ने विकास प्रशासन का क्षेत्र चार श्रेणियों में विभाजित माना है- आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, प्रशासनिक विकास तथा राजनीतिक विकास।

10.11 विकास प्रशासन के घटक (Components)

विकास प्रशासन में मूल रूप से दो प्रकार के घटक उल्लेखनीय हैं- आदर्शमूलक (Normative) तथा अनुभवमूलक घटक। आदर्शमूलक घटक, विकास प्रशासन के उन सैद्धांतिक तथा लक्ष्यमूलक प्रतिमानों पर बल देने से सम्बन्धित हैं जो प्रमुखतः 'क्या होना चाहिए' पर विश्वास करते हैं। आदर्शमूलक घटक में कल्पनाशीलता, सैद्धांतिकता तथा कानूनी बाध्यता अधिक होती है जबकि अनुभवमूलक घटक पूर्णतया व्यावहारिक स्थिति अर्थात् 'क्या है' का खुलासा करते हैं। इन दोनों घटकों की सैद्धांतिकता व्याख्या से बाहर कतिपय सामान्य घटक ऐसे हैं जो विकास प्रशासन की प्रकृति, क्षेत्र, मान्यताओं तथा व्यावहारिकता का आधार बनतें हैं। ये हैं-

1. लोकतान्त्रिक मूल्य एवं वैधानिक परम्पराएँ
2. लोक कल्याणकारी राज्य तथा नीति निदेशक तत्व
3. सुदृढ़ शासन व्यवस्था तथा शक्तियों का पृथक्करण
4. सुस्थापित लोक सेवाएं तथा प्रशासनिक तन्त्र
5. कल्याणकारी कानून एवं नीतियां
6. आर्थिक, मानवीय तथा प्राकृतिक संसाधन
7. सामाजिक मूल्य तथा परम्पराएं
8. दबाव समूह एवं स्वतन्त्र प्रेस
9. राजनीतिक चेतना तथा राजनीतिक दल
10. जनसहभागिता तथा विकेन्द्रीकरण
11. वैज्ञानिक उन्नति एवं विशिष्टिकरण
12. उद्योग, परिवहन, ऊर्जा, संचार तथा प्रौद्योगिकी
13. वित्तीय संसाधन
14. उच्च क्षमता युक्त मानवीय संसाधन
15. राष्ट्रीय इच्छा शक्ति, एकता तथा मनोबल

10.12 विकास प्रशासन का महत्व

निमरोद रैफली ने तुलनात्मक प्रशासन में सिद्धान्त-निर्माण तथा विकास प्रशासन के दो मुख्य चिन्तन वर्णित किए हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन में सिद्धान्त-निर्माण का कार्य अधिकांशतः 'विकास' से सम्बन्धित है तथा विकास प्रशासन का अध्ययन, सिद्धान्तों के निर्माण से जुड़ा हुआ है। इस तरह सिद्धांतों का विकास तथा विकास का सिद्धान्त साथ-साथ आगे बढ़े हैं क्योंकि विकास की विभिन्न परिस्थितियों में कार्यरत राष्ट्रों की प्रशासनिक प्रणालियों की तुलना ही लोक प्रशासन की चिन्तन बिन्दु है। इसलिए विकास प्रशासन का सर्वप्रमुख महत्व यही है कि इसने तुलनात्मक लोक प्रशासन को समृद्ध बनाने में योगदान दिया है या दे सकता है।

यह केवल विकासशील राष्ट्रों के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि नवीन लोक प्रशासन (अमेरिकी) की विचारधारा के साथ सामंजस्य स्थापित करने में भी सहायक हो सकता है।

व्यावहारिक रूप में विकास प्रशासन का महत्व निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से भी वर्णित किया जा सकता है:

(क) यह परम्परागत लोक प्रशासन की न्यूनताओं की पूर्ति का एक माध्यम सिद्ध हो सकता है क्योंकि परिवर्तनशीलता एवं लचीलापन इसके गुण हैं।

(ख) लोक कल्याणकारी राज्य के दायित्वों की पूर्ति में विकास प्रशासन सहायक सिद्ध हो सकता है।

(ग) सामाजिक समानता, सामाजिक न्याय तथा आर्थिक विकास के क्रम में विकास प्रशासन एक सशक्त अवधारणा है।

(घ) नियोजित अर्थव्यवस्था में विकास प्रशासन एक आवश्यक साधन तथा परिवर्तन के तन्त्र के रूप में कार्य कर सकता है।

(च) जन समस्याओं के समाधान तथा जनाकांक्षाओं की पूर्ति में विकास प्रशासन सशक्त भूमिका निर्वाहित कर सकता है।

(छ) सरकारी नीतियों, कानूनों, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के निरूपण तथा कार्यान्वयन में विकास प्रशासन अग्रणी है।

(ज) मानवीय संवेदनाओं तथा प्रतिबद्धताओं के क्रम में यह युक्तिसंगत व्यवस्था का पर्याय है।

(झ) सामाजिक-आर्थिक विकास, कार्यकुशलता तथा परिणामों की प्राप्ति के सम्बन्ध में आवश्यक नियन्त्रण व्यवस्था को संचालित करता है।

(ञ) प्रशासनिक विकास की महत्ता को विकास प्रशासन में गंभीरता से स्वीकार किया गया है अतः यह समयानुकूल सुधारों को प्रोत्साहित करना है।

10.13 सारांश

बीसवीं शताब्दी के मध्य में उपनिवेशवाद से मुक्त हुए एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के देशों के त्वरित विकास हेतु ऐसे तन्त्र की आवश्यकता थी जो सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों को नियोजित रूप से मूर्तरूप दे सके। लोक कल्याणकारी राज्यों के उद्भव तथा लोकतान्त्रिक मूल्यों के प्रसार के पश्चात् परम्परागत प्राशासनिक संरचनाएं एवं उनका कार्यकरण परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप नहीं था। अध्येताओं, प्रशासकों, राजनेताओं तथा आम जनता, सभी पक्षों की बढ़ती आवश्यकताओं तथा विवशताओं ने विकास प्रशासन को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक (क्रियात्मक) दोनों स्तरों पर प्रोत्साहित किया है। विकास प्रशासन, प्रशासन के एक नए स्वरूप का परिचायक बना जो विकासशील देशों की मूलभूत आवश्यकताओं से सम्बन्धित है। इसको परम्परागत नियामकीय प्रशासन के संशोधित संस्करण के रूप में स्वीकार किया जाता है। परिवर्तन, नियोजन, नवाचार, उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, कल्याणकारी कानून एवं नीति समसामयिक सुधार तथा लचीलापन इत्यादि इसके प्रमुख लक्षण हैं। यह किसी न किसी रूप में तथा किसी न किसी अंश में प्रत्येक संगठन में दृष्टव्य है।

यद्यपि यह सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों रूपों में अत्यधिक महत्व रखता है तथापि इसकी

अनेक समस्याएँ भी हैं। इन समस्याओं में संसाधनों की कमी, परम्परागत सामाजिक ढाँचा, जनसहभागिता की कमी, राजनीतिक अस्थिरता, शिक्षा एवं चेतना की कमी, प्रशासनिक अकुशलता तथा कठोर नौकरशाही, तकनीकों का अभाव, समन्वय की बाधाएँ, सामान्य-विशेषज्ञ विवाद, मंत्री-लोकसेवक संघर्ष, नीति एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन में बाधाएँ, संक्रमणकालीन परिस्थितियाँ तथा जनाधिक्य, प्रशासनिक व्यवस्था की अनिश्चयात्मकता, असन्तुलित विकास आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

10.14 उपयोगी पुस्तकें

1. मोहित भट्टाचार्या : डेवेलप्मेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन
2. मनोज दीक्षित : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
3. श्री राम माहेश्वरी : प्रशासनिक सिद्धान्त
4. बी0 एल0 फाडिया और कुलदीप फाडिया : लोक प्रशासन
5. अवस्थी और माहेश्वरी : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
6. फेलिक्स ए0 निगरो और लोईड जी0 निगरो : मॉडर्न पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
7. निकोलस हेनरी : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पब्लिक अफेयर्स
8. निशा वशिष्ट : भारत में नौकरशाही की कार्य प्रणाली
9. सुरेन्द्र कटारिया : तुलनात्मक प्रशासन
10. प्रीति जोशी : विकास प्रशासन

10.15 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

(1) विकास प्रशासन की परिभाषा तथा क्षेत्र का विवेचन कीजिए।

(2) विकास प्रशासन क्या है? प्रशासनिक विकास से यह किस प्रकार भिन्न है?

(3) विकास प्रशासन पर एक निबन्ध लिखिए।

(4) लोक प्रशासन तथा विकास प्रशासन के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

(5) विकासशील देशों के प्रशासन को विकास प्रशासन कहा जाता है। टिप्पणी कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) विकास प्रशासन की आवश्यकता क्यों मानी गई?

(2) रिग्स ने नौकरशाही की क्या विशेषताएं बताई हैं?

(3) तुलनात्मक प्रशासन तथा विकास प्रशासन में सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

(4) विकास प्रशासन के क्षेत्र का विवेचन कीजिए।

(5) विकास प्रशासन के प्रमुख लक्षण क्या हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) विकास प्रशासन का प्रमुख प्रवक्ता कौन सा देश था?

(क) अफ्रीका (ख) ब्रिटेन

(ग) अमरीका (घ) भारत

(2) विकास प्रशासन का प्रमुख लक्षण क्या है?

(क) परिवर्तन-उन्मुखी (ख) अमरीका-उन्मुखी

(ग) केन्द्रीकरण (घ) अधिनायकवाद

(3) कौन से विद्वान लोक प्रशासन तथा विकास प्रशासन को अलग-अलग मानते हैं?

(क) जे0 एन0 खोसला (ख) रिग्स और खोसला

(ग) रिग्स और कैडेन (घ) जार्ज ग्रांट

(4) कौन सा प्रशासन स्थायित्व पर आधारित है?

(क) तुलनात्मक प्रशासन (ख) प्रशासनिक विकास

(ग) विकास प्रशासन (घ) लोक प्रशासन

(5) विकास प्रशासन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया था?

(क) फ्रेड रिग्स (ख) जार्ज ग्रांट

(ग) यू0 एल0 गोस्वामी (घ) जे0 एन0 खोसला

10.16 प्रश्नोत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ग)
4. (घ)
5. (ग)

इकाई - 11 : विकास अधिकारीतन्त्र

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 अधिकारीतन्त्र या नौकरशाही की अवधारणा

11.3 विकासशील देशों की व्यवस्था तथा वेबर की अवधारणा

11.4 फ्रेड रिग्ज तथा अधिकारीतन्त्र

11.5 विकास अधिकारीतन्त्र का उदय

11.6 विकासशील देशों में नौकरशाही के लक्षण

11.7 विकास अधिकारीतन्त्र की भूमिका

11.8 विकास अधिकारीतन्त्र से अपेक्षाएँ

11.9 सारांश

11.10 उपयोगी पुस्तकें

11.11 सम्बन्धित प्रश्न

11.12 प्रश्नोत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- नौकरशाही का अर्थ तथा इस पर मैक्स वेबर के विचारों की विवेचना कर सकेंगे,
- वेबरीय अधिकारीतन्त्र के बाद नए विचारों का उल्लेख कर सकेंगे,
- फ्रेड रिग्स के अधिकारीतन्त्र पर विचारों की विवेचना कर सकेंगे,
- विकासशील देशों के अधिकारीतन्त्र की विशेषताएँ तथा कार्यक्षेत्र पर टिप्पणी कर सकेंगे,
- भविष्य में अधिकारीतन्त्र में सुधारों की आवश्यकता का उल्लेख कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रशासन एक प्रभावी माध्यम है। ये सार्वजनिक कल्याण में वृद्धि करने में कार्यरत रहता है। जब एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के देशों ने आजादी प्राप्त की तब उनके सामने आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विकास की अनेक चुनौतियाँ थीं। साथ-ही-साथ वह साम्राज्यवाद के लम्बे अनुभव से भी प्रभावित थे। आजादी के पश्चात अधिकतर देशों ने साम्राज्यवादी व्यवस्था की संस्थाओं को कुछ समय तक अपनाया। किन्तु समय के साथ उनको यह स्वीकार करना पड़ा कि पुरानी व्यवस्था तथा

उसके संगठन नए युग में अधिक प्रभावी नहीं है। उस समय 'विकास प्रशासन' का जन्म हुआ तथा उसको सफल बनाने के लिए एक 'विकास अधिनायकतन्त्र' को अपनाया गया।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में विकासशील प्रजातान्त्रिक राज्यों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में नौकरशाही की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विश्व के लगभग सभी प्रजातान्त्रिक राष्ट्र लम्बे समय से पाश्चात्य शक्तियों द्वारा शासित रहे। जनता को लम्बे समय तक दबाव में रहना पड़ा। वर्तमान समय में इन राष्ट्रों का प्रशासन समाज कल्याण एवं आर्थिक विकास से सम्बन्धित कार्यों के निष्पादन एवं नीतियों के क्रियान्वयन में द्रुतगति से संलगन है। ये राष्ट्र अपने राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कायाकल्प के लिए प्रतिबद्ध हैं। विज्ञान, तकनीकी विकास एवं औद्योगिकीकरण को ध्यान में रखते हुए इन राष्ट्रों ने अपने विकास की कल्याणकारी योजनाएं बनाई हैं। इनको पूरा करने का अधिकतर भर नौकरशाही पर होता है। इसलिए विकासशील राष्ट्रों में पूर्णतः विकसित एवं सुसंगठित नौकरशाही की आवश्यकता होती है। आज के युग में नौकरशाही के विस्तृत कार्यों को पूरा करने के लिए नौकरशाही की व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किए गए हैं। अब नौकरशाही केवल पुलिस या राजस्व अधिकारी मात्र नहीं हैं, अपितु उसने नए कार्य तथा उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिए हैं। वह विकास के अनेक प्रकार के कार्यों में तथा सहस्त्रों की परियोजनाओं के परिपालन में संलग्न है। इस नई नौकरशाही को ही 'विकास अधिनायकतन्त्र' की संज्ञा दी जाती है। आज की शासन प्रणाली में उसकी अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली भूमिका है। गत वर्षों में नौकरशाही की शक्तियों, कार्यों एवं प्रभाव में अत्यधिक वृद्धि हुई है। वह प्रत्येक देश के समाज तथा राजनीति का एक अविभाज्य अंग बन गई है तथा परिवर्तन के प्रमुख अभिकर्ता के रूप में कार्य करती है। लोकतन्त्र की सहज अभिव्यक्ति हेतु विकास की सीमाओं को कल्याण की भावना से परिपूर्ण करने की आवश्यकता होती है। इसका माध्यम शक्ति सम्पन्न अधिकारी वर्ग या नौकरशाही होती है।

11.2 अधिकारीतन्त्र या नौकरशाही की अवधारणा

नौकरशाही शब्द की उत्पत्ति मूल रूप से फ्रेन्च शब्द 'ब्यूरो' एवं 'क्रेसिया' से मिलकर हुई है, जिसका अर्थ है 'मेज' या 'डेस्क सरकार' वास्तव में नौकरशाही लोक सेवकों का एक ऐसा निकाय है, जो पद सोपान के रूप में संगठित होता है एवं प्रभावशाली सार्वजनिक नियन्त्रण के क्षेत्र से बाहर होता है। अधिक स्पष्ट रूप में नौकरशाही लोक प्रशासन के संचालन के लिए एक सामान्य रूपरेखा मात्र है। इस अवधारणा पर विस्तृत चर्चा पिछले खण्ड में की जा चुकी है। इस भाग में केवल मैक्स वेबर के द्वारा दिए गए विचारों का एक बार पुनः स्मरण करेंगे। संक्षेप में, वेबर ने नौकरशाही की निम्न विशेषताएं दर्शायी थी :

(क) संगठन के प्रत्येक सदस्य को विशिष्ट कर्तव्य सौंपे जाते हैं।

(ख) सत्ता का विभाजन होता है ताकि प्रत्येक सदस्य सरलता से अपने कर्तव्यों को पूरा कर सके।

(ग) इन कर्तव्यों के नियमित पालन के लिए सुचारू प्रबन्ध होता है।

(घ) पद परम्परा के सिद्धान्त पर संगठन का निर्माण किया जाता है।

(च) संगठन लिखित दस्तावेजों या अभिलेखों पर निर्भर होता है।

(छ) लेन-देन पर नियन्त्रण के लिए नियमों का निर्माण किया जाता है।

(ज) कर्मचारियों की भर्ती एवं प्राशिक्षण की व्यवस्था होती है।

अतः वेबर के अनुसार, अधिकारीतन्त्र नियमबद्ध संगठन होता है। यह आधुनिक संसार के युक्तिकरण का लक्षणात्मक है और तकनीकी तौर पर दक्षता की उच्चतम मात्रा को प्राप्त करने में सक्षम होता है। अधिकारीतन्त्र का विधिक आधार उसको परिकलनीयता और पूर्वानुमानेयता प्रदान करता है। उसकी श्रेष्ठता का एक अन्य पक्ष उसके पास तकनीकी ज्ञान का होना है। यह ज्ञान अधिकारीतन्त्रीय संगठन में व्याप्त सांगठनिक गुप्त बात की संकल्पना के द्वारा निरन्तर पुनर्बलित होता रहता है।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि वेबर ने संरचनात्मक अभिलक्षणें के आधार पर इस अवधारणा को समझाया। उन्होंने तर्क दिया था कि अधिकारीतन्त्र में निश्चितता, परिशुद्धता और पूर्वानुमेयता के लाभ हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि लोग बदल सकते हैं, तथापि अधिकारीतन्त्र में उनका व्यवहार स्थायी और एक समान बना रहता है। परन्तु वेबरोत्तर अध्ययन बलपूर्वक इशारा करते हैं कि संगठनात्मक कारकों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं पूर्वानुमेय नहीं होती हैं। व्यवहार में अधिकारीतन्त्र वैसा नहीं है जैसी कल्पना वेबर ने की थी- इसका पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है। राबर्ट के0 मर्टोन, फिलिप सेल्जनिक और और गोल्डनर का कहना है कि मानवों को मशीन मानने के अप्रत्याशित एवं अवांछित परिणाम होते हैं।

यद्यपि वेबर के प्रतिमान अद्वितीय था तथा नौकरशाही का आदर्श प्रारूप तथा व्यावहारिक कार्यप्रणाली सभी देशों में दिखाई दे जाती है किन्तु यह प्रतिमान प्रत्येक राष्ट्र में एक जैसा परिणाम प्रदान नहीं कर सकता है क्योंकि वेबर की कल्पना तथा संस्कार बिस्मार्ककालीन जर्मनी के वातावरण से प्रभावित रहे हैं।

11.3 विकासशील देशों की व्यवस्था तथा वेबर की अवधारणा

वेबर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त प्रशासनिक तन्त्र में कार्यकुशलता वैध तार्किक प्राधिकार तथा नियमबद्धता की आदर्श कल्पना करता है। इस प्रतिमान को विकासशील देशों में लागू करने के क्रम में कतिपय बिन्दु विचारणीय हैं:

(क) वेबर की नौकरशाही प्रणाली नियमबद्धता, कठोरता, कागजी कार्यवाही तथा अनुशासन पर आधारित है। इन विशेषताओं के कारण वह 'परिवर्तन' को सहजता से स्वीकार नहीं करती है। इसके विपरीत, तीसरे विश्व के देश प्रशासन के माध्यम से और सुनियोजित ढंग से 'सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन' लाना शासन का मुख्य लक्ष्य मानते हैं। इस कारण वेबर की नौकरशाही का कठोर प्रतिमान इन देशों में उपयोगी नहीं होगा।

(ख) वास्तव में नौकरशाही, स्वयं भी उसी व्यवस्था में प्रभावी ढंग से कार्य कर सकती है जहाँ समाज, राजनीति तथा अर्थव्यवस्था सहित सभी आवश्यक पर्यावरणीय घटक कुशल एवं परिपक्व हों। विकासशील देशों के रोगग्रस्त पर्यावरण में वेबर की नौकरशाही निष्प्रभावी सिद्ध हो सकती है।

(ग) विकासशील राष्ट्रों में प्रवर्तित लोक प्रशासनिक व्यवस्था अतीत की विरासत अर्थात् औपनिवेशक काल की अवशेष मानी जाती है। उपनिवेश शासन के दौरान नौकरशाही की जो भूमिका तथा स्थिति थी वह आज के सन्दर्भों में सर्वथा अनुपयुक्त है।

(घ) वेबर का प्रतिमान मुख्यतः पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में विकसित किया गया था जबकि विकासशील राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था समाजवादी या मिश्रित प्रकृति की है यह बाधाएं आती हैं।

(च) वेबर का प्रतिमान उच्च स्तरीय राजनीतिक प्रतिबद्धता तथा परिपक्वता की आवश्यकता प्रस्तुत

करता है जो कि विकासशील देशों में सम्भव नहीं होती हैं।

(छ) वेबर का प्रतिमान तार्किकता को महत्व देता है जबकि तीसरे विश्व के देश परम्परा के आधार पर काम करते हैं।

(ज) प्रो० सी० पी० भामरी ने यह माना है कि वेबर के तार्किक प्राधिकार तथा नौकरशाही प्रतिमान को ग्रहण करने में सावधानी रखनी चाहिए। भारत का उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि यहाँ ग्रामीण, नगरीय, महानगरीय स्तरों पर अनेक नौकरशाही बसती हैं। नई आर्थिक नीति की वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण प्रवृत्तियों ने 'संकरराष्ट्रीय नौकरशाही' को जन्म दे दिया है। संकरराष्ट्रीय नौकरशाही विदेशी पंजी बहुराष्ट्रीय निगमों तथा भारतीय पूंजीवाद के मध्य एक कड़ी है। लाखों भारतीय लोक सेवक, वेबर के नौकरशाही प्रतिमान के किंचित भी समीप नहीं हैं। अभी भी क्षेत्रीय, स्थानीय, जिला, प्रान्तीय तथा अन्य सामुदायिक परम्परागत वफादारियां प्रभावी भूमिका में हैं। गर्थ एवं मिल्स द्वारा संपादित 'फ्रोम मैक्सवेबर' नामक कृति मे स्पष्ट होता है कि भारत सहित अधिकांश एशियाई, अफ्रीकी एवं लैटिन अमेरिकी देशों में परम्परागत सम्बन्धों की बाजार अवधारणा पर नौकरशाही के आधुनिक वैश्वीकरण व्यवहार ने दबाव बना दिया है।

आज मानव समाज इतिहास की उस अवस्था में पहुँच चुका है जहाँ विक्षोभ, अनिश्चितता और परिवर्तन पूर्ण रूप से विद्यमान है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रही मन-प्रकंपी प्रगतियों के लिए नए अनुक्रिया तन्त्रों की आवश्यकता है जो स्पष्टतया पारम्परिक वेबरीय अधिकारीतन्त्र की परिधि और क्षमता से अलग है। नई समस्याओं और चुनौतियों से मुकाबला करने में वेबर का अधिकारीतन्त्र का 'मशीन मॉडल' असक्षम है।

विकासशील देशों की नई समस्याओं और चुनौतियों से मुकाबला करने के लिए नए गुणों की आवश्यकता है। इसके परिणामस्वरूप, बदले हुए परिप्रेक्ष्य में नौकरशाही की अवधारणा में भी अनेक परिवर्तन आए हैं।

11.4 फ्रेड रिग्ज तथा अधिकारी तन्त्र

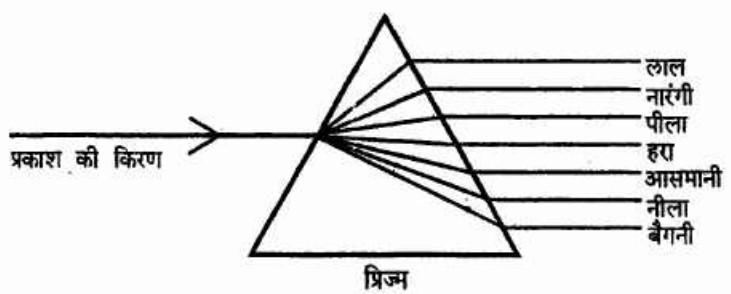
वेबर से सबसे अधिक पृथक सिद्धान्त फ्रेड डब्ल्यू० रिग्स ने प्रस्तुत किया। रिग्स न केवल वेबर से अलग हो गए बल्कि उन्होंने एक 'प्ररूपविज्ञान' भी प्रस्तुत किया, जो उनके विचार से सभी ब्यौरे में पूर्ण एक प्रतिस्थानिक मॉडल था। यह प्ररूपविज्ञान समाज के विकास (विवर्तन) की प्रावस्था पर आधारित है। उनको विभिन्न समाजों द्वारा प्राप्त विकास में एक प्रारूप दिखाई दिया और उन्होंने उनको पारम्परिक, विकासशील और आधुनिक तन्त्रों मे आबंटित होते हुए पाया। विकास की प्रत्येक प्रावस्था अधिकारीतन्त्र के एक अनन्य मॉडल को जन्म देती है। पारम्परिक, विकासशील और आधुनिक समाज को रिग्स ने संयुक्त (फ्यूज्ड) प्रिज्मीय (प्रिज्मैटिक) और विवर्तित (डिफ्रैक्टेड) की संज्ञा दी।

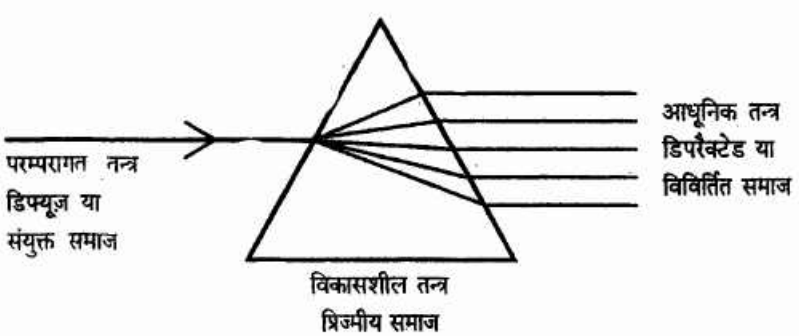
प्रत्येक प्रावस्था का लोक प्रशासन या अधिकारीतन्त्र का अपना एक मॉडल होता है। इस प्रकार निम्नलिखित प्ररूपतन्त्र प्राप्त होता है।

विकास का स्तर	समाज का प्रकार	अधिकारीतन्त्र का प्रकार
पारम्परिक	संयुक्त	चेम्बर
विकासशील	प्रिज्मीय	साला
आधुनिक	विवर्तित	ब्यूरो या कार्यालय

रिग्स का प्रतिपादन है कि प्रशासनिक व्यवहार को उसके परिवेश अर्थात् 'पारिस्थितिकी' के संदर्भ में देखना जरूरी है। उन्होंने थाईलैण्ड और फिलीपीन्स के अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि पर्यावरणीय परिस्थितियां किस प्रकार प्रशासन को प्रभावित करती हैं। उनकी यह दृढ़ मान्यता रही है कि किसी भी देश में लोक प्रशासन की प्रवृत्ति को, उस देश के सामाजिक विन्यासों को भलीभांति समझे बिना, विश्लेषित नहीं किया जा सकता है। रिग्स इसमें सभी कारकों, मानवीय और भौतिक दोनों ही, को शामिल नहीं करता है। केवल उन्हीं संवेदी कारकों को शामिल करता है जो प्रशासनिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं या उससे प्रभावित होते हैं। इन अध्ययनों में उन्होंने सामाजिक-आर्थिक, संचार तथा राजनीतिक अवयवों को सम्मिलित किया है मनोवैज्ञानिक अवयवों को नहीं (एक अन्य शोध में रिग्ज ने भौगोलिक परिस्थितियों, समय, जनसांख्यिकीय, राष्ट्रीय मनोविज्ञान तथा सामाजिक प्रविधि के अन्य आयामों को भी सम्मिलित कर परिस्थितिकीय आगम की प्रशासनिक अध्ययनों में उपादेयता सिद्ध की है।)

पारिस्थितिकी की अपनी संकल्पना के विकास के लिए रिग्ज ने समाजशास्त्र से संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण के उपकरणों (जैसे कि, अन्योन्याश्रित उप-तन्त्रों, प्ररूपचरों और गुप्त एवं अभिव्यक्त प्रकार्यों) को अपनाया है। उसके आधार पर समाज के तीन रूप प्रस्तुत किए हैं। प्रिज्म के भीतर से गुजरते हुए प्रकाश के रूपक का प्रयोग करते हुए,. एक ओर संयुक्त समाज और दूसरी ओर विवर्तित समाज प्रस्तुत किया है। संयुक्त और विवर्तित के बीच समाज को प्रिज्मीय कहा गया है।





विकासशील देशों की व्याख्या करने के लिए रिग्स ने समपार्श्वीय प्रतिमान (Prismatic Model) का प्रयोग किया। रिग्स के अनुसार समपार्श्वीय समाज वह होता है- "जिसमें भेद करने का एक विशेष स्तर प्राप्त कर लिया गया हो, भूमिकाओं की विशेषज्ञता (संरचनाओं की) प्राप्ति कर ली गई हो, जो आधुनिक औद्योगिकी से निपटने के लिए आवश्यक है किन्तु इन भूमिकाओं को एकीकृत करने में वह विफल रहा है।"

समपार्श्वीय समाज, संयुक्त एवं विवर्तित दोनों समाजों के मूल्यात्मक आदर्शों के कुछ अंश

धारण किए हुए होता है। इसके तीन प्रमुख लक्षण हैं:

1. विजातीयता (Heterogenity)
2. औपचारिकतावाद (Formalism)
3. अतिराव (Overlapping)

समपार्श्वीय समाजों की प्रशासनिक उपव्यवस्था को रिग्स ने "साला मॉडल" या प्रतिमान के रूप में वर्णित किया है। विवर्तित समाजों में इनके पूरकों को 'ब्यूरो' (Bureau) या 'आफिस' (Office) तथा संयोजित अथवा संयुक्त समाजों में चेम्बर (Chamber) कहा गया है। साला प्रतिमान एक ऐसे प्रशासन के अस्तित्व का द्योतन करता है जो विवर्तित कार्यालय और संयुक्त चेम्बर का अंतर्ग्रथित मिश्रण है। जो लोग साला में काम करते हैं वे 'सालाक्रेट' या 'प्रिज्मीय अधिकारी' या 'साला पदधारी' या 'सालामेंट' होते हैं। "साला" एक स्पेनिश शब्द है जिसका अर्थ है- सरकारी कार्यालय, धार्मिक अधिवेशन या कमरा इत्यादि। यह शब्द भारत तथा पूर्वी एशियाई देशों में लगभग इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। (संस्कृत में पाठशाला, धर्मशाला इत्यादि)

दोनों समाजों का मिश्रण होने के कारण, इस प्रतिमान में परम्परागत सम्बन्धों का प्रभाव दिखता है किन्तु प्रशासनिक तार्किकता एवं कार्यकुशलता नहीं दिखाई देती। सालाको भी गैर प्रशासनिक कारक प्रभावित करते रहते हैं। इस प्रशासनिक व्यवस्था की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(क) भाई-भतीजावाद, पक्षपात तथा भ्रष्टाचार पाया जाता है। समाज, जाति, धर्म, वंश, क्षेत्र तथा सम्बन्धों इत्यादि के आधार पर प्रशासन का दुरूपयोग किया जाता है।

(ख) प्रशासनिक अधिकारी सामाजिक, आर्थिक, सामुदायिक तथा राष्ट्रीय विकास एवं कल्याण में ध्यान देने की अपेक्षा व्यक्तिगत उन्नति को अधिक महत्व देते हैं। सरकारी योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों तथा सुविधाओं का कुछ ही व्यक्ति लाभ उठा पाते हैं।

(ग) बहुसम्प्रदायवाद बहुत सी प्रशासनिक समस्याएं उत्पन्न करता है। अनुपातिक प्रतिनिधित्व, आरक्षण तथा कोटा के नाम पर अल्पसंख्यकों के लिए विशेष प्रावधान किए जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में सामाजिक कटुता तथा संतुलन बिगड़ भी सकता है।

(घ) अधिकारी नौकरशाही में योग्यता या प्रतिस्पर्धा के आधार पर नियुक्ति पाते हैं किन्तु पदोन्नति के लिए गठबंधन तथा अन्य अवैध साधनों का सहारा लेते हैं।

(च) सरकारी कार्मिक नए एवं आधुनिक नियमों तथा सुधारों को अपनाने का दावा करते हैं किन्तु प्रतिदिन के कार्यों में "वही ढाक के तीन पात" बने रहते हैं।

(छ) प्रत्येक व्यक्ति नियमों, कानूनों तथा सिद्धान्तों की दुहाई देता है किन्तु स्वयं का कार्य अटक जाने पर नियमों में छूट की प्रार्थना करता है या कानून तोड़ना अपनी शान समझता है।

(ज) विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था के लिए भी यहाँ अत्यधिक केन्द्रीकृत सत्ता पायी जाती है। प्राधिकार केन्द्रीकृत किन्तु नियन्त्रण स्थानीकृत और विस्तृत होता है।

(झ) इन समाजों में अधिकारिक तौर पर अनुमति प्राप्त सत्ता तथा कानूनी सत्ता (De Jure), वास्तविक सत्ता (De Facto) के सामने झुक जाती है। इन समाजों में प्रभु जाति, सेठ-साहूकार, अफसर तथा राजनेता 'वास्तविक सत्ता' का रूप धारण कर लेते हैं।

(ट) बहुत सी संरचनाएं तो वे कार्य करती हैं जिन कार्यों को समाप्त करने के लिए उन्हें बनाया जाता है। (जैसे पुलिस द्वारा अपराध-प्रसार)

(ठ) संवैधानिक दृष्टि से राजनीतिज्ञों की सर्वोच्चता होते हुए भी नौकरशाही की प्रशासनिक व्यवस्था, उन पर हावी रहती है। यही कारण है कि लोक नीति तथा जन कल्याण कार्यक्रम प्रभावित होते हैं। अकुशल एवं भ्रष्ट अधिकारी भी राजनीतिज्ञों से पुरस्कार पा सकते हैं जबकि योग्य एवं कुशल अधिकारी को बार-बार प्रताड़ित किया जा सकता है।

(ड) राजनीतिक आधार पर ताकतवर अधिकारी प्रायः कम प्रभावशाली प्रशासक सिद्ध होते हैं। गांव, जिला, जाति, रिश्तेदारी, वोटबैंक, लिंग, धर्म तथा स्कूली सम्बन्ध इत्यादि प्रशासकों पर हावी रहते हैं। समाज में सेवा के लिए उचित अभिप्रेरणा की कमी रहती है। पदधारी उन लोगों को तरजीह देते हैं जो उनके अपने समुदायों के होते हैं। परिणामस्वरूप, समाज की विभिन्न दिशाओं में खींचा-तानी बनी रहती है और उसके भीतर मतैक्य की कमी रहती है।

(य) लोग विभिन्न मानकों एवं मूल्यों में आस्था रखते हैं, जिसके फलस्वरूप समाज के सदस्यों के बीच अपसारिताएं और विभिन्नताएं पैदा हो जाती हैं। पारम्परिक एवं आधुनिक विचार एक साथ बने रहते हैं और आपस में टकराते रहते हैं। साला लोक प्रशासन में अत्यन्त आधुनिक संरचनाओं और प्रक्रमों के साथ-साथ पारम्परिक एवं प्राचीन संरचनाएं और प्रक्रम भी छोटे हैं। शहरी क्षेत्रों में आधुनिक संरचनाए और शैलियां होती हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में पुरातन दृष्टिकोण और मूल्यों का प्राधान्य रहता है। इस प्रकार शहरों में कम्प्यूटर दिखाई देते हैं, परन्तु ऐसा ग्राम प्रचारी भी होता है जो प्रशासनिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी काम स्वयं करता है।

(र) यहाँ के बाजार में कीमत अनिर्धार्यता व्याप्त रहती है और बहुत सौदेबाजी चलती है। कीमतें एक स्थान से दूसरे स्थान के बीच अलग-अलग होती हैं। साला अधिकारीतन्त्र में विषमांगता और आकारवाद पाया जाता है तथा वह अतिव्यापी भी होता है।

11.5 विकास अधिकारीतन्त्र का उदय

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात अनेक राष्ट्रों को औपनिवेशिक ताकतों से स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इन देशों को विकासशील समाज के अन्तर्गत रखा गया। यह देश अपने लक्ष्यों को समझने, स्पष्ट करने तथा उन्हें प्राप्त करने में संलग्न हो गए। देश के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु लोक सेवकों द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास आरम्भ हुआ। विकासशील देशों में समाज के उद्देश्य के अनुरूप ही प्रशासन के उद्देश्य और कार्य निश्चित होते हैं। इन देशों के सामने विकास- आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक- एक चुनौती के रूप में उभर कर सामने आया। इस लक्ष्य को लेकर चलने वाले देशों में अधिकारीतन्त्र के स्वरूप पर चर्चा आरम्भ हो गई। विकास को एक नियोजित एवं राज्य-संचालित और प्रायोजित प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जा रहा था। विकास के इस रूप को प्राप्त करने के लिए अधिनायकतन्त्र को 'विकास प्रबन्धन' में एक प्रमुख भूमिका प्रदान की गई। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को सफलता से पूरा करने के लिए देशों ने अपनी प्रशासनिक क्षमता पर निर्भर करना प्रारम्भ किया। इसके परिणामस्वरूप उन्हें अपनी प्रशासनिक क्षमता तथा व्यवस्था में समयानुकूल परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी।

अनेक अध्ययनों के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था पाश्चात्य देशों की नकल मात्र है। साथ ही, यहाँ के अधिकारीतन्त्र में विकास कार्यक्रमों को संचालित करने वाली दक्ष मानव शक्ति का अभाव पाया जाता है। यहाँ के अधिकारीतन्त्र में औपचारिकता तथा लाल-फीताशाही को अत्यधिक महत्व दिया जाता रहा। इन देशों में प्रशासकों में एक झूठा अहं समाया हुआ है कि वह जनता के स्वामी हैं, न कि सेवक, क्योंकि इनके पास अभी भी औपनिवेशक काल से चली आ रही कार्यात्मक स्वायत्ता है।

विकास का लक्ष्य इन देशों के लिए महत्वपूर्ण माना गया। किन्तु वेबर के द्वारा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्त में कुछ संरचनात्मक लक्षण, क्रियात्मक प्रक्रियाएँ तथा व्यवहारवादी संकेत थे जो कि विकास के कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं थे। इस व्यवस्था में कुछ परिवर्तन लाकर एक विकास अधिनायकतन्त्र को उसके स्थान पर अपनाने का सुझाव आया। ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता थी जो विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहे। केवल लोक प्रशासन के 'पोस्डकार्ब' (POSDCORB) कार्यों को पूरा करने के अतिरिक्त यह नए लक्ष्यों को भी स्वीकार करे। साथ ही, वह देश की अखण्डता के लिए भी कार्य करे। जे0 एन0 खोसला, पूर्व-निदेशक, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, ने यह स्वीकार किया है कि लोक प्रशासन का पश्चिमी दृष्टिकोण और वेबर का अधिनायकतन्त्र का सिद्धान्त विकासशील देशों में अपनाया नहीं जा सकता। उसको राजनीतिक दृष्टि से उपयुक्त बनाने की आवश्यकता पड़ेगी। उसी प्रकार पानिन्दीकर ने भी एक नई व्यवस्था को बनाने की आवश्यकता पर बल दिया था। उन्होंने 1967 में अपने लेख 'डेवेलप्मेट एडमिनिस्ट्रेशनः एन अप्रोच' में लिखा था कि विकास प्रशासन का एक प्रमुख लक्ष्य होता है सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तन लाना, जिसको कि कुछ निर्धारित कार्यक्रमों तथा योजनाओं के द्वारा पूरा किया जाता है। इन विशेष लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होता है कि परम्परावादी व्यवस्था तथा 'कार्यपालिका-उन्मुखी' (executive-oriented) व्यवस्था में परिवर्तन किए जाए। इस आधार पर, द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात विकास प्रशासन में अधिकारीतन्त्र का एक नया रूप सामने आया।

11.6 विकासशील देशों में नौकरशाही के लक्षण

इस प्रकार विकासशील देशों में बहु-सांप्रदायिकता, बहु-मानकीयता, स्वजन-पक्षपात, बाजार-कैंटीन मॉडल पर आधारित, आर्थिक उप-तंत्र और प्राधिकार बनाम नियन्त्रण विद्यमान होता है। चूँकि नियमों के लागू करने में व्यक्तिनिष्ठ पूर्वाग्रहों और कभी-कभी मौट्रिक तुष्टि के कारण विकृतियां आ जाती हैं, पूर्ण न्याय प्राप्त नहीं हो पाता। जिन चीजों को मुफ्त प्राप्त करने का नागरिकों का हक होता है उनकी प्राप्ति के लिए भी नागरिकों को रिश्वत देनी पड़ती है। यह सब विकृतियाँ विकासशील समाजों में पाई जाती हैं।

विकासशील देशों में विकसित देशों की अपेक्षा प्रशासनिक उपव्यवस्थाओं में भिन्नताएं पाई जाती हैं। इन भिन्नताओं का कारण है इन देशों में अधिक जनसंख्या, विभिन्न संस्कृतियां और उनके अपने-अपने ऐतिहासिक अनुभव। तीसरे विश्व के अधिकतर देश किसी विदेशी साम्राज्य के शासनाधीन रहे हैं। एक लम्बे समय की गुलामी के बाद जब उपनिवेशी शासक इन देशों से गए तब यह उपनिवेशक प्रशासन या नौकरशाही इनको विरासत में प्राप्त हुई। साथ ही, इन देशों में नौकरशाही की दूसरी परत भी पाई जाती है। इन देशों में एक नई लोक सेवा का विकास किया गया है जो कार्मिक, लक्ष्यों, विभागों तथा क्रियाओं की दृष्टि से नई थी। इनमें नए अधिकारियों की भर्ती की गई जिनमें से अधिक ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया था। यह अधिक विकास, शैक्षिक और सामाजिक उन्नति आदि नए लक्ष्यों के समर्थक थे। जिन अधिकारियों की भर्ती की गई उनको भूतपूर्व उपनिवेशक लोकसेवा की अपेक्षा राजनीतिक उत्तरदायित्व की भावना और राजनीतिक विकास का कहीं अधिक स्पष्ट और उच्चारणीय ज्ञान था।

जिन देशों ने कभी उपनिवेशवाद का अनुभव नहीं किया वहाँ एक परम्परागत प्रशासनिक व्यवस्था विद्यमान थी। कुछ देशों में मध्यपूर्व के देशों की भाँति 'राजशाही' तथा कुछ में 'अल्पतन्त्रीय-गणतन्त्रात्मक' व्यवस्था, जैसे अधिकतर दक्षिणी अमरीका के देशों में देखी जाती

फेरेल हैडी ने विकासशील देशों की नौकरशाही में पाई जाने वाली कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार बताई हैं:

(क) प्रशासन का मूल प्रारूप देशी न होकर अनुकरणात्मक है।

(ख) विकास के कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए जिस कुशल जनशक्ति की आवश्यकता है, नौकरशाही में उसकी कमी पाई जाती है।

(ग) यह नौकरशाही ऐसी धारणाओं पर बल देती है जो उत्पादनोन्मुखी नहीं होती, अर्थात् वे कार्यक्रमों के लक्ष्यों की प्राप्ति को छोड़कर, अन्य लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कार्य करती हैं।

(घ) इन व्यवस्थाओं में आकार और यथार्थता के बीच विशाल भेद होता है।

(ङ) यहाँ परिचालन की स्वायत्ता पाई जाती है।

यह सभी विशेषताएँ मिलकर नौकरशाही की वैधता कार्य-कुशलता और राज-प्रत्युत्तरदायिता को कम करती हैं। ऐसी नौकरशाही अत्यधिक श्रेणीबद्ध होने की प्रवृत्ति रखती है और उन पर ऐसे समूह का प्रभुत्व हो जाता है जो सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टि से साधारण जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करता।

हैडी ने विकसित देशों की नौकरशाही की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उनको विकासशील देशों की व्यवस्था से भिन्न माना है। उनका विश्वास है कि विकसित देशों में नौकरशाही का आकार बड़ा एवं जटिल होता है तथा वह सरकार के सहायक के रूप में कार्य करती है। यहाँ के अधिकारी पेशेवर होने की भावना को दर्शाते हैं। यह व्यावसायिक अथवा तकनीकी विशेषीकरण के संकुचित क्षेत्र से जुड़ी होती है। राजनीतिक प्रक्रिया में नौकरशाही की भूमिका काफी स्पष्ट होती है। नौकरशाही तथा अन्य राजनीतिक संस्थानों के विभाजन की रेखा प्रायः निश्चित एवं मान्य होती है। इसका कारण यह है कि समूचे तौर पर राजनीतिक व्यवस्था अपेक्षाकृत स्थायी एवं पूर्ण पक्व होती है तथा नौकरशाही पूर्णतया विकसित होती है। इन देशों में नौकरशाही पर अन्य क्रियागत विशिष्ट राजनीतिक संस्थाओं द्वारा प्रभावी नीति-नियन्त्रण रखा जाता है।

अधिक विकसित देशों में प्रशासनिक उपव्यवस्थाओं में उच्च श्रेणी का कार्य-विशेषीकरण होता है। रिग्स ने उन्हें विशेषीकरण पर आधरित राजनीतिक व्यवस्था माना है। यहाँ प्रशासनिक ढ़ाँचे बड़ी संख्या में होते हैं। इन व्यवस्थाओं में कार्यों का बँटवारा पारिवारिक स्थिति अथवा सामाजिक वर्ग के आधार पर न करके व्यक्तियों की व्यक्तिगत उपलब्धियों के आधार पर किया जाता है। यह व्यवस्था सर्व-हितवाद तथा उपलब्धि-अनुकूलन की दृष्टि से बहुत उच्च स्तर की होती है। यहाँ औपचारिक राजनीतिक ढाँचे होते हैं, जिसमें पहले से निर्धारित किए गए नियमों के द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है। इन देशों में राजनीतिक निर्णय राजनीतिज्ञ लेते हैं तथा प्रशासनिकों का कर्तव्य होता है प्रशासनिक निर्णय लेना। परम्परागत विशिष्ट वर्ग सरकारी निर्णयों को प्रभावित करने का हक खो बैठते हैं। इन देशों में सरकार की क्रिया का क्षेत्र सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत मामलों के बहुत बड़े दायरे तक फैला होता है। सार्वजनिक कार्यों में जनता की रूचि बहुत अधिक होती है तथा राजनीतिक चेतना उच्च मात्रा में होती है। अतः निर्णय-निर्माण तथा उन्हें लागू करने की प्रक्रियाओं में जनता के सक्रिय भाग लेने के लिए जनता का संघटन किया जाता है। सरकारी अथवा राजनीतिक नेतृत्व के पदों पर कार्य करने वाले व्यक्तियों को उन पदों के लिए उचित माना जाता है तथा इस नेतृत्व को परिवर्तित करने के लिए निश्चित एवं व्यवस्थित कार्य विधियों को ही अपनाया जाता है।

विकसित एवं अधिक विकसित देशों की नौकरशाही से तुलना कर के यह स्पष्ट होता है कि विकासशील देशों की अधिकारीतन्त्रीय व्यवस्था की विकृतियाँ क्या हैं तथा उनके पीछे सामाजिक तथा ऐतिहासिक तत्व कौन से हैं।

11.7 विकास अधिकारीतन्त्र की भूमिका

प्राचीन नकारात्मक उपागम का स्थान अब सकारात्मक उपागम ने ले लिया है। उन्नीसवीं शताब्दी के नकारात्मक दृष्टिकोण के स्थान पर आज कार्मिक प्रशासन का सकारात्मक सिद्धान्त अधिक मान्य है। यह अवधारणा अधिकारियों में सकारात्मक प्रेरणा उत्पन्न करती है, जिससे कि वे कल्याणकारी कार्य कर सकें। सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ वर्तमान समय में एक प्रमुख विशेषता है- औद्योगीकरण। इसके साथ-साथ राज्य का कार्यक्षेत्र भी विकसित हुआ है। लोक कल्याणकारी राज्यों की स्थापना तथा समाजवादी समाज की धारणा विकास के लक्ष्य के साथ जुड़ गई है। इन नए लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नियोजित पद्धति को महत्व दिया जाता है। अतः वर्तमान युग में नौकरशाही के कार्य-क्षेत्र एवं महत्व में वृद्धि पाई गई है।

विकासशील देशों में समाज के उद्देश्यों के अनुरूप ही प्रशासन के उद्देश्य और कार्य निश्चित होते हैं। राज्य विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करता है, जैसे कृषि विकास एवं उत्पादन के सम्बद्ध क्षेत्र, सुरक्षा और शान्ति व्यवस्था, लोक कल्याण, सांस्कृतिक विकास, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास तथा जीवन की सभी प्रकार की आवश्यकताओं को सम्पन्न करना। राज्य ने जिन दायित्वों को ग्रहण किया है, उनसे प्रशासन का सम्बन्ध जुड़ जाता है। समाज में होने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में प्रशासन पर पड़ता है। इस आधार पर आज के आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारिक तथा राजनैतिक सम्बन्धों और वातावरण के परिवेश में लोक सेवकों को केवल परम्परागत कार्यों तक सीमित नहीं किया जा सकता। उन्हें नए वातावरण में नई आकांक्षाओं के साथ अपने कार्यों को सम्पन्न करते हुए अपनी भूमिका को निभाना है। उनके कार्यों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है:

(क) अधिनायकतन्त्र का कार्य है परिवर्तनशील स्थितियों में अपने लक्ष्य निर्धारित करना एवं नए-नए कार्यों का अनुमान लगाना। उनका उद्देश्य है समाज की परिवर्तनशील स्थिति के अनुरूप शासकीय संरचना को ढालना। इस प्रकार नौकरशाही भविष्य पर दृष्टि रखते हुए विश्लेषणात्मक रूप से विचार करती है, प्राचीन व वर्तमान की नीतियों को पुनः निर्धारित करते हुए नई नीतियों व योजनाओं का सूत्रपात करना, नए-नए कार्य, योजनाओं एवं नीतियों को लागू करने के लिए संगठन में आवश्यक परिवर्तन करना। उदाहरण के लिए वर्तमान संगठनात्मक संरचना का बारीकी से अध्ययन कर उसकी कमजोर कड़ियों को सुदृढ़ बनाना, सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों को लागू करने के लिए प्रशासन के निम्न स्तरों को प्रोत्साहित करना। पुनर्गठित संगठनात्मक संरचनाएं, प्रक्रियाएं आदि तब तक निरर्थक हैं जब तक उन पर कार्य करने वाले लोगों को व्यावसायिक सन्तोष न मिले। प्रशासन द्वारा हर स्तर पर राजनैतिक नेतृत्व एवं प्रशासन के मध्य घनिष्ठ सम्पर्क एवं सम्बन्ध बढ़ाने के प्रयत्न किए जाने चाहिए। विकासशील प्रशासन के सन्दर्भ में राजनैतिक समायोजनीयता एवं प्रशासकीय नेतृत्व की व्यवहार्यता सफलता के लिए अपरिहार्य है।

(ख) लोकसेवकों को नीति परामर्शदाता के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। वह प्रशासनिक अनुभव और निरन्तरता के सहारे मंत्रियों को परामर्श दे सकती है; सूचनाएँ एवं आँकड़े प्रदान कर सकती है और यहाँ तक कि औपचारिक रूप से चेतावनी भी दे सकती है। अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार केवल राजनीतिज्ञ को ही प्राप्त होता है। इस प्रकार लोक सेवक नीति-निर्माण में केवल परामर्शदाता की भूमिका निभाते हैं।

(ग) अधिनायकतन्त्र का प्रमुख कार्य शासन द्वारा दी गई नीतियो को क्रियान्वित करवाना होता है। इसके कारण वह जनता के सामने राजनीति के अभिकर्ता के रूप में प्रस्तुत होता है। विकास हेतु सरकार द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं, परियोजनाओं, नीतियों आदि का

क्रियान्वयन लोक सेवाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(घ) प्रायः सभी विकासशील देशों में विकास के प्रमुख अभिकर्ता प्रशासक होते हैं। विकासशील देशों में लोक सेवाएँ योग्य एवं प्रबुद्ध वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो प्रायः राजनीतिक स्तर से उच्च बौद्धिक स्तर की होती हैं। इन देशों में आर्थिक, सामाजिक परिवर्तन प्रशासन तन्त्र के द्वारा ही ला पाना सम्भव लगता है।

(च) विकास प्रशासन राष्ट्र-निर्माण तथा आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है। एशिया तथा अफ्रीका के उभरते हुए देशों में सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में संगठनात्मक प्रक्रिया का निर्देशन करने से आगे निकला है। प्रशासन के सम्मुख राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय व्यक्तित्व को स्थापित करने का अति कठिन कार्य होता है। उसे इतना सशक्त होना चाहिए कि कबीलों और क्षेत्रीय प्रतिस्पर्धा की पृथकतावादी शक्तियों को दबा सके तथा दूसरी ओर परम्परागत समाजों में परिवर्तन के लिए जोश उत्पन्न कर सके। जाति, प्रजाति, भाषा, धर्म, कबीले के भेद प्रायः कई विकासशील देशों की एकता, स्थिरता तथा प्रगति के लिए खतरा उत्पन्न करते हैं। अतः यह नौकरशाही का कार्य है कि वे या तो इनका उन्मूलन करें या संतोषजनक ढंग से उप-सांस्कृतिक भेदों का मेल करें। यह कार्य आर्थिक विकास से भी अधिक कठिन सिद्ध हो सकता है।

(छ) लोकतान्त्रिक व्यवस्था को स्थापित करने में भी अधिकारीतन्त्र की भूमिका होती है। तीसरे विश्व के अधिकांश देश मौखिक तौर पर लोकतन्त्र को स्वीकार करते हैं किन्तु लोकतान्त्रिक मूल्यों और प्रक्रियाओं के प्रति वास्तव में वचनबद्ध नहीं हैं। हिन्दुस्तान, इजराइल, मैक्सिको में मुख्य लक्ष्य के रूप में लोकतन्त्र को वही दर्जा दिया जाता है जो आर्थिक विकास को।

(ज) बहुत से विकासशील देशों में नौकरशाही राजनीति समाजीकरण का महत्वपूर्ण कार्य करती है। एक प्रशासनिक यन्त्र होने के अतिरिक्त यह स्वयं एक प्रभावी कार्यकारिणी अथवा उसका एक भाग बनी है। यह राजनीतिक लक्ष्यों को निर्धारित करने और उनको लागू करने में भी भूमिका निभाती है।

(झ) ईसनतैट ने यह स्वीकार किया है कि विकासशील देशों में नौकरशाही ने एक संगठित राज्य के आकार को बनाए रखने में सहायता की है। साथ में, इसमें वह क्षमता भी उत्पन्न की है जो विभिन्न माँगों का विलयन कर सके और प्रभावी ढंग से नियन्त्रित कर सके। नौकरशाही न केवल एकीकरण और केन्द्रीकरण का महत्वपूर्ण उपकरण बनी, अपितु इसने शासकों की निरन्तर नीति लागू करने में सहायता की। इसके अतिरिक्त इसने साधनों का संघटन कर जनशक्ति और राजनीतिक समर्थन के लिए भी महत्वपूर्ण उपकरण का काम किया है।

(ञ) प्रशासकों को इन देशों में जन सेवक के रूप में कार्य करना होता है। विकासशील देशों में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र के नवीन अनुबन्धों ने लोक सेवक को शासक एवं सेवक की परम्परागत भूमिका से हटकर मित्र और साथी की भूमिका में खड़ा कर दिया है। आज प्रशासक जनता के समीप पहुँच गया है, जो लोक सम्पर्क की आवश्यकता और उपयोगिता का अनुभव करता है। वह जनता को परामर्श देता है, उसे शिक्षित करता है, प्रशिक्षित करता है, सहायता करता है तथा जनता से सहयोग प्राप्त करता है। विकासशील देशों की आवश्यकताओं की पूर्ति जनता के सहयोग के अभाव में पूरी नहीं हो सकती। यह सहयोग तभी प्राप्त होगा जब जनता को उसकी आवश्यकताओं के सन्दर्भ में पहले उचित सहयोग दिया जाए। अतः प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का एक मुख्य उपकरण है तथा सामाजिक संघर्ष में मुख्य मार्गदर्शक है जिसके माध्यम से विभिन्न हितों को नियन्त्रित एवं समुचित किया जाता है।

अतः, विकासशील देशों में विकास एवं प्रगति के कार्यों में अधिकारीतन्त्र का महतवपूर्ण योगदान माना जाता है। इन देशों में लोक-सेवाओं के माध्यम से ही समाज में आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन आया है।

भारत के भूत-पूर्व गृह-मन्त्री. श्री गोविन्द वल्लभ पन्त ने बदलते हुए परिप्रेक्ष में लोक सेवकों के कार्य की समीक्षा करते हुए कहा था कि:

"लोक सेवकों के नये दायित्व जटिल हो गए हैं। उनके कार्यों में नियोजन, नियन्त्रण तथा समस्त सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं को निर्देशित करने के कार्य आते हैं। कार्य जिस रूप में सम्पन्न हो रहे हैं उनका प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। जनता का कल्याण पूर्णरूपेण लोक सेवकों की उस इच्छा और प्रवृत्ति पर निर्भर करता है जिससे उनमें कार्य को समझने तथा उनको सहानुभूतिपूर्वक सम्पन्न करने की भावना निहित हो।"

वर्तमान समय में नौकरशाही का अत्याधिक महत्व है। इस नौकरशाही की शक्ति का आभास अकेले प्रशासन से ही नहीं प्राप्त होता है, बल्कि विधान एवं वित्तीय क्षेत्रों में भी होता है। यह केवल विधियों को क्रियान्वित ही नहीं करती है, अपितु प्रायः उन्हें निर्मित भी करती है। यह करों से प्राप्त राशियों का केवल व्यय ही नहीं करती है बल्कि यह भी प्रायः निश्चित करती है कि कितनी राशि किस प्रकार के कर द्वारा एकत्रित की जाय और उसके व्यय की नीति क्या हो।

इस प्रकार अधिकारीतन्त्र विकासशील देशों में नागरिक के जन्म से मृत्यु तक समस्त क्रियाओं के साथ सम्बन्धित रहता है। आज का लोक-सेवक केवल प्रशासक ही नहीं रह गया है, अपितु वह समाज का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। हालाँकि विकसित एवं विकासशील देशों में अधिकारीतन्त्र के कार्य अलग-अलग होते हैं ऐसा नहीं है। परन्तु समाज के बदलते हुए स्वरूप का राज्य की व्यवस्था व प्रशासन के कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। एक विकासशील देश एवं समाज की प्रशासनिक आवश्यकताएँ विशिष्ट प्रकार की होती हैं। इन विशेषताओं के कारण, उनकी नौकरशाही को भी एक विशिष्ट कार्यप्रणाली अपनानी पड़ती है तथा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। जीवन के हर एक क्षेत्र में शासन-प्रशासन की दखल बढ़ गई है और इसके साथ ही लोक-सेवकों के उत्तरदायित्व भी बढ़ गए हैं।

11.8 विकासशील देशों में अधिकारीतन्त्र से अपेक्षाएँ

अधिकारीतन्त्र की संरचना तथा कार्य-प्रणाली में कुछ कमियाँ नजर आती हैं जो कि उसकी सफलता में बाधक हैं। उनसे ऊपर उठने के लिए कुछ सुझाव दिए जाते रहे हैं। विकासशील देशों में विकास का लक्ष्य पूरा करने में अधिकारीतन्त्र की विशेष भूमिका होती है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नौकरशाह कुशल, वफादार, संतोषी तथा अपने कार्य में रूचि रखने वाला होना चाहिए। नियोजित कार्यक्रम तथा कुशल अधिकारियों के द्वारा विकासशील समाज को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हो सकती है। यह जानना जरूरी है कि विकास की परियाजनाओं के कार्यवाहन के लिए अधिकारीतन्त्र में कौन सी विशेषताएँ होनी चाहिए। औद्योगिक समाज का विशेष हित दक्षता से कार्य किए जाने में है। दक्षता के लिए विशेष संरचना करना आवश्यक है। यह गुण नौकरशाही में है कि वह सरकार के कार्यों को दक्षता एवं प्रभावशाली रूप से सम्पादित कर सके। इसलिए सरकार के लक्ष्य साधन का मुख्य आधार नौकरशाह हैं। विकासात्मक अधिकारीतन्त्र के कुछ आदर्श संरचनात्मक प्रतिमान होने चाहिए। यह विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(क) इसका संगठन सैद्धान्तिक रूप से विकासोन्मुख होना चाहिए।

(ख) इसके संगठन में ऐसी अन्तर्निहित संरचनाओं की व्यवस्था होनी चाहिए जो विकास प्रक्रिया की बदलती हुई परिस्थितियों और आकस्मिक घटना का सामना कर सके।

(ग) इसका संगठन सेवार्थी-केन्द्रित होना चाहिए और इसलिए वह सम्पूर्ण सामाजिक प्रणाली के साथ-साथ चलने में समर्थ होना चाहिए।

(घ) इसका संगठन समाजीकरण और पुनः समाजीकरण का कार्य सम्पादित करने के लिए उपयुक्त होना चाहिए।

(च) सामाजिक विकास संगठन ऐसे आदर्श के प्रति सर्वथा प्रतिबद्ध होना चाहिए जिसमें कार्यक्रम योजना के अन्तर्गत प्रयोगात्मक अभिकल्प को सबसे प्रमुख स्थान दिया गया हो।

(छ) इसकी संरचना में सृजनशीलता और सोपान की बुराइयों से मुक्ति मिलनी चाहिए। सोपान के स्थान पर कौशल एवं सव्यावसायिक प्रशिक्षण से सम्बन्धित नम्य कसौटियों के आधार पर विभेदन स्थापित होना चाहिए। लैरी बी० हिल का मानना है कि ऐसे संगठन अधिकाधिक प्रबन्धन की नेटवर्किंग शैली पर आधारित होंगे जो ऊर्ध्वाधर या सोपानिक संयोजन के बजाय क्षैतिज संयोजन को सामने लाएंगे। वे अधिकाधिक ऊर्ध्वमुखी प्राधिकार सम्बन्धों पर आधारित होंगे और कम्प्यूटरों और सूचना समाज पर उनकी निर्भरता बढ़ती जाएगी। वे 'प्रबन्धन के मानवीय पक्ष पर बड़ी मात्रा में ध्यान देंगे और गैर-आर्थिक अभिप्रेरण कामगार भागीदारी, गुणता वृत्तों और जापान से ली हुई 'जेड प्रबन्धकीय' शैलियों पर बल देंगे।

(ज) यह भी सुझाव दिया जाता है कि नया संगठन अस्थायी होना चाहिए, जिसका गठन हल की जाने वाली समस्याओं के इर्द-गिर्द किया गया हो। कार्यकलापों का समस्त परिजाल समस्या से सम्बन्धित होना चाहिए। यह 'मैट्रिक्स संगठन' कहलाता है जो बनाया ही ऐसे जाता है कि काम पूरा हो जाने के बाद उसको विघटित किया जा सके। ऐल्विन टौफ्लर ऐसे संगठन को 'तदर्थतन्त्र' का नाम देते हैं।

इस प्रकार के आदर्श संरचनात्मक प्रतिमान का कोई नियत-निश्चित रूप तो नहीं हो सकता किन्तु यदि अधिकारीतन्त्र इन सुझावों के आधार पर अपनी वर्तमान संरचना और चरित्र को बदले तो विकास कार्यक्रमों को सम्पन्न करने में उसे सफलता प्राप्त होगी।

11.9 सारांश

विकासशील देशों में अधिकारीतन्त्र की अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। किन्तु प्रगति एवं विकास हेतु लोक सेवकों को नई परिस्थितियों के अनुरूप अपने स्वरूप को भी बनाना होता है। वेबर द्वारा प्रतिपादित नौकरशाही के सिद्धान्त को विकासशील देशों में लागू करना सम्भव नहीं होता है। इन देशों में व्यवस्था के अनुरूप 'साला' मॉडल को रिग्स ने प्रस्तुत किया था। इसके अनुरूप बनी हुई नौकरशाही परिस्थितियों के अनुसार 'लोक सेवकों' के रूप में कार्य करेगी तथा अपने दृष्टिकोण, मनोवृत्ति, चिन्तन और प्रवृत्ति में भी आवश्यक परिवर्तन करेगी। एक विकासशील देश की प्रशासनिक आवश्यकताएँ विशिष्ट प्रकार की होती हैं। आज की सरकार का काम कानून व व्यवस्था की रक्षा का ही नहीं बल्कि विकास व निर्माण का भी है। जीवन के हरेक क्षेत्र में शासन-प्रशासन की दखल बढ़ गयी है और इसके साथ ही लोक सेवकों के उत्तरदायित्व बढ़े हैं। अतः विकासशील देशों में लोकसेवाओं के माध्यम से ही समाज में आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है। राज्य के समस्त दायित्वों की पूर्ति तथा लोक-नीति का क्रियान्वयन प्रशासनिक कार्यपालिका का वैधानिक दायित्व बन जाता है।

11.10 उपयोगी पुस्तकें

1. मोहित भट्टाचार्या : डेवेलप्मेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन

2. श्री राम माहेश्वरी : प्रशासनिक सिद्धान्त

3. अवस्थी और माहेश्वरी : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन

4. प्रीति जोशी : विकास प्रशासन

5. सुरेन्द्र कटारिया : तुलनात्मक प्रशासन

6. निर्शा वशिष्ट : भारत में नौकरशाही की कार्य प्रणाली

11.11 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

(1) विकास अधिकारीतन्त्र पर एक निबन्ध लिखिए।

(2) विकासशील देशों की व्यवस्था तथा वेबर की अवधारणा पर टिप्पणी कीजिए।

(3) विकास अधिकारीतन्त्र क्या है तथा उसके लक्षण और भूमिका पर प्रकाश डालिए।

(4) 'विकास के लिए अधिकारीतन्त्र में परिवर्तन की आवश्यकता है।' टिप्पणी कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) विकास अधिकारीतन्त्र का उदय कब और क्यों हुआ?

(2) रिग्स के 'साला मॉडल' पर टिप्पणी कीजिए।

(3) विकास प्रशासन की भूमिका क्या है?

(4) विकासशील देशों में नौकरशाही के क्या लक्षण हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) विकास प्रशासन में अधिकारीतन्त्र किसके विचारों पर काम नहीं कर सकता है?

(क) फ्रेड रिग्स (ख) माक्स वेबर

(ग) लूसीयन पाई (घ) सी० पी० भामरी

(2) फ्रेड रिग्स ने समपार्श्वीय समाजों में किस प्रतिमान को अपनाया है?

(क) चेम्बर मॉडल (ख) ब्यूरो मॉडल

(ग) साला मॉडल (घ) आफिस मॉडल

(3) अधिकारीतन्त्र की भूमिका विकासशील देशों में किन क्षेत्रों में है?

(क) राष्ट्र-निर्माण में (ख) नीति-परामर्श में

(ग) नीति कार्यवाहन (घ) ऊपर दिए गए सभी में

(4) वेबर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त किस आधार पर काम करता है?

(क) परम्परा (ख) तार्किकता

(ग) परिवर्तन (घ) कोई भी नहीं

(5) 'मैट्रिक्स संगठन' को 'तदर्थतन्त्र' का नाम किसने दिया था?

(क) तालकॉट पार्सन (ख) फ्रेड रिग्स

(ग) ऐल्विन टौफ्लर (घ) कार्ल मार्क्स

11.12 प्रश्नोत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (घ)
4. (ख)
5. (ग)

इकाई - 12 : विकास प्रशासन में मुद्दे

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 विकास प्रशासन के समक्ष समस्याएँ

12.3 केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण

12.4 राजनीति में जनता की सहभागिता

12.5 सामान्य अथवा विशेषज्ञ प्रशासक

12.6 गैर-अधिकारीतन्त्रीय संस्थाओं की आवश्यकता

12.7 अधिकारीतन्त्र का राजनीतिकरण

12.8 लाल-फीताशाही

12..9 भ्रष्टाचार

12.10 सारांश

12.11 उपयोगी पुस्तकें

12.12 सम्बन्धित प्रश्न

12.13 प्रश्नोत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- विकास प्रशासन में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण का उल्लेख कर सकेंगे,
- विशेषज्ञों की आवश्यकता तथा सामान्य प्रशासक की भी जरूरत पर टिप्पणी कर सकेंगे,
- जनता की प्रशासन में भागीदारा, लाल-फीताशाही तथा भ्रष्टाचार पर विचार विमर्श कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

विकासशील देशों की आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक समस्याएं विकसित देशों से भिन्न होती हैं। अतः उनके समाधान के लिए लोक-प्रशासन के वे सिद्धान्त, तकनीक या आयाम काम में नहीं आ सकते जो विकसित देशों में प्रचलित हैं। विकासशील एवं विकसित देशों में विकास के लक्ष्य अलग-अलग होते हैं। इस कारण लोक प्रशासन के नए दृष्टिकोण की आवश्यकता है। विकास प्रशासन में नए मूल्यों एवं प्रवृत्तियों का समावेश किया जाना आवश्यक है ताकि इसका ध्यान प्रक्रियाओं' की ओर से हटाकर 'परिणामों' की ओर केन्द्रित

किया जा सके।

विकास प्रशासन की अनेक समस्याएं हैं जिनके कारण यह एक सार्थक भूमिका नहीं निभा पा रहा है। इन समस्याओं का समाधान ढूँढने के अनेक प्रयास किए जाते रहे हैं। विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। अतः विकास प्रशासन के कार्यवाहन में नीति-निर्माताओं के सम्मुख अनेक मुद्दे सामने आते हैं। जैसे कि, केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के बीच सन्तुलन, जन-सहभागिता, तकनीकी विशेषीकरण की आवश्यकता, राजनीतिक व्यवस्था तथा नौकरशाही के बीच सम्बन्ध, लाल-फीताशाही, भ्रष्टाचार इत्यादि। विकास प्रशासन को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इन मुद्दों के दोनों पक्षों को समझ कर निष्कर्ष निकाले जाएँ। इस इकाई में समस्याओं को प्रस्तुत करने के बाद इन मुद्दों पर प्रकाश डाला जाएगा।

12.2 विकास प्रशासन के समक्ष समस्याएँ

विकास प्रशासन का क्रियान्वयन पिछले पाँच दशकों से किया जाता रहा है। इसको क्रियान्वित करते समय कुछ समस्याएँ सामने आई हैं।

(क) सबसे प्रमुख समस्या केन्द्रीकरण की है। सरकार की ऊपरी सतह में शक्ति तथा निर्णय-निर्माण की ताकत एकीकृत रहती है। विशेषतः आर्थिक तथा अन्य साधनों के वितरण का कार्य जिन अधिकारियों के हाथों में कन्द्रित होता है वह उसे हस्तान्तरित नहीं करना चाहते हैं। इसके परिणामस्वरूप कार्य पूर्ण करने में अधिक समय और धन की आवश्यकता होती है तथा सलाह-मशवरे के कारण उपलब्धि कम होती है।

(ख) यह भी देखा गया है कि व्यवस्था में समन्वय की बाधाएँ पाई जाती हैं। विभिन्न विभाग, जो कि क्षेत्रीय आधार पर आयोजित होते हैं, विकास के अलग-अलग कार्यों से सम्बन्धित होते हैं। कृषि, पशु-पालन, जन-स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि के विभाग पाए जाते हैं। हर विभाग की अपनी उप-शाखाएं (field agencies) होती हैं विकास कार्यक्रमों के कार्यवाहन के लिए एक विभाग तथा दूसरे विभाग, तथा विभिन्न शाखाओं के बीच समन्वय की कमी पाई जाती है। उदाहरण के लिए, कृषि विकास के लिए उचित समय पर खाद्य, बीज, पानी, कर्जा, बाजार की व्यवस्था आदि की आवश्यकता होती है। यदि किसी एक भी साधन को उपलब्ध कराने वाले विभाग में कुछ कमी हो तो उसका दुष्प्रभाव कृषि विकास के लक्ष्यों पर अवश्य पड़ेगा।

(ग) भ्रष्टाचार इस प्रशासन के साथ जुड़ा हुआ है। विकास की योजनाओं के कार्यवाहन में सार्वजनिक आर्थिक साधनों का व्यय किया जाता है। लगभग अस्सी प्रतिशत धन जो किसी योजना के लिए एलोकेट किया जाता है वह निजी खजानों में पहुँच जाता है। तीसरे विश्व के देशों में भ्रष्टाचार एक व्यापक समस्या है जिस पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं पाया जा रहा है।

(घ) लाल-फीताशाही तथा लचीलेपन का अभाव इन व्यवस्थाओं में अत्यधिक व्याप्त है। लाल-फीताशाही को नियमों-विनियमों के पालन में आवश्यकता से अधिक बारीकी की प्रवृत्ति को कहते हैं। जब लाल-फीताशाही अथवा अनावश्यक औपचारिकता अपनाई जाती है तो प्रशासन में लचीलापन समाप्त हो जाता है। फलस्वरूप प्रशासकीय कार्य के संचालन में सहानुभूति, सहयोग आदि का महत्व गौण हो जाता है। लाल-फीताशाही, नौकरशाही को कठोर यंत्रवत् और अत्यन्त औपचारिक कार्यविधि बना देती है। नौकरशाही की सोपानीय व्यवस्था, अनावश्यक औपचारिकता तथा लचीलेपन का अभाव विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधक हैं। निर्णय-निर्माण तथा कार्यवाहन में देर होती है तथा लक्ष्य प्राप्ति कठिन हो जाती है। प्रशासनिक अकुशलता तथा कठोर नौकरशाही एक मुख्य समस्या बन जाती है।

(च) परम्परागत सामाजिक ढाँचा तथा तकनीकों की कमी भी विकास में बाधा बनती है। तीसरे विश्व के अधिकतर देश पिछड़े हुए हैं और वैज्ञानिक आधार पर सुधार की आवश्यकता है। शिक्षा एवं चेतना की भी कमी पाई जाती है।

(छ) संसाधनों की कमी, जनसहभागिता की कमी, राजनीतिक अस्थिरता, सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद, मंत्री-लोकसेवक संघर्ष, नीति एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन में बाधाएं, संक्रमणकालीन परिस्थितियां तथा जनाधिक्य इत्यादि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय समस्याएं हैं।

इन सभी समस्याओं के कारण विकास प्रशासन अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो पा रहा है। व्यवस्था में सुधार लाने के लिए अनेक नए प्रयास किए जा रहे हैं तथा भिन्न-भिन्न विकल्प प्रस्तुत किए जा रहे हैं। सुधार लाने के लिए जो विकल्प सामने आ रहे हैं उन्होंने कुछ प्रमुख मुद्दों पर चर्चा को जन्म दिया है। यहाँ पर कुछ ऐसे मुद्दों को संक्षेप में समझाया जाएगा। जिन मुद्दों को प्रमुख माना जा रहा है उनमें से कुछ हैं:

(क) केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण के विकल्प

(ख) राजनीति में जनता की भागीदारी तथा सहयोग की आवश्यकता

(ग) सामान्य प्रशासक को व्यवस्था में बनाए रखने के साथ विशेषज्ञों को भी सम्मिलित करना।

(घ) अधिकारीतन्त्र का प्रभुत्व तथा गैर-अधिकारीतन्त्रीय संस्थाओं का सीमित प्रभाव।

(ङ) नौकरशाही का राजनीतिकरण अथवा प्रशासकों तथा राजनीतिज्ञों के अलगाव का प्रोत्साहन करना।

(च) लालफीताशाही तथा भ्रष्टाचार की समस्याओं पर नियन्त्रण कर पाना।

12.3 केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण

विकास प्रशासन में एक प्रमुख मुद्दा यह उठता है कि केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के बीच में सन्तुलन किस प्रकार से स्थापित किया जाए। केन्द्रीकरण के अपने लाभ हैं किन्तु विकेन्द्रीकरण की भी आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता है। जो विद्वान केन्द्रीकरण का समर्थन करते हैं उनका मानना है कि एक ही दृष्टिकोण को अपनाने तथा योजनाओं को विस्तृत (comprehensive) बनाने से कार्य में सफलता अधिक मिलती है। केन्द्रीकरण के कारण सभी प्रयासों के बीच तालमेल बैठाया जा सकता है तथा नीति-निर्माण में कम समय लगता है। विकेन्द्रीकरण के समर्थक इसके विपरीत स्थानीय स्तर पर पहल, प्रयास तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को अधिक महत्व देते हैं।

केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के दो विकल्प हैं, जिनके आधार पर प्रशासकों को कार्य करना होता है। साथ ही, यह भी स्मरण रखना है कि कार्य और शक्ति का स्वीकारणीय वितरण हमेशा एक सा नहीं रहता। इसलिए इस समस्या का समाधान तब हो सकता है जब दोनों विकल्पों के बीच का रास्ता अपनाया जाए। सरकार के केन्द्रीय तथा स्थानीय स्तरों के बीच साधनों तथा कार्यों का उचित वितरण होना चाहिए।

प्रशासन के संगठन में ऐसी अन्तर्निहित संरचनाओं की व्यवस्था होनी चाहिए जो विकास प्रक्रिया की बदलती हुई परिस्थितियों और आकस्मिक आवश्यकताओं का सामना कर सके। विकेन्द्रीकरण को निरन्तर लागू करने से क्षेत्र स्तर अथवा स्थानीय स्तर की विकास एजेन्सिया अधिक स्वायत्त तौर से कार्य कर सकेंगी। इस लिए यह नई परिस्थितियों के अनुरूप अपने

आप को ढाल सकती हैं। स्थानीय ज्ञान तथा संसाधनों का लाभ उठाने के लिए भी विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता होती है। विकेन्द्रीकरण हर स्तर के नागरिक को प्रशासन में भागीदारी का अवसर प्रदान करता है तथा उनकी भागीदारी तथा पहल के कारण लोकतन्त्र सशक्त होता है। कम समय में निर्णय-निर्माण होता है तथा उच्च स्तरों पर कार्यों की भीड़ इकट्ठा नहीं होती है। किन्तु आज के समय में जब संचार के तेज साधन उपलब्ध है तो केन्द्रीकरण आसानी से लागू हो सकता है। केन्द्रीय निरीक्षण के द्वारा बचत तथा कार्य-कुशलता बढ़ती है। आधुनिक प्रतिरक्षा तथा आर्थिक नियोजन की आवश्यकताएं भी ऐसे तत्व हैं जो केन्द्रीकरण में योगदान देते हैं। अतः केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण दोनों ही आज के युग की आवश्यकता हैं और उनके बीच सही सन्तुलन बैठा पाना एक प्रमुख मुद्दा है।

12.4 राजनीति में जनता की सहभागिता

आज की सरकार का एक विस्तृत कार्य क्षेत्र है जो कि निरन्तर बढ़ता जा रहा है। लोक-कल्याणकारी राज्य का आधार योजनाबद्ध विकास और लोकतन्त्रात्मक समाजवाद होता है। अतः ऐसी व्यवस्था में सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में सरकार का कार्य लगातार विस्तृत होता जाता है। उसे बड़े पैमाने पर विभिन्न प्रकार के कल्याणकारी कार्यक्रमों का संचालन करना होता है। किन्तु इन कार्यक्रमों की सफलता के लिए नीति-निर्माण तथा क्रियान्वयन में जनता की सक्रिय भागीदारी आवश्यक होती है।

प्रशासन के सुदूर अंचल में पहुँचने के कारण सहभागिता की समस्या सामने आती है। राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों में जन-सहभागिता के विस्तार की अनिश्चितता के फलस्वरूप जनता की भागीदारी की समस्या जुड़ी हुई है। किन्तु राजनीतिक प्रक्रिया में जनता की हिस्सेदारी के परिणामस्वरूप जिन अन्य नए हितों व मुद्दों का प्रादुर्भाव होता है वो पुरानी नीतियों की निरन्तरता को समाप्त करने का मार्ग प्रशस्त करती है। इसलिए सहभागिता में वृद्धि के फलस्वरूप राजनीतिक प्रक्रिया के अर्न्तसम्बन्धों की पुनर्रचना आवश्यक प्रतीत होती है।

लोक सेवकों के द्वारा ही कोई देश अपना आर्थिक एवं सामाजिक विकास कर सकता है। किन्तु सत्ता का केन्द्र जनता होती है। दिशा निर्देशन की शक्ति जनता के द्वारा, उसकी इच्छा, स्वीकृति और सुविधा से प्रशासकों को प्राप्त होती है। यह प्रशासन का काम है कि वह जनता को उपलब्ध सरकारी सेवाओं की प्रकृति एवं क्षेत्र से सूचित कराता है तथा प्रशासनिक अधिकरण के प्रति जन-मानस में विश्वास पैदा करता है। साथ ही, जनता को भी अपने दायित्वों के प्रति उतना ही सजग, जागरूक और निष्ठावान होना चाहिए, जितना अधिक वह प्रशासन से आशा करती है। सामान्यतः यह देखा जाता है कि जनता पुलिस प्रशासन से अपेक्षाएँ करती है कि वह समाज में हो रहे अपराधों को समाप्त करा दे लेकिन दूसरी ओर जनता स्वयं अपराधियों को बचाती है। इस प्रकार की स्थिति में प्रशासन अपनी भूमिका सही रूप से नहीं निभा पाता। अतः जागरूक, चेतन, विवेकशील और सहयोगी जनसत्ता ही प्रशासकीय सत्ता से कुछ प्राप्त कर सकती है। यदि नौकरशाही तथा जनता पारस्परिक सहयोग के साथ, एक दूसरे पर विश्वास, बराबरी की स्थिति का अनुभव करते हुए कार्य करते हैं तथा सेवार्थी-केन्द्रित प्रशासन हो पाएगा। जानकारी प्राप्त करना एक प्रमुख अधिकार है जो कि जनता को प्राप्त होना चाहिए।

विकास प्रशासन समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम है तथा सार्वजनिक कल्याण के कार्यों में लगा रहता है। लोक-कल्याणकारी राज्य तथा जनतन्त्र की अवधारणा के अनुरूप इसका संचालन जनता के हित के लिए होना चाहिए। इस आधार को मानते हुए प्रशासन को

समुदाय के प्रति उत्तरदायी तथा जनता के प्रति अधिक संवेदनशील बनना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि सत्ता की जनता में पहुँच या पैठ होनी चाहिए। सरकार द्वारा समाज में पहुँचकर मूल-भूत नीतियों को लागू किया जाना चाहिए। स्पष्टतः सरकारी योजनाओं को सुदूर गांवों तक पहुँचकर आम आदमी के दैनिक जीवन को छूने का प्रयास करना चाहिए। उनसे मिली हुई प्रतिक्रिया ही आगे की कार्यवाही का आधार होना चाहिए।

वस्तुतः यह काम नौकरशाही का है, किन्तु अधिकांश संक्रमणकालीन समाजों में सत्ताधारी अभिजन एवं ग्रामीण संस्कृति व जीवनशैली अपनाने वाली आम जनता की दुनिया के बीच एक बहुत बड़ी खाई विद्यमान रहती है। ऐसी औपचारिक संस्थाओं के विकास की आवश्यकता है जो शासक व शासित के बीच निकट सम्बन्ध स्थापित करने में सम्पर्क-सूत्र का काम कर सकें। अतः प्रत्येक नवोदित राष्ट्र की सरकार के सामने यह समस्या रहती है कि वह राष्ट्र-निर्माण योजनाओं के लिए जन-समर्थन जुटाने या उनके पक्ष में आम जनता का विश्वास, मूल्य तथा आदतें परिवर्तित करने का कार्य किस तरह सम्पन्न करें।

यह भी आवश्यक है कि प्रशासनिक कार्यों के संचालन में जनता की राय ज्ञात की जाय और जनसाधारण को इस बात की सूचना दी जाय कि प्रशासन उनके लिए क्या कर रहा है। इन सब बातों से परिचय होने पर जनता व विकास प्रशासन के बीच सूचना और सहयोग की व्यवस्था अर्थात् लोक सम्पर्क स्थापित हो जाएगा। लोक-सम्पर्क दोनों पक्षों की गलत-फहमियों को दूर करता है एवं पारस्परिक सहयोग की भावना को विकसित करता है।

साथ ही, प्रशासन को निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में भी जन-साधारण को प्रोत्साहित करना चाहिए। पूर्व में राजनीतिक निर्णय कुछ लोगों तक ही पहुँचाए जाते थे तथा यह माना जाता था कि दूसरे लोगों को उसकी परवाह नहीं है। किन्तु वर्तमान समय में न तो यह सम्भव है और न ही वांछित। आज यह आवश्यक है कि जनता को प्रशासन के निकट लाया जाय ताकि विकास की गति को अत्यधिक तेज किया जा सके। दूसरे, प्रशासक कार्य को पूरा करना सरकार के लिए अपरिहार्य समझेगा तथा नागरिक उसे अपने हित में समझेगा। यदि इस प्रकार की स्थिति का विकास हो जाता है तो व्यक्ति का राज्य के साथ पहचान का भाव भी विस्तृत होगा। जनता सत्ता के औचित्य को स्वीकृति देगी।

जनता की सहभागिता की आवश्यकता तथा उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है। किन्तु यहाँ यह भी मानना पड़ेगा कि जन-सहभागिता के साथ बहुत से नए विचार और आयाम सामने आएंगे। इन के कारण पुरानी व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता होगी। गतिशीलता तथा निरन्तर परिवर्तन के आधार पर ही व्यवस्था काम कर पाएगी। अतः राजनीतिक प्रक्रिया के अर्न्तसम्बन्धों में बदलाव लाना जरूरी हो जाएगा।

जनता की सहभागिता से सम्बन्धित कुछ समस्याएं तीसरे विश्व में नजर आती हैं। डोनल्ड सी० स्टोन्स का कथन है कि विकास प्रशासन का आधार 'चार पी' (4 Ps) हैं- योजनाएं बनाना एवं उनको मूर्तरूप देना (Plan), नीतियां बनाना एवं क्रियान्वित करना (Policy), कार्यक्रम बनाना एवं उन्हें लागू करना (Programme) तथा परियोजनाएं निर्मित एवं संचालित करना (Project)। इनको पूरा करने के दौरान चार प्रमुख समस्याएं जो तीसरे विश्व में पायी जाती हैं वह भी 'चार पी' (4 Ps) के द्वारा बताई जा सकती हैं। वह हैं: हथियारों की होड़ (Proliferation), गरीबी (Poverty), प्रदूषण (Pollution) और जनाधिक्य (Population). यह चारों जनता की सहभागिता में बाधक होती हैं तथा जनता की प्रभाविकता को भी कम करती हैं।

12.5 सामान्य अथवा विशेष प्रशासक

विशेषज्ञों की आवश्यकता, आज के युग की प्रशासनिक व्यवस्था की एक विशेषता बन गई है। आज के युग में विकास के लिए यह आवश्यक है कि नौकरशाही में कुछ सीमा तक विशेषीकरण तथा बौद्धिकरण होना चाहिए। किन्तु अधिकतर विकासशील देशों में नौकरशाही में सामान्य प्रशासक पाए जाते हैं। यह सामान्य प्रशासक बनाम विशेषज्ञ प्रशासक का विवाद बहुत समय से चल रहा है। प्रो० जेम्स फैसलर (1958) तथा फुलटन रिपोर्ट (1968) ने इस विवाद पर चर्चा की है।

इस विवाद को समझने से पहले, इन दो प्रकार के प्रशासकों का अर्थ स्पष्ट कर देना चाहिए। एक सामान्य प्रशासक वह अव्यवसायी प्रशासक होता है जिसने भाषा अथवा प्रतिष्ठित ग्रन्थों में शिक्षा प्राप्त की है और वह एक बुद्धिमान व्यक्ति है जिसमें चरित्र के कुछ व्यक्तिगत गुण भी हैं। चूँकि उसने किसी एक अध्ययन-शास्त्र, व्यावसायिक अथवा पेशेवर शिक्षा का कोर्स नहीं किया जो लोकसेवा में उसकी भर्ती के लिए अनिवार्य हो, अतः इस दृष्टि से उसके पास कोई विशेष अथवा तकनीकी योग्यताएँ नहीं हैं। वह एक प्रतिभाशाली, बहु-उपयोगी व्यक्ति, होता है जो सभी प्रकार के कार्यों को समान रूप से पूरा करता है। इसके विपरीत, एक विशेषज्ञ विशेष शिक्षा-प्राप्त कुशल व्यक्ति होता है, जिसने ज्ञान की एक ऐसी विशेष शाखा के अध्ययन पर समय लगाया है और विशेष विषयों अथवा क्षेत्रों की समस्याओं का समाधान करने की विशिष्ट कुशलता प्राप्त की है। उन्हें ऐसे पदों के लिए भर्ती किया जाता है, जिनके लिए व्यावसायिक, वैज्ञानिक, तकनीकी या अन्य विशिष्ट योग्यताएँ अनिवार्य होती हैं। यह विशेषज्ञ अपने विशिष्ट क्षेत्रों अथवा विभागों के भीतर कार्य करते हैं और तकनीकी पदों को ग्रहण करते हैं। इनका कार्य सामान्य प्रशासकों को तकनीकी परामर्श प्रदान करना होता है। अतः अधिकतर देशों में वह परामर्शदाता होते हैं, किन्तु अध्यक्ष नहीं।

पिछले सौ वर्षों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी परिवर्तन, शीघ्र नगरीकरण तथा औद्योगीकरण, कल्याणकारी राज्य की धारणा तथा कई ऐसे अन्य तत्वों ने मिलकर आधुनिक प्रशासन को हर जगह बहुत अधिक जटिल बना दिया है जिससे सरकार के तकनीकी विभागों की संख्या तथा विशेषज्ञों की संख्या बढ़ा देना अनिवार्य हो गया है। सामान्य प्रशासक के प्रभुत्वाधीन प्रशासन न केवल पुराना हो गया है, अपितु इसने सामान्य प्रशासकों और पेशेवर विशेषज्ञों के बीच सम्बन्धों की समस्या भी खड़ी कर दी है। आज सामान्य-विशेषज्ञ प्रशासक के सम्बन्धों में बदलाव विकास प्रशासन की प्रमुख माँग है। पुरानी प्रथाएँ, भारी-भरकम पदानुक्रमों की स्थापना और प्राथमिकताओं का विकार असन्तोष को बढ़ा रहे हैं। विशेषज्ञों का यह प्रश्न है कि एक सामान्य प्रशासक को अत्यधिक तकनीकी संस्थान का अध्यक्ष क्यों नियुक्त किया जाए जबकि उसके पास कोई तकनीकी अनुभव नहीं होता। साथ ही, इनका प्रशिक्षण इस प्रकार का होता है कि वह कानून और व्यवस्था दृष्टिकोण के प्रति झुके हुए होते हैं। वह समय से पहले नियोजन नहीं कर सकते और न ही नवीनीकरण कर सकते हैं। जब सामान्य सचिवों को मंत्रियों को परामर्श देना होता है तो उन्हें स्वयं लम्बे समय तक तकनीकी विषय समझने पड़ते हैं। इसमें मौखिक और लिखित परामर्श, लम्बे स्पष्टीकरण और व्याख्याएँ देनी पड़ती हैं, जिसमें बहुत समय नष्ट होता है। प्रायः इन विशेषज्ञों की पहुँच मंत्रियों तक नहीं होती। अधिकारीतन्त्र कार्यों का अनावश्यक द्विगुनीकरण करता है तथा विकास कार्य के रास्ते में बाधक होता है।

इसके विपरीत सामान्य प्रशासकों द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया है कि यदि तकनीकी विशेषज्ञों को शामिल किया जाएगा तो वह न तो अच्छे प्रशासक बन पाएँगे और न ही अच्छे

तकनीकी विशेषज्ञ। उन्हें अपने विशिष्ट ज्ञान और कौशल का प्रयोग अपने कार्य क्षेत्र में करना चाहिए, नहीं तो वे उसको व्यर्थ गंवाएंगे तथा वे उस मूल्यवान क्षेत्रीय अनुभव से भी वंचित रहेंगे, जो कि एक सामान्य प्रशासक को प्राप्त होता है।

ब्रायबंटी का विचार है कि नए राज्यों में जहाँ राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता सबसे प्रमुख है प्रशासन में व्यावसायिक विशेषज्ञों का क्रम-प्रसरण (proliferation) उन पृथकतावादी शक्तियों को बढ़ावा मिलेगा जो पहले से ही वहाँ मौजूद हैं। जहाँ सामाजिक और राजनीतिक शक्तियाँ विरोधी और विघटनकारी दिशाओं में समाज को भंग कर रही हों, वहाँ सामान्य प्रशासक ही व्यवस्था को एकजुट बनाए रख सकता है। वह आर्थिक विकास के लिए प्रशासन में व्यावसायिक विशेषज्ञता की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं, लेकिन उनको इस बात पर सन्देह है कि सामान्य प्रशासकों के बिना आर्थिक आधुनिकीकरण प्राप्त किया जा सकता है।

जोजफ ला पालोम्बरा को भी यह भय है कि विशेषज्ञों की बढ़ी हुई महत्ता और शक्ति नौकरशाही पर नियन्त्रण की समस्या को पैदा करेगी और लोकतान्त्रिक विकास के लिए खतरा बन जाएगी। मोर्सटीन मार्क्स ने कहा है कि नौकरशाही में व्यावसायिक विशेषज्ञता के विकास से सामान्य प्रशासकों के एकीकरण के कार्य में गम्भीर कमजोरी आ जाती है। सीमित हितों तक तथा संकीर्णता से विचार करने से नौकरशाही की विस्तृत राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने की क्षमता सीमित हो जाती है।

अतः विशेषज्ञों के महत्व को स्वीकारते हुए भी सामान्य प्रशासक को हटाया नहीं जा सकता। एक नए विकल्प को ढूँढना ही आज की आवश्यकता है।

12.6 गैर-अधिकारीतन्त्रीय संस्थाओं की आवश्यकता

रिग्स ने विकास प्रशासन में एक प्रमुख मुद्दा यह उठाया कि विकासशील देशों में गैर-अधिकारीतन्त्रीय (extra-bureaucratic) राजनीतिक संस्थाएं बहुत ही कमजोर हैं। यह विकास की प्रक्रिया में बाधक होती हैं। प्रशासनिक संस्थाएं निरन्तर विस्तृत होती रहती हैं तथा उन्होंने राजनीतिक संस्थाओं को पीछे छोड़ दिया है। आज विकासशील देशों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह राजनीतिक संस्थाओं तथा संसदीय संस्थाओं को प्रशासनिक सुधारों द्वारा सशक्त करें।

विकासशील देश तीव्र गति पर सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने के प्रयास में नए-नए विकल्पों की तलाश करते हैं। साम्राज्यवाद के लम्बे अनुभव के बाद अधिकतर नए देशों ने नौकरशाही के प्रभुत्व को स्वीकार किया है। आजादी के पश्चात, साम्राज्यवादी अधिनायकतन्त्र के दबाव के द्वारा जनित असन्तुलन को ठीक करने के लिए राजनीतिक कुशलता को बढ़ाना होता है। सक्षम राजनीतिक संस्थाओं तथा सशक्त राजनीतिक अभिजन की आवश्यकता होती है। आइसेनस्टाड मानता है कि नए राज्यों में अधिकारीतन्त्र न केवल सभी महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्यों पर अपना एकाधिकार स्थापित करता है बल्कि वह एक दबाव समूह के रूप में कार्य करता है। अपने प्रभुत्व के कारण यह विकास की प्रक्रिया में बाधक होता है तथा एकीकरण की समस्या को भी जन्म देता है।

तृतीय जगत के अधिकतर देशों में राजनीतिक अभिजनों को कोई पूर्व प्रशासनिक अनुभव नहीं होता। इसलिए जब कोई राजनेता मन्त्री बनता है तो उस समय उसके पास समुचित

प्रशासनिक जानकारी नहीं होती और इसलिए उसे स्वाभाविक रूप से अधिकारीतन्त्र पर निर्भर रहना पड़ता है। यह स्थिति पश्चिमी देशों की स्थिति से भिन्न है। साथ ही, अधिकारीतन्त्र जिन परिस्थितियों में काम करता है वहाँ संरचनात्मक विभेदीकरण निम्न कोटि का होता है, इससे उसकी शक्ति और बढ़ जाती है। नागरिकों के भी अनेक मंच होते हैं जो अधिकारीतन्त्र के कार्यों पर निगाह रख सकें। फलस्वरूप, केवल अधिकारीतन्त्र की भूमिका का गुणात्मक तथा परिणामात्मक दोनों अर्थों में अत्यधिक विस्तार ही नहीं होता, बल्कि वह अपने कार्यों का सम्पादन ऐसे पर्यावरण में करता है जो जनता के निरीक्षण तथा चेतावनी से विशेषतः मुक्त होता है। इसके अतिरिक्त इन देशों में यह वर्ग सर्वोच्च सामाजिक प्रतिष्ठा का पात्र होता है।

विकासशील देशों में यह आवश्यक है कि गैर-आधिकारीतन्त्रीय क्षेत्र का निरन्तर विस्तार हो और उसे बल मिले। स्वायत्त संस्थाओं को भी अपनी स्वतन्त्रता की तत्परता से रक्षा करनी चाहिए। अधिकतर संस्थाएं स्वयं अपने नियम नहीं बनाती, बल्कि जो नियम और प्रक्रियाएँ शासकीय विभागों में प्रचलित होती हैं उन्हीं का अंगीकरण कर लेती हैं। इसके अतिरिक्त यह एक परिपाटी बन गई है कि लोकसेवक प्रायः इन संगठनों के प्रमुख होते हैं और उनका नियन्त्रण करते हैं। अतः इनकी स्वायत्ता समाप्त हो जाती है और निर्णयकरण तथा कार्य के स्वशासी केन्द्रों का विकास नहीं हो पाता है।

लूसियन पाई ने भी इस बात को महत्व दिया है कि जब तक राजनीतिक प्रक्रिया तथा प्रतिनिधि शासन को सशक्त नहीं किया जाएगा तब तक प्रशासन को अधिक सुधारा नहीं जा सकता है। इस बात का खतरा भी रहता है कि एक अधिक विकसित नौकरशाही राजनीतिक तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बीच असन्तुलन पैदा कर सकती है।

इसी प्रकार फ्रेड डब्ल्यू० रिग्ज का विचार है कि यदि राजनीतिक संस्थाओं को हानि पहुँचाते हुए नौकरशाही का अधिक विस्तार होता है तो प्रभावी राजनीति सम्भव नहीं हो पाएगी। इस आधार पर उन्होंने माना कि गैर-अधिकारीतन्त्रीय संस्थाओं की अनुपस्थिति में या उनके कमजोर होने के कारण प्रशासन प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर पाता है। जब तक नौकरशाही प्रशासनिक से अधिक राजनीतिक कार्य में लगी रहती है, दबाव गुट कमजोर होते हैं तथा सरकार का जनता पर सीमित नियन्त्रण होता है, तब तक प्रशासन सुचारू रूप से नहीं चल सकता। प्रशासन तथा राजनीतिक व्यवस्था में मौलिक सुधारों की आवश्यकता है। रिग्ज नौकरशाही में सुधार चाहते हैं, उसका संक्षिप्तीकरण नहीं। वह उसे कोई बुराई नहीं मानते हैं तथा उन्हें 'ईवल मॉन्स्टर' का नाम नहीं देना चाहते। किन्तु उनका मानना है कि गैर-अधिकारीतन्त्रीय संस्थाओं को यदि साथ-साथ विकसित किया जाए तब ही अधिकारीतन्त्र प्रभावी एवं जनता के प्रति उत्तरदायी बन पाएगा।

12.7 अधिकारीतन्त्र का राजनीतिकरण

विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्था की एक प्रमुखविशेषता यह रही है कि वहाँ या तो एक-दलीय प्रणाली है या ऐसी प्रणाली जिसमें एक दल का आधिपत्य होता है। इसके परिणामस्वरूप अधिकारीतन्त्र का राजनीतिकरण हो गया है। राजनीतिक तटस्थता तथा निष्पक्ष सेवा व्यावसायिक लोक सेवकों के मुख्य गुण माने जाते हैं, किन्तु यह अधिकांश देशों में नजर नहीं आते हैं। नौकरशाही राजनीतिक क्षेत्र में अपने आपको अधिक से अधिक उलझाती जा रही है। यह नौकरशाही सत्तारूढ़ दल अथवा विरोधी दलों की राजनीति में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कार्यों द्वारा चेतन अथवा अचेत अवस्था में भाग लेती है, उसको प्रभावित करती है

अथवा उससे प्रभावित होती है। यह नौकरशाही अपने व्यक्तिगत अथवा सामूहिक लक्ष्यों को बढ़ाने के लिए राजनीतिक दलों का प्रयोग करती है अथवा उसका प्रयोग राजनीतिक दलों द्वारा अपने दलीय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

लोकसेवकों का राजनीतिकरण लोकतन्त्र के लिए सामान्यतया और राजनीतिक विकास के लिए विशेषतया एक खतरा है। साथ ही, यह नौकरशाही की श्रेष्ठता भी समाप्त करता है। राजनीतिकरण के कारण प्रशासनिक अभिजन वर्ग तथा जनसाधारण के बीच फासला कम हुआ है जिससे नेताओं तथा अनुयायिओं और समाज के विभिन्न समूहों के बीच सांस्मृतिक झगड़ा शुरू हो गया है। प्रशासनिक व्यवस्था के टूटने की सम्भावना भी हो सकती है और लोकसेवाओं के विभिन्न स्तरों में उत्पन्न हो रही फूट और प्रशासनिक लोकाचार के मिट जाने से देश की एकता को खतरा हो सकता है। दूसरे, समय से पूर्व नौकरशाही का राजनीतिकरण राजनीतिक प्रक्रियाओं में असंगति उत्पन्न कर सकता है और वर्तमान संवैधानिक कानून को विकृत कर सकता है। तीसरे, वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए राजनीतिकरण के कारण नौकरशाही में निहित स्वार्थी हितों का विकास होता है। इसके अतिरिक्त, 'राजनीतिक हस्तक्षेप' के कारण नौकरशाही का मनोबल कम होता है। सामाजिक, आर्थिक विकास की अभिव्यक्ति के रूप में राजनीतिज्ञ की भूमिका एवं क्षमता, प्रशासक की बौद्धिकता एवं तटस्थता के समक्ष एक चुनौती के रूप में सामने आती है।

हालाँकि प्रशासकों तथा राजनीतिज्ञों का अलगाववाद प्रोत्साहित किया जाता है, किन्तु यह अलगाव आधुनिक सरकार के कठिन निर्णयों को प्रभावित करता है जो कि उन लोगों द्वारा लिए जाते हैं, जिन्हें सार्वजनिक रूप से जनता के समक्ष नहीं जाना होता है। राजनीतिज्ञों ने इसी दुविधा से त्रस्त होकर 'प्रतिबद्ध नौकरशाही' पर जोर दिया है। 'प्रतिबद्धता' में मुख्य मुद्दा यह उठाया जाता है कि प्रशासक उनके आचरण के अनुकूल व्यवहार करें। यह तर्क दिया जाता है कि तटस्थता की आड़ में प्रशासक विकासशील योजनाओं के क्रियान्वयन की गति में बाधा उत्पन्न करते हैं जबकि उनके पूर्ण सहयोग की आवश्यकता रहती है।

यह दो भिन्न प्रकार के विचार प्रशासकों एवं राजनीतिज्ञों के मध्य सम्बन्धों में तनाव एवं दबाव की स्थिति बनाए रखते हैं। साथ ही उन्हें संयुक्त रूप से कार्यक्रमों को लागू करने की भी बाध्यता होती है। हस्तान्तरित विधान की सम्पूर्ण धारण 'राजनीति' और 'प्रशासन' के विभाजन को अर्थहीन एवं तथ्यहीन सिद्ध कर देती है। तथ्यों एवं आंकड़ों के अभाव में किसी भी नीति का सफल निर्धारण असम्भव है। ये तथ्य एवं आंकड़े प्रशासनिक अधिकार ही प्रस्तुत करते हैं। अनेक कानून केवल इस कारण संशोधित या रद्द कर दिए जाते हैं क्योंकि प्रशासनिक अधिकारियों को उन्हें क्रियान्वित करते समय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कानूनों एवं नीतियों की व्यावहारिकता तथा अव्यावहारिकता प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। इस प्रकार प्रत्येक कदम पर राजनीतिज्ञ एवं प्रशासक आपस में एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। कोई भी ऐसी नीति, जो प्रशासनिक अनुभवों पर आधारित नहीं है, भयंकर परिणामों को जन्म देती है। अतः राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकों के सम्बन्ध पर विचार करते समय किसी भी अतिवादी दृष्टिकोण से बचते हुए दोनों के बीच संतुलन की स्थापना की जानी चाहिए।

12.8 लालफीताशाही

संरचनात्मक रूप से प्रशासन में जो कमी पाई जाती है उसको सुधारने के लिए दो प्रमुख परिवर्तन आवश्यक हैं- समन्वय स्थापित करना तथा लालफीताशाही में कमी करना। प्रशासन

क हर स्तर पर समन्वय समितियाँ बननी चाहिए। साथ ही, लालाफीताशाही पर नियन्त्रण पाया जाना चाहिए। जब नियमों-विनियमों के पालन में आवश्यकता से अधिक बारीकी की प्रकृति होती है तो प्रशासन का लचीलापन समाप्त हो जाता है। लालाफीताशाही अथवा अनावश्यक औपचारिकता नौकरशाही को कठोर यंत्रवत् और अत्यन्त औपचारिक कार्यविधि बना देती है।

दफ्तरों में कार्य को पूरा करने में बहुत विलम्ब होता है। आजकल निर्णय-निर्माण में भी अधिक समय लगता है। अधिकतर पूर्वस्थापित कार्यप्रणाली और पूर्वनिर्णयों के अनुकूल ही कार्यवाही होती है। अनेक रास्तों से गुजर कर एक फाइल पास होती है। जिसके कारण समय पर निर्णय होना सम्भव नहीं हो पाता है। साथ ही, निर्णय करते समय बाहरी भागों का भी प्रभाव देखने को मिलता है।

नौकरशाही आधुनिक परिस्थितियों तथा लक्ष्यों के अनुरूप अपने आप को परिवर्तित नहीं करती। वह अपने आप में सुधार लाने के लिए उत्सुक नहीं दिखाई देती है। आज समाज जितनी तीव्र गति से परिवर्तन की अपेक्षाएं करता है, उतनी तेजी से प्रशासन स्वयं में सुधार लाने हेतु उत्सुक नहीं है। भर्ती के प्रश्न को लेकर प्रशिक्षण की व्यवस्था तक लोक सेवाओं को इस दिशा में प्रवृत्त करने की आवश्यकता है। उनमें आदर्शों के प्रति जितनी अधिक निष्ठा होगी, उतनी ही अधिक कुशलता से वह अपना दायित्व सम्पन्न कर सकते हैं। इसके साथ ही, उनके प्रति सामाजिक प्रतिष्ठा के भाव भी विकसित होंगे।

हालाँकि लम्बी कार्यवाही में समय अधिक लगता है किन्तु उसके भी अपने लाभ हैं। हर काम यदि क्रम से किया जाता है तो उसमें त्रुटियाँ कम होती हैं तथा एक स्तर के ऊपर दूसरे का नियन्त्रण रहता है। किन्तु आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तन की गुंजाइश होनी भी जरूरी है।

12.9 भ्रष्टाचार

विकास प्रशासन की सफलता के लिए जिस प्रकार से जन सहभागिता आवश्यक है, उसी प्रकार से यह भी जरूरी है कि लोक सेवक तथा जन साधारण के बीच में विश्वास की भावना होनी चाहिए। जनता में सामान्य विश्वास होना चाहिए कि कार्यकर्ता सक्षम, निष्पक्ष तथा जन हित में संलग्न हैं। इसके अतिरिक्त, लोक सेवक के विरूद्ध नागरिकों की शिकायतों की छानबीन करने और निष्पक्ष रूप से उन्हें निपटाने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। इस उद्देश्य से कई विभागों ने जन अभियोग निराकरण विभाग स्थापित किए हैं। प्रशासनिक भ्रष्टाचार, अनियमितताओं एवं ज्यादतियों पर रोक लगाने तथा नागरिकों की शिकायतों के निवारण की दिशा में लोक सम्पर्क की भी भारी उपयोगिता है।

आज के समय में भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। इसके अनेक रूप सामने आते हैं, रिश्वतखोरी, ठेकेदारी के पेमेन्ट में कमीशन, सरकारी टेन्डरों के लिए माल की सप्लाई में हिस्सेदारी, भाई-भतीजावाद, पक्षपात, दबावों के आगे झुकना अथवा किसी को लाभ पहुँचाने के लिए कानून अथवा नियमों की लापरवाही अथवा उल्लंघन आदि। अतीत में भ्रष्टाचार प्रशासन के निचले स्तरों तक ही सीमित था। उच्च स्तर इससे लगभग पूर्णतया मुक्त था। आज की बदली हुई परिस्थितियों में भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और नौकरशाही में साँठ-गाँठ होती है और दोनों ही प्रशासन की मशीनरी का प्रयोग अपने व्यक्तिगत तथा दलीय हितों के लिए करते हैं।

12.10 सारांश

राजनीतिक विकास की सफलता के लिए कुछ समस्याओं का समाधान जरूरी माना गया है। लूसियन पाई का मानना है कि राजनीतिक पद्धति की इन समस्याओं का समाधान अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण, सामान्य अथवा विशेषज्ञ प्रशासक, नौकरशाही का राजनीतिकरण अथवा तटस्थता, जनता की शासन में सहभागिता, भ्रष्टाचार एवं लालफीताशाही कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो कि आज इस क्षेत्र में विवाद का विषय बने हुए हैं। किसी एक पक्ष को स्वीकार करने से लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए दोनों के बीच के रास्ते को अपनाना आवश्यक हो जाता है। गतिशीलता, निरन्तर परिवर्तन और नवीनीकरण ही, विकास प्रशासन की सफलता का आधार बन सकते हैं।

12.11 उपयोगी पुस्तकें

1. डा0 एम0 पी0 शर्मा और सडाना : लोक प्रशासन–सिद्धान्त एवं व्यवहार

2. निशा वशिष्ट : भारत में नौकरशाही की कार्य प्रणाली

3. प्रीति जोशी : विकास प्रशासन

4. श्री राम माहेश्वरी : प्रशासनिक सिद्धान्त

5. पाई पानन्दीकार और कृषिर्सागर (Kshirsagar) : ब्यूरोक्रेसी एण्ड डवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन

6. मोहित भट्टाचार्या : डेवेलप्मेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन

7. बी0 एल0 फाडिया और कुलदीप फाडिया : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एडमिनिस्ट्रेटिव थ्योरीज़ एण्ड कॉनसेप्ट्स

12.12 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

(1) विकास प्रशासन के प्रमुख मुद्दों पर एक निबन्ध लिखिए।

(2) विकासशील देशों में प्रशासनिक व्यवस्था के सम्मुख कौन सी चुनौतियाँ हैं?

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) विकास प्रशासन के सम्मुख कौन सी प्रमुख समस्याएँ हैं?

(2) प्रशासन एवं जन-साधारण के बीच सहयोग की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए?

(3) लालफीताशाही पर एक टिप्पणी लिखिए।

(4) "भ्रष्टाचार आज की प्रमुख समस्या है।" विवेचना कीजिए।

(5) विकेन्द्रीकरण के कारण प्रशासनिक व्यवस्था को क्या लाभ होते हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) विकास प्रशासन में एक प्रमुख मुद्दा है-

(क) सशक्तीकरण (ख) केन्द्रीकरण-विकेन्द्रीकरण

(ग) परिवर्तन-स्थायित्व (घ) निशस्त्रीकरण-शस्त्रीकरण

(2) विकास प्रशासन में किन की आवश्यकता होती है?

(क) समानज्ञ (ख) लोक-सेवक

(ग) सहायक (घ) विशेषज्ञ

(3) विकेन्द्रीकरण के द्वारा कौन से लाभ प्राप्त होते हैं?

(क) स्थानीय पहल (ख) नागरिक की भागीदारी

(ग) दोनों (घ) कोई भी नहीं

(4) लाल-फीताशाही के कारण व्यवस्था में कौन सा दोष आ जाता है?

(क) अनावश्यक औपचारिकता (ख) निर्णय तुरन्त होते हैं

(ग) लचीलापन समाप्त होता है (घ) लक्ष्य-परिवर्तन होता है

(5) विकास प्रशासन की 'चार पी' में कौन सी समस्याएं सम्मिलित हैं?

(क) गरीबी, बेरोजगारी, प्रदूषण, व्यवस्था

(ख) प्रदूषण, गरीबी, जनाधिक्य, निशस्त्रीकरण

(ग) प्रदूषण, गरीबी, जनाधिक्य, हथियारों की होड़

(घ) योजनाएँ, नीतियाँ, कार्यक्रम, परियोजना

12.13 सम्बन्धित प्रश्न

1. (ख)
2. (घ)
3. (ग)
4. (ग)
5. (ग)

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

MAPS-104
लोक प्रशासन

खण्ड

5

प्रशासन पर नियंत्रण

इकाई 13
प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्त्व 5

इकाई 14
प्रशासन पर विधायी, प्रशासनिक एवं न्यायिक नियंत्रण 15

इकाई 15
प्रशासन पर नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Areas), न्यायिक सक्रियता 32

परामर्श समिति

प्रो. केदार नाथ सिंह यादव, कुलपति	अध्यक्ष
डॉ. हरीश चन्द्र जायसवाल, वरिष्ठ परामर्शदाता	कार्यक्रम संयोजक
प्रो. के. पी. सिंह, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
डॉ. अर्जुन तिवारी, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
प्रो. ए.एन. द्विवेदी, वरिष्ठ परामर्शदाता	सदस्य
डॉ. रत्नाकर शुक्ला, कुलसचिव	सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. आर.के. मणि त्रिपाठी — विषय विशेषज्ञ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

प्रो. एल.डी. ठाकुर — विषय विशेषज्ञ
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
राजनीतिशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

प्रो. एस.एम. सईद — विषय विशेषज्ञ
राजनीतिशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. मंजूलिका श्रीवास्तव — दूरस्थ शिक्षा विशेषज्ञ
रीडर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. एस. के. द्विवेदी — सम्पादक
राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

PGPS-05 :– लोक प्रशासन

लेखक मण्डल

खण्ड एकः **प्रो. ए .एन दूबे**, राजनीति शास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी 3 इकाई

खण्ड दोः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड तीनः **डॉ. आर.के. जायसवाल**, रीडर, राजनीति शास्त्र वि., के.एस. साकेत महावि.,फैजाबाद 3 इकाई

खण्ड चारः **डॉ. मनूका खन्ना**, रीडर, राजनीति शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई

खण्ड पाँचः **प्रो. एस.एन. सिंह**, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 3 इकाई
डॉ. वी.के. राय, **रीडर**, राजनीति शास्त्र विभाग, इला. विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुति अनुमन्य नहीं है।

दूरस्थ शिक्षा परिषद, नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित।

खण्ड 5 का परिचय : प्रशासन पर नियंत्रण

लोक प्रशासन एवं राजनीतिशास्त्र विषयों में नियंत्रण के विचार की विशेष भूमिका मानी जाती है। शासन एवं प्रशासन अपने उत्तरदायित्वों का विवेकपूर्वक ढंग से निर्वहन करें यह सुनिश्चित होना अनिवार्य होता है। शासन के विभिन्न अंगों पर अनेक प्रकार के दायित्व होते हैं। यह दायित्व मनमाने ढंग से न चलाये जाये इस कारण नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। इसी प्रकार प्रशासन को भी अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए कई प्रकार के अधिकार दिये जाते हैं। अतः नियंत्रण के माध्यम से यह सुनिश्चित करना आवश्यक रहता है कि प्रशासन अथवा शासन के विभिन्न अंग अपने अधिकार क्षेत्रों का उल्लंघन न करें जिससे कार्य सम्पादन के कठिनाई उत्पन्न हो। अतः राजनीतिशास्त्र एवं लोक प्रशासन विषयों के विषय वस्तु में नियंत्रण के अध्ययन को विशेष महत्व दिया गया है। अध्याय के इस खण्ड में नियंत्रण से सम्बंधित विषय की जानकारी प्राप्त करेंगे। यह खम्ड तीन इकाईयों में विभक्त है जिसमें पहली इकाई नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व का विशेषण करेगी तथा दूसरी इकाई प्रशासन पर विधायी, प्रशासनिक तथा न्यायिक नियंत्रण से सम्बंधित अध्ययन प्रस्तुत करेगी। तीसरी इकाई में हम प्रशासन पर नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue areas) तथा न्यायिक सक्रियता का अध्ययन करेंगे। इस प्रकार इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात् हम प्रशासन पर नियंत्रण सम्बंधी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इकाई–13 प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता

13.3 प्रशासन पर नियंत्रण का प्रभाव–अर्थ, प्रकृति एवं स्तर

13.3.1 नियंत्रण का अर्थ

13.3.2 नियंत्रण की प्रकृति

13.3.3 नियंत्रण के स्तर

13.4 प्रशासन पर नियंत्रण के प्रकार

13.5 प्रशासन पर नियंत्रण का प्रभाव

13.6 प्रशासन पर नियंत्रण की समालोचना

13.7 सारांश

13.8 उपयोगी पुस्तकें

13.9 सम्बन्धित प्रश्न

13.10 प्रश्नोत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता से परिचित होंगे
- नियंत्रण के अर्थ, प्रकृति एवं स्तरों को जान सकेंगे,
- नियंत्रण के प्रकारों के आधार को समझ सकेंगे,
- प्रशासन पर नियंत्रण के महत्त्व को समझ सकेंगे, तथा
- प्रशासन पर नियंत्रण के मूल्यांकन एवं व्याख्या करने योग्य हो जायेंगे।

13.1 प्रस्तावना

लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में अनेक सिद्धान्तों का विकास हुआ है जिनके आधार पर प्रशासन अपनी क्रियाओं को तथा अपने उद्देश्यों/लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर कुशलता से अग्रसर होना है। इन अनेक सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त 'नियंत्रण' से सम्बंधित प्रतिपादित किया गया है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि प्रशासन में नियंत्रण की आवश्यक भूमिका है जिसके आधार पर समस्त पद सोपानिक व्यवस्था अपना कार्य सुचारु रुप से कर पाने में समर्थ हो पाती है। नियंत्रण के अभाव में प्रशासन को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इस कारण नियंत्रण की आवश्यकता एवं

महत्त्व को ध्यान में रखकर इसे एक सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया गया है। इस खण्ड में हम नियंत्रण की आवश्यकता अर्थ, प्रकृति एवं उसके महत्व के सम्बंध में विशेष रुप से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

13.2 प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता

राजनीति शास्त्र तथा लोक प्रशासन में प्रशासन पर नियंत्रण के सम्बंध में अनेक विचार प्रस्तुत किये गये है। इस खण्ड में हम प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता पर संक्षिप्त विश्लेषण करेंगे। नियंत्रण की आवश्यकता मूल रूप से इसकी परिभाषा में ही विद्यमान है। विचारकों का मानना है कि संगठन की व्यवस्था बनाये रखने हेतु तथा इसके समस्त अंगों को विधिवत ढंग से संचालित करने के लिये 'नियंत्रण' आवश्यक है। वस्तुतः नियंत्रण संगठन का वह अमूर्त तत्व तथा प्रक्रिया है। जो अन्य स्वरूपों में अपना कार्य करता है तथा संगठन की प्रक्रियायें जैसे संचार, समन्वय पर्यवेक्षण, सत्ता तथा उत्तरदायित्व आदि से घुल-मिल गया है। नियंत्रण संगठन की अधिकांश प्रक्रियाओं का एक उद्देश्य है जो संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। नियंत्रण की आवश्यकता को हम एक उदाहरण के माध्यम से और स्पष्ट कर सकते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि शासन के विभिन्न अंग होते हैं जो अपने-अपने निर्धारित क्षेत्रों में विधि अनुसार अपने दायित्वों के निर्वहन के लिये स्वतंत्र रहते हैं। परन्तु कोई अंग मनमाने ढंग से अपने दायित्वों के निर्वहन के लिये कदम नहीं रुकता क्योंकि इससे शासन का संतुलन बिखर जाने की सम्भावना रहती है। इस कारण नियंत्रण आवश्यक हो जाता है जिससे प्रत्येक इकाई अपने दायित्वों को अपने दायरें में कह कर संचालित करे। इसे हम एक मोटर कार के उदाहरण से भी स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। मोटर कार की गति को घटाने या बढ़ाने तथा इसे आवश्यकता पड़ने पर रोकने के लिये अर्थात् गति पर नियंत्रण रखने के लिए ब्रेक आवश्यक होता है क्योंकि ब्रेक का नियंत्रण न होने पर या ब्रेक खराब हो जाने पर दुर्घटना की सम्भावना हो जाती है। अतः यंत्रों के संचालन में नियंत्रण का एक विशेष महत्व होता है। उसी प्रकार प्रशासन को भी हम यदि एक यंत्र अथवा एक मशीन के रूप में देखते हैं तो हमें नियंत्रण की आवश्यकता का ज्ञान होता है।

ऊपर विश्लेषित विभिन्न बिन्दुओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि नियंत्रण प्रशासन के लिये कितना आवश्यक है। बिना नियंत्रण के प्रशासन बेलगाम हो सकता है जिसमें लोक कल्याण के कार्यों को क्षति पहुँच सकती है। अतः इस खण्ड में हमने नियंत्रण की आवश्यकता का अध्ययन किया।

अग्रलिखित कारणों से प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता महसूस की जाती है :

हम जानते हैं कि राज्य के अनेक अंग होते हैं जो अपने क्षेत्र में अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हैं। वह विधायी, कार्यपालिका, न्यायपालिका आदि अंगों से सम्बन्धित होते हैं जो अपने क्षेत्र में कार्य करते हैं तथा प्रशासन पर नियंत्रण रखते हैं। नियंत्रण की भावना एक प्रकार से प्रशासन को अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन में सहायक होती है। नियंत्रण के अभाव में प्रशासन अपने लक्ष्यों एवं उत्तरदायित्व से विमुख हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में अनेक समस्यायें उत्पन्न हो सकती है जिससे प्रशासन कठिनाई में पड़ सकता है।

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा स्वीकार करने के कारण सरकार एवं प्रशासन का कार्य क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है। यहाँ प्रशासन देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में काफी हस्तक्षेप करता है, यदि इसे अनियंत्रित छोड़ दिया जाय तो शक्तियों के दुरुपयोग की संभावना बढ़ जाती है।

नवोदित एवं विकासशील राज्यों में प्रजातंत्र का विकास अधिक पुराना नहीं है। अतः इसकी रक्षा एवं

मजबूती प्रदान करने के लिए प्रशासन को नियंत्रित करने की महती आवश्यकता है। नियोजित प्रशासन ही इसे सफल बना सकता है।

वर्तमान प्रजातांत्रिक राज्यों में विधायिकाओं के पास ढेरों कार्य एवं समय का अभाव रहता है अतएव संसद द्वारा व्यवस्थापन की कुछ शक्तियाँ कार्यपालिका को हस्तान्तरित की जाती है। इसका प्रयोग अन्ततः प्रशासनिक अधिकारी ही करते हैं। यदि उन पर नियंत्रण नहीं रखा गया तो शक्ति का केन्द्रीकरण नागरिक स्वतन्त्रताओं एवं अधिकारों का अपहरण करेगा।

सरकार द्वारा प्रशासन के संचालन हेतु जो नियम निर्धारित किए जाते हैं, वे जनता की अपेक्षा प्रशासन की सुविधा को अधिक ध्यान में रखते हैं। इनकी सहायता से प्रशासन अपने में शक्ति का केन्द्रीयकरण करके जनहित पर कुठाराघात कर सकता है। अतः उसे नियंत्रित रखने की आवश्यकता महसूस की जाती है।

राजनीतिक एवं व्यक्तिगत कारकों के दुष्प्रभावों से प्रशासक दबाव महसूस करते हैं फलतः प्रशासन में पक्षपात बेईमानी, भ्रष्टाचार आदि दोष पनपने लगते हैं इसलिए उचित नियंत्रण की व्यवस्था के द्वारा इस पर रोक लगाना आवश्यक हो जाता है।

गलत दबाव को न सुनना या न मानना प्रशासक का गुण है, किन्तु कुछ प्रशासक विभागीय नियमों एवं व्यवस्थाओं की अवहेलना करने तथा स्वेच्छाचारी व्यवहार में ही अपनी शोभा मानते हैं। यदि यह प्रकृति बढ़ती गयी तो प्रशासन तंत्र अनेक बुराईयों से ग्रसित हो जाता है एवं जैसा कि लार्ड हीवेट ने माना कि 'एक नई निरंकुशता' के जन्म लेने का खतरा पैदा हो जाता है। अतः नियंत्रण की व्यवस्था करना आवश्यक है।

13.3 प्रशासन पर नियंत्रण का प्रभाव–अर्थ, प्रकृति एवं स्तर

प्रशासन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नियंत्रण पथ-प्रदर्शन एवं नियमन का कार्य करता है। नियंत्रण का कार्य यह देखना है कि एक मानवीय समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करने में कितना सफल हो रहा है तथा अपनी योजनाओं को किस हद तक लागू कर पाने में सफल है। अतएव नियंत्रण वह प्रबन्धकीय कार्य होता है जिसके द्वारा प्रत्येक देश द्वारा निर्धारित एवं स्पष्ट की गई नीतियों को समुचित तरीके से सतत् क्रियान्वयन किया जा सके।

13.3.1 नियंत्रण का अर्थ

नियंत्रण को एक प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया गया है। थियो हैमेन का कहना है कि नियंत्रण देखभाल करने की एक प्रक्रिया है बल्कि यह पता चल सके के नियोजन का अनुसरण किया जा रहा है या नहीं, लक्ष्यों की दिशा में प्रगति हो रही है या नहीं और यदि आवश्यक हो तो सुधार के लिए क्या प्रयास किया जाये। इस परिभाषा को हम संगठन के विशेष संदर्भ में देखते हैं जिससे प्रशासनिक लक्ष्यों की आपूर्ति हेतु नियंत्रण प्रक्रिया की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार के विचार हमें हेनरी फेयोल में भी देखने को मिलता है। हेनरी फेयोल ने नियंत्रण को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह प्रत्येक कार्य को योजनानुसार, विधि अनुसार, निर्देशानुसार तथा निर्धारित प्रक्रिया या सिद्धान्तों के अनुसार सम्पादित कराने की प्रक्रिया है जो सही या गलत को प्रमाणित करती है। इस परिभाषा को हम संगठन के विशेष संदर्भ में देखते हैं। वस्तुतः नियंत्रण संगठन की व्यवस्था को बनाये रखने तथा उसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक सुधारात्मक उपाय के रूप में देखा जाता है। इसे बहुधा प्रबंध का नकारात्मक पक्ष भी मान लिया जाता है। इस नियंत्रण को जवाबदेही को सुनिश्चित करने की एक आवश्यकता कह सकते हैं।

उपयुर्क्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नियंत्रण के अभाव में प्रशासन अपने लक्ष्यों एवं उत्तरदायित्वों से विमुख हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में अनेक समस्या में उत्पन्न हो सकती है जिससे प्रशासन कठिनाई में पड़ सकता है।

13.3.2 नियंत्रण की प्रकृति

नियंत्रण की प्रकृति को निम्न विशिष्टताओं के आधार पर भली-भाँति समझा जा सकता है–

1. नियंत्रण निरन्तर जारी रहने वाली सतत प्रक्रिया है क्योंकि जब तक कोई संगठन अपने लक्ष्य की प्राप्ति की दृष्टि से कोई न कोई कार्य करते रहेंगे तब तक नियंत्रण का कार्य भी जारी रहेगा।

2. नियंत्रण प्रबन्ध का प्रारम्भिक कार्य न होकर अन्तिम कार्य है जो कि प्रबन्ध के अन्य कार्यों का अनुगमन करता है। यह इस बात की जाँच करता है कि संगठन के साधनों लक्ष्यों एवं प्रयासों में कहां तक समन्वय, सन्तुलन एवं सामंजस्य स्थापित हो पाया है।

3. नियंत्रण संगठन के सभी स्तरों एवं कार्यों पर लागू होने वाली प्रक्रिया है जिसे उच्चस्तरीय प्रबन्ध से निम्न स्तरीय प्रबन्ध तक पाया जाता है।

4. नियंत्रण सम्पन्न की जा चुकी क्रियाओं पर प्रभावी नहीं होता अपितु जो क्रियायें आगे भविष्य में सम्पन्न की जानी है उन पर प्रभावी होता है।

5. नियंत्रण मानवीय क्रियाओं पर प्रभावी होता है, निर्जीव अथवा अन्य चीजों पर लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका सम्बन्ध व्यक्ति परक क्रियाओं से होता है।

6. नियंत्रण से तात्पर्य अधीनस्थों के अधिकारों में न तो कटौती करना है और नहीं ही उसमें हस्तक्षेप करना ही। नियंत्रण तो तथ्यपरक क्रिया है जो कि व्यक्तिगत भावनाओं से प्रभावित नहीं होता।

   अतः नियंत्रण प्रबन्ध की एक सकारात्मक प्रवृत्ति की द्योतक है न कि उसके मार्ग में हस्तक्षेप अथवा रुकावटें पैदा करने वाली निषेधात्मक प्रवृत्ति।

13.3.3 नियंत्रण के स्तर

नियंत्रण एक सततगामी निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रत्येक संगठन में हरेक स्तर पर पायी जाती है, परन्तु प्रशासनिक संगठन में पाये जाने वाले नियंत्रण को दो स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है–

1. उच्च प्रबन्धन के स्तर पर नियंत्रण–उच्च स्तर पर प्रबन्धन में वित्तीय नियंत्रण, मानव संसाधन नियंत्रण, तकनीकी नियंत्रण, आदि को लिया जा सकता है।

2. निम्न प्रबन्धन के स्तर पर नियंत्रण–निम्न स्तर पर प्रबन्धन एक विशिष्ट प्रकृति की क्रिया है जो उच्च स्तरीय प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से विशिष्ट क्रिया क्षेत्रों में सम्पादित की जाती हैं। इस प्रकार के नियंत्रण में बजट नियंत्रण, उत्पादन नियंत्रण आन्तरिक अंकेक्षण, सामग्री, नियंत्रण आदि को सम्मिलित किया जाता है।

13.4 प्रशासन पर नियंत्रण के प्रकार

आधुनिक राज्य लोक कल्याणकारी राज्य है। राज्य ने लोक सेवाओं के द्वारा अपने नागरिकों को अपने ऊपर अधिक से अधिक निर्भर बना लिया है। राज्य के ऊपर बढ़ते हुए कार्यों के बोझ ने प्रशासकीय

शक्ति में स्वाभाविक रूप से विस्तार किया है। प्रशासन असीमित शक्तियों का केन्द्र बन गया है। लोक प्रशासन और उसका सेविवर्ग अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करे, निरंकुश एवं अनुत्तरदायी न बने, इसके लिए यह आवश्यक है कि उनकी शक्तियों को नियंत्रित किया जाय और उन पर अंकुश रखा जाय। एक प्रजातान्त्रिक समाज में शक्ति पर नियंत्रण रहना आवश्यक है। शक्ति जितनी बड़ी होगी व्हाईट का मानना है कि उस पर नियंत्रण की आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी स्पष्ट उद्देश्यों के लिए पर्याप्त अधिकार कैसे समाहित किए जायें और सत्ता को पंगु बनाये बिना कैसे समुचित नियंत्रण बनाये रखा जाय, यह एक लोकप्रिय सरकार के समक्ष सदैव से एक ऐतिहासिक उलझन रही है। जनतन्त्र में प्रशासन का संचालन जनहित के लिए जनता की सहमति से किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रशासन जनता के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी रहे।

विभिन्न दृष्टियों से नियंत्रण को विभिन्न रूपों में बांटकर इसका वर्गीकरण किया जाता है, जो निम्न आधारों पर संक्षिप्त रूप में समझा जा सकता है–

(1) क्रियाओं अथवा संचालन के आधार पर नियंत्रण को निम्न पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(i) नीति नियंत्रण

(ii) पद्धति नियंत्रण

(iii) संगठन नियंत्रण

(iv) कर्मचारी

(v) वेतन एवं मजदूरी नियंत्रण

(2) प्रबन्धकीय स्तरों के आधार पर नियंत्रण को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(i) उच्च स्तरीय नियंत्रण, जैसे वित्तीय, तकनीकी नियंत्रण आदि।

(ii) निम्न स्तरीय नियंत्रण, जैसे, बजट, सामग्री आदि नियंत्रण।

(3) लक्ष्य अथवा प्रमापन की दृष्टि से नियंत्रण को मुख्यतः निम्न आधारों पर विभक्त किया जाता है–

(i) भौतिक नियंत्रण अर्थात् जिसका प्रमापन भौतिक प्रमापों से सम्पन्न होता है।

(ii) वित्तीय नियंत्रण, जिसके अन्तर्गत संस्था की प्रत्येक सम्पत्ति एवं क्रिया का भौतिक मूल्य मालूम करके आय-व्यय को सन्तुलित किया जाता है।

13.5 प्रशासन पर नियंत्रण का महत्व

प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता का अध्ययन करने के पश्चात् अब प्रशासन पर नियंत्रण के महत्व का अध्ययन करें। एक प्रकार से यदि हम देखें तो नियन्त्रण की आवश्यकता ही इसके महत्व को दर्शाती है। इसके महत्व के कारण ही राजनीति शासन एवं लोक प्रशासन के विषय वस्तु में इसे विशेष स्थान प्राप्त है। नियन्त्रण का महत्व इसकी प्रमुख विशेषताओं के कारण भी कहा जा सकता है। आइए अब उन विशेषताओं तथा कारणों का अध्ययन करें जो नियंत्रण के महत्व पर प्रकाश डालते हैं

प्रशासन के परिप्रेक्ष में यदि हम ध्यान दें तो हम कह सकते हैं कि नियंत्रण संगठन में चलने वाली सतत एवं गतिशील प्रक्रिया है। साथ ही यह संगठन के प्रत्येक स्तर पर कार्य करती है। **नियत्रण की** आवश्यकता संगठन के विभिन्न स्तरों पर होती है **जो समरूप को सुवारूप से वलाने मे सुगमता**

प्रदान करते हैं। यह भी कहा जाता है कि नियंत्रण संगठन के लक्ष्यों, कार्यों, योजनाओं, तथा प्रतिष्ठा के संदर्भ में व्यवस्था बनाये रखने के लिये किया जाता है। नियंत्रण के अभाव में संगठन की व्यवस्था को तथा उसके अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लग सकता है। अतः नियन्त्रण संगठन की संरचना, कार्यकुशलता, व्यवस्था बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका सतत् निभाता है। विद्वानों का यह भी मानना है कि नियंत्रण संगठन के कार्मिकों से ही सम्बंधित नहीं है बल्कि नीति, भौतिक साधनों, उत्पाद या सेवाओं, कार्य प्रणाली तथा अन्य सभी पक्षों से सम्बन्धित है।

प्रशासन एवं राजनीतिक प्रक्रिया में नियंत्रण के महत्व की गम्भीरता को समझने के लिये हम इसके विभिन्न प्रकारों पर ध्यान देना सहायक होगा। संगठन के आकार, उद्देश्यों, स्वरूप या प्रकृति के अनुसार नियंत्रण की विधियाँ तथा प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती है। लोक प्रशासन में नियंत्रण के दो प्रमुख उद्देश्य है जो नियंत्रण की प्रवृत्ति एवं विधि को निर्धारित करते हैं। पहला यह है कि नियंत्रण के माध्यम से वित्तीय संसाधनों के दुरुपयोग को रोकना। दूसरा है संविधान, कानून नीतियों तथा निर्धारित नियमों के अनुसार प्रशासनिक कार्यों का संचालन करना। प्रशासन में नियंत्रण की विधा इन्हीं दो उद्देश्यों पर केन्द्रित है। राजनीति शास्त्र में नियंत्रण का प्रमुख उद्देश्य शासन के विभिन्न अंगों में सत्ता एवं प्राधिकार का विवेकपूर्ण वितरण तथा अनुपालन। इस प्रकार नियंत्रण की विधि भी इसी के आधार पर अलग-अलग होगी। इसको हम विधायी नियंत्रण, न्यायिक नियंत्रण, प्रशासनिक नियंत्रण आदि की संज्ञा देते है। इन विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों का अध्ययन हम खण्ड के अगले अध्याय में विस्तार से करेंगे। यहां इतना जानना पर्याप्त होगा कि नियंत्रण का महत्व कितना गम्भीर है तथा इसका विस्तार किस प्रकार है। नियंत्रण का महत्व लोक प्रशासन तथा राजनीति शास्त्र दोनों में विश्लेषित किया गया है। परन्तु दोनों में हम नियंत्रण की प्रकृति स्वरूप एवं विधि को अलग-अलग ढंग से पढ़ते है। दोनों के कार्यक्षेत्र भिन्न होने के कारण भी यह भिन्नता दिखाई देती है। परन्तु यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि नियंत्रण के विचार को दोनों विषयों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। नियंत्रण के अभाव में विवेकपूर्ण प्रशासनिक संरचना कठिन है। इसी प्रकार नियंत्रण के अभाव में शासन के विभिन्न अंगों की सत्ता एवं प्राधिकार के प्रयोग को लेकर समरूपता का अभाव रहेगा सम्पूर्ण व्यवस्था को प्रभावित करेगा।

नियंत्रण के महत्व को और अधिक स्पष्ट करने के लिये हम कुछ उदाहरण के माध्यम से इसको समझ सकते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि शासन के विभिन्न अंगों में एक महत्वपूर्ण अंग विधायिका का है। इसका कार्य एवं उत्तरदायित्व कानून बनाना है। परन्तु वह कानून उचित है कि नहीं है, नियम-संगत है कि नहीं है, संविधान के अनुच्छेदों के अनुकूल है या नहीं इत्यादि यह देखना आवश्यक माना जाता है। नियमों की वैधता की जाये वरना न्यायपालिका के कार्यक्षेत्र में रखा गया है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि यद्यपि विधायिका अपने कार्यक्षेत्र में काफी हद तक स्वतंत्र हैं–परन्तु इसके कार्यों के अनेक पहलुओं पर एक नियंत्रण, न्यायपालिका द्वारा रखा गया है। इससे हम नियंत्रण के महत्व को समझ सकते हैं कि यह शासन प्रक्रिया के सुचारुरुप से संचालन में कितना महत्वपूर्ण है। हम यह भी समझ सकते हैं कि इस नियंत्रण में कितने प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

इसी प्रकार के उदाहरण अन्य प्रकार के शासन के अंगों में हम देख सकते हैं। अतः पिछले पृष्ठों में वर्णित एवं विश्लेषित बिन्दुओं के आधार पर हम नियंत्रण के महत्व को समझ सकते हैं। लोक प्रशासन एवं राजनीति शास्त्र के विषय वस्तु में नियंत्रण के महत्व को स्पष्ट रूप से विवेचित किया गया है।

संक्षेप में, प्रशासन में नियंत्रण की महत्ता को हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ सकते हैं–

नियंत्रण के द्वारा नियोजन की सफलता-असफलता, संगठन के कार्यों की प्रभावशीलता की जाँच करना आसान हो जाता है एवं प्रभावी प्रशासन की नींव पड़ती है।

2. नियंत्रण द्वारा प्रशासन के कार्यों, उद्देश्यों एवं साधनों में सन्तुलन स्थापित किया जाता है इससे संगठन में समन्वय स्थापित करना सुविधाजनक हो जाता है।

3. नियंत्रण द्वारा संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों की दुर्बलताओं एवं कमियों को बताकर उन्हें दूर करने का उपाय भी बतलाया जाता है जिससे संगठन में ऐसे वातावरण का निर्माण हो सके जिसमें काम करने वाले लोगों में सहयोग एवं सामंजस्य की स्थापना होवे।

4 नियंत्रण संगठन के प्रत्येक कार्यों के जाँच पुनर्निरीक्षण के माध्यम से लोक कर्मचारियों को जोखिम से बचने का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध होता है।

5. नियंत्रण संगठन में नैतिक मूल्यों, अन्यायपूर्ण क्रियाओं, भ्रष्टाचार एवं कार्य में देरी जैसे निषेधात्मक प्रवृत्तियों पर रोकथाम लगाता है। जिससे कर्मचारियों में उच्च नैतिक बल, आवश्यक कार्य की दशाएँ एवं उचित समन्वय पैदा किया जा सके।

6. नियंत्रण संगठन में निर्णयन की प्रक्रिया से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है क्योंकि कार्यपालकीय निर्णय प्राथमिक तौर पर व्यवहार में नियन्त्रण निर्णय ही होते हैं।

13.6 प्रशासन पर नियंत्रण की आलोचना

प्रशासन पर नियंत्रण के विचार की कई प्रकार से आलोचना की जाती है। आइये अब इन बिन्दुओं का अध्ययन करें जिनके आधार पर प्रशासन पर नियंत्रण की आलोचना की है।

प्रशासन पर नियंत्रण की आलोचना का प्रमुख बिन्दु यह कहा जाता है कि इससे कार्य करने की स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न होती है। इसे हम दूसरे शब्दों में कह सकते है? कि यह एक प्रकार से स्वतंत्रता का हनन है, उत्तरदायित्वों के निर्वहन में बाधक है। आलोचकों का यह भी कहना है कि क्षमता के उन्मुक्त विकास में बाधा होती है। नियंत्रण को एक नकारात्मक सोच का केंद्र बिन्दु कहा जा सकता है। इस कारण इसे अच्छा नहीं माना जाता है।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में कुछ आलोचक इसे सिद्धान्त मानने से ही इन्कार करते हैं। इसके अन्तर्गत कोई सार्वभौमिकता नहीं है। इसमें एकरूपता का भी अभाव है। यद्यपि विचारकों ने नियंत्रण को परिभाषित करने का प्रयास किया, इसके अनेक प्रकारों को भी विश्लेषित किया है। परन्तु आलोचकों के अनुसार यह एक नकारात्मक विचार का परिणाम मात्र है। इससे संगठन के कार्यों में इसके विकास में बाधा आती है। यह उसे सीमित कर देता है!

राजनीतिशास्त्र में हम शासन के विभिन्न अंगों पर एक दूसरे पर नियंत्रण तथा उनके अर्न्तसम्बन्धों का अध्ययन करते हैं। कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका, प्रशासन आदि सभी शासन के प्रमुख अंग माने जाते हैं तथा सभी का अपना कार्यक्षेत्र है तथा अपने संवैधानिक उत्तरदायित्व है। इन विभिन्न अंगों पर नियंत्रण एक नकारात्मक प्रभाव डालता है। यद्यपि विचारक इसे आवश्यक मानते हैं, परन्तु आलोचकों का मानना है कि इससे कार्य करने की स्वतंत्रता प्रभावित होती है। हमेशा एक संदेह की सी स्थिति बनी रहती है। कार्यकुशलता में कमी आने पर एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप का चलन सा बन जाता है। इस कारण नियंत्रण का शासन की सम्पूर्ण कार्य प्रणाली पर एक नकारात्मक प्रभाव डालता है। इसे आलोचना का एक बिन्दु मानते हैं।

लोक प्रशासन एवं राजनीति शास्त्र के विषय-वस्तु के वर्तमान संदर्भों में 'न्यायिक सक्रियता' का एक नया विकास जुड़ गया है। इस पर विस्तृत विश्लेषण खण्ड के अगले भाग में प्रस्तुत किया गया है। यहां पर हम केवल नियंत्रण की आलोचना के परिप्रेक्ष्य में उदाहरण के तौर पर उद्धारित करेंगे। जैसा कि हम जानते हैं कि शासन के विभिन्न अंग अपने-अपने कार्यक्षेत्र में स्वतंत्र रूप से अपने

उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हैं। परन्तु कार्यपालिका के कुछ कार्यों में न्यायपालिका रुचि लेकर विशेष निर्देश देती है तो इसे कार्यपालिका अपने क्षेत्र में हस्तक्षेप के रूप में देखती है। इसी प्रकार विधायिका के क्षेत्र में न्यायपालिका अपना हस्तक्षेप किन्हीं कारणों से करने का प्रयास करती है इसे भी न्यायपालिका का एक प्रकार से नियंत्रण का भाव दिखाई देता है। इस प्रकार के प्रकरण वर्तमान में बहुधा चर्चा में आये हैं और इसे 'न्यायिक सक्रियता' की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार के हस्तक्षेप या नियंत्रण करने की प्रवृत्ति अर्न्तसम्बन्धों को कहीं न कहीं प्रभावित करती है।

इस प्रकार प्रशासन पर नियंत्रण के विचार को आलोचकों ने अनेक बिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जो संक्षेप में निम्नवत् हैं :

1. नियंत्रण एक नकारात्मक सोच का पर्याय है जो कभी-कभी प्रशासकों को उत्तरदायित्वों के निर्वहन में अतिशयता का शिकार बनाकर विपरीत परिणाम देने लगती है।
2. नियंत्रण में एकरूपता का अभाव है जिसमें इसके सिद्धान्त को सार्वभौम नहीं माना जा सकता है।
3. अतिशय नियंत्रण से कार्यकुशलता में कमी आती है एवं संगठन आरोप-प्रत्यारोप का शिकार हो जाता है जिससे सम्पूर्ण संगठन की कार्य प्रणाली, दुष्प्रभावित हो जाती है।
4. न्यायिक सक्रियता संगठन के समुचित कार्य प्रणाली के संचालन में बाधा उत्पन्न करने की स्थिति पैदा करने लगती है।
5. नियंत्रण द्वारा आन्तरिक घटक ही नियंत्रित किये जा सकते हैं, बाहरी घटकों को नियंत्रित करना प्रशासकों की क्षमता से बाहर होता है।
6. प्रशासन में ऐसे कई मामले होते हैं जिनका सही प्रमापन करना संभव नहीं होता।
7. कभी-कभी विचलन (deviation) मालूम हो तब भी सुधारात्मक कार्यों को लागू कर पाना संभव नहीं होता है।

13.7 सारांश

इस इकाई में हमने प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता अर्थ, प्रकृति एवं महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त की। विचारकों के अनुसार प्रशासन पर नियंत्रण एक महत्वपूर्ण आवश्यकता मानी गयी है। नियंत्रण के अभाव में प्रशासन मनमाने ढंग से कार्य कर सकता है जिससे इसकी कार्यकुशलता एवं क्षमता प्रभावित हो सकती है। इस इकाई के अर्न्तगत हमने नियंत्रण को परिभाषित करने का प्रयास किया जिससे उसे समझने में आसानी हो सके। साथ ही नियंत्रण के विभिन्न प्रकारों का भी अध्ययन किया।

हमने लोक प्रशासन तथा राजनीति शास्त्र के विशेष संदर्भों में प्रशासन पर नियंत्रण का अध्ययन प्रस्तुत किया और दोनों की भिन्नता को समझने का प्रयास किया। प्रशासन में नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व का संक्षिप्त अध्ययन करने के साथ ही इसकी कमियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की।

13.8 उपयोगी पुस्तकें

1. Godhok, D.N., Parliamentary Control over Government Expenditure, Sterling Pub.; 1976.
2. Ceifen, Gerold E. : Dynamics of Public Administration : Guidelines to

Current Transformation in Theory and Practice, New York, Holt, Riveharts hinston Inc., 1971.

3. Negro, Filix A : Modern Public Administration, New York, Harp and Row, 1970.
4. Arora, Ramesh (ed.) : Puspcetive is Administrative Theory, New Delhi, Associate Publishers, 1979.
5. Awasthi A. and Maheshwari's : Public Administration, Agra, Laxami Narain Agarwal, (Hindi & English) 1990
6. Bhattacharya, Mohit : Public Administration, Calcutta, World Press, 1987.
7. Basu, Rumki, Public Administration : Concepts and theories, (English & Hindi) Sterling Publishers Pvt. Ltd., 1990.
8. दुबे, आर0के0 : आधुनिक लोक प्रशासन, आगरा लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 1992
9. Speeches and Writings of G.V. Mav lankar–Lok Sabha Secretariat, 1957.
10. श्यामलाल शकधर : संविधान एवं संसद, 1975

13.9 सम्बंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. नियंत्रण के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।
2. प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता के प्रमुख बिन्दुओं की समीक्षा कीजिए।
3. प्रशासन पर नियंत्रण के महत्व का विश्लेषण कीजिए।
4. प्रशासन पर नियंत्रण का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रशासन पर नियंत्रण से आप क्या समझते हैं?
2. 'नियंत्रण' शब्द को परिभाषित कीजिए।
3. प्रशासन पर नियंत्रण क्यों आवश्यक हैं?
4. प्रशासन पर नियंत्रण क्यों महत्वपूर्ण है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौन नियंत्रण का प्रकार नहीं माना जाता है–
   (अ) वित्तीय नियंत्रण
   (ब) विधायी नियंत्रण
   (स) न्यायिक नियंत्रण
   (द) सामाजिक नियंत्रण
2. निम्न में से किस कारण नियंत्रण आवश्यक है?

(अ) उत्तरदायित्व निर्वहन के लिये

(ब) लक्ष्यों की आपूर्ति के लिये

(स) जवाबदेही सुनिश्चित करने हेतु

(द) उपर्युक्त सभी

3. निम्न में से कौन नियंत्रण की परिभाषा में नहीं आता है?

(अ) देखभाल करने की प्रक्रिया

(ब) उद्देश्यों की आपूर्ति हेतु

(स) व्यक्तिगत लक्ष्यों की आपूर्ति हेतु

(द) संगठन की व्यवस्था बनाये रखने हेतु

4. निम्न में से कौन नियंत्रण की आलोचना का बिन्दु नहीं है–

(अ) उन्मुक्त विकास में बाधक

(ब) व्यक्तिगत दिनों की रक्षा में बाधक

(स) एकरूपता का अभाव

(द) सार्वभौमिकता की कमी

13.10 प्रश्नोत्तर·

1. (द)
2. (द)
3. (स)
4. (ब)

इकाई–14 प्रशासन पर विधायी, प्रशासनिक एवं न्यायिक नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 प्रशासन पर नियंत्रण के विविध रूप : बाध्य नियंत्रण एवं आन्तरिक नियंत्रण

14.3 प्रशासन पर बाह्य नियंत्रण के विविध प्रकार

14.3.1 विधायी नियंत्रण के विविध आयाम एवं विधियाँ

14.3.2 कार्यपालिका नियंत्रण के विविध आयाम एवं विधियाँ

14.3.3 न्यायिक नियंत्रण के विविध आयाम एवं विधियाँ

14.3.4 प्रशासन पर जन-नियंत्रण

14.4 प्रशासन पर आन्तरिक नियंत्रण : प्रशासनिक नियंत्रण के विविध आयाम एवं विधियाँ

14.5 प्रशासन पर इन नियंत्रणों का मूल्यांकन

14.6 सारांश

14.7 उपयोगी पुस्तकें

14.8 सम्बन्धित प्रश्न

14.9 प्रश्नोत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- प्रशासन पर नियंत्रण के विविध रूपों एवं उनके बाध्य एवं आनतरिक आधारों से परिचित हो सकेंगे।
- प्रशासन पर बाह्य नियंत्रण एवं उसके विविध प्रकारों के विविध आयामों एवं विधियों की विवेचना कर सकेंगे।
- प्रशासन नियंत्रण अर्थात् प्रशासनिक नियंत्रण के विविध आयामों एवं विधियों से परिचित हो सकेंगे।
- इन विविधि रूपों का आलोचनात्मक विश्लेषण एवं मूल्यांकन के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

प्रशासन पर नियंत्रण के अनेक स्वरूप हैं तथा इसकी अनेक विधायें भी है। शासन के अनेक अंग अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हैं। परन्तु उद्देश्यों की आपूर्ति हेतु स्वयं उन अंगों में जवाबदेही

सुनिश्चित करने हेतु नियंत्रण की व्यवस्था अपनाई गई है। यह एक संवैधानिक व्यवस्था के रूप में मान्य है और उसी रूप में इसका अनुपालन भी सामान्यतया होता है। शासन के महत्वपूर्ण अंगों में कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका को रखा जाता है। नियंत्रण की प्रक्रिया में भी इन्हीं विशिष्ट अंगों की भूमिका मानी जाती है। इसे हम विधायी नियंत्रण, न्यायिक नियंत्रण आदि की संज्ञा देते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत हम इन विभिन्न प्रकार के नियंत्रण जो प्रशासन पर होते हैं, उसका अध्ययन करेंगे एवं इसकी महत्ता एवं आवश्यकता पर विचार करके उसका समालोचनात्मक विश्लेषण भी करेंगे।

14.2 प्रशासन पर नियंत्रण के विविध रूप : बाह्य एवं आन्तरिक नियंत्रण

एक प्रजातांत्रिक समाज में शक्ति पर नियंत्रण रहना आवश्यक है। जनतंत्र में प्रशासन का संचालन जन-हित के लिए जनता की सहमति से किया जाता है। अतएव यह आवश्यक है कि प्रशासन जनता के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उत्तरदायी रहे। वर्तमान में राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप के कारण उसके कार्यों एवं उसकी शक्ति में अपरिमित वृद्धि हुई है अतएव लोक प्रशासन एवं उसका सेविवर्ग अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न कर सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि उनकी शक्तियों को नियंत्रित किया जाय और उन पर अंकुश बनाये रखा जाय। मुख्य रूप से लोक प्रशासन पर तीन प्रकार से नियंत्रण स्थापित किये जाते हैं–

1. विधायी नियंत्रण (Legislative Control)
2. कार्यपालिका नियंत्रण (Executive Control)
3. न्यायिक नियंत्रण (Judicial Control)

कुछ विद्वानों ने दो अन्य प्रकार के नियंत्रणों की भी चर्चा की है–

(क) लोक प्रशासन पर जन-नियंत्रण (Citizens Control over Public Administration)

(ख) लोक प्रशासन पर आन्तरिक नियंत्रण (Internal Control over Public Administration)

इस प्रकार शासन पर नियंत्रण के मुख्य रूप से दो रूप दिखाई पड़ते हैं–

(1) बाह्य नियंत्रण (External Control) यथा विधायी, कार्यपालिका, न्यायिक एवं जन-नियंत्रण

(2) आन्तरिक नियंत्रण (Internal Control) यथा प्रशासनिक नियंत्रण।

14.3 प्रशासन पर बाह्य नियंत्रण के विविध प्रकार

किसी भी प्रशासनिक संगठन को बाह्य एवं आन्तरिक दो आधारों पर नियंत्रित किया जाता है। बाह्य नियंत्रण विधायी, कार्यपालिकीय एवं न्यायिक आधारों पर प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाये रखने एहतु प्रयोग में लाया जाता है ये संस्थायें न केवल इस बात को ध्यान में रखती हैं कि नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं की रक्षा हो सके, अपितु प्रशासकीय अधिकारी अपने अधिकारों एवं शक्तियों का अतिलंघन न कर अपनी सीमाओं में रहकर कार्य करें। उपयुक्त विभिन्न नियंत्रण के आधारों का विश्लेषण आगे विस्तार से प्रस्तुत हैं।

14.3.1 प्रशासन पर विधायी नियंत्रण के प्रमुख आयाम एवं विधियाँ

प्रशासन पर नियंत्रण के अनेक स्वरूपों में विधायी नियंत्रण का महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। विधायी

नियंत्रण को हम संसदीय नियंत्रण के नाम से भी जानते हैं। विधायिका शासन का एक महत्वपूर्ण अंग है। अतः यह इसका उत्तरदायित्व रहता है कि प्रशासन विधि संगत एवं नियम-संगत ढंग से चलाया जाय। विधायिका अपने नियंत्रण के माध्यम से यह सुनिश्चित करने का प्रयास करती है कि प्रशासन नियमानुसार उचित ढंग से चलाया जाय। यदि विधायिका प्रशासन पर नियंत्रण नहीं रखेगी तो प्रशासन के स्वार्थपरक होने की सम्भावना बनी रहती है। प्रशासन लोक हित के बजाय व्यक्तिगत हितों की पूर्ति में लग जाता है। अतः विधायिका प्रशासन पर अपना नियंत्रण बनाये रखती है।

प्रशासन पर विधायी नियंत्रण के अनेक स्वरूप है तथा अनेक प्रकार से इसे क्रियान्वित किया जाता है। विधायी/संसदीय नियंत्रण मुख्य रूप से दो प्रकार से होता है–

(अ) संसद की नियमित प्रक्रियाओं के द्वारा

(ब) संसदीय समितियों द्वारा

आइये अब इन दोनों प्रकार के विधायी नियंत्रणों का संक्षिप्त विश्लेषण करें।

(अ) संसद के नियमित प्रक्रियाओं के द्वारा नियंत्रण

लोकतांत्रिक शासन पद्धतियों में संसदीय/विधायी नियंत्रण एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है जिसके माध्यम से सरकार के कानूनों, नीतियों तथा बजट की स्वीकृति के अतिरिक्त अन्य कई तरीकों से लोक प्रशासन को सजग, सक्रिय एवं जवाबदेह बनाये रखने में सहायक है। जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि, विधायिका में बैठकर न केवल देश और समाज का भविष्य तय करते हैं बल्कि प्रवर्तित प्रशासनिक प्रक्रियाओं की भी समीक्षा करते हैं। विधायिका इस अंक से जनसाधारण की इच्छाओं, आकांक्षाओं और समस्याओं पर बहस करके देश के सम्मुख लाती है।

लोकतंत्र में, विशेषकर संसदीय लोकतंत्र में विपक्ष की एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। विपक्षी दलों पर एक वैकल्पिक सरकार का भी दायित्व रहता है। यह दल सत्तारूण दल को शासन से सम्बंधित अनेक मसलों पर कटघरे में खड़ा कर संतोषजनक उत्तर की अपेक्षा करते हैं क्योंकि वास्तविक कार्यपालिका सदन के प्रति जवाबदेह भी होती है। यह भी विधायी नियंत्रण का एक अंग माना जाता है। इस नियंत्रण को और अधिक स्पष्ट करने के लिये आइये इसे भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में उदाहरण के तौर पर देखने का प्रयास करें। भारतीय संसदात्मक शासन प्रणाली में कतिपय ऐसी प्रक्रियायें हैं जो लेख प्रशासन पर नियंत्रण करने में प्रभावी सिद्ध होती हैं। उनमें से कुछ निम्नवत हैं।

1. राष्ट्रपति का अभिभाषण

भारतीय संविधानिक व्यवस्था के अनुसार संसद का प्रत्येक अधिवेशन राष्ट्रपति के अभिभाषण से प्रारम्भ होता है। इस अभिभाषण में सत्तापक्ष अपने दल की नीतियों, कार्यक्रमों, सफलताओं तथा अन्य क्रियाकलापों का विस्तृत लेखा जोखा रहता है। इस अभिभाषण पर बहस के लिए सामान्यतया चार दिन का समय निर्धारित किया जाता है। यह अवसर विपक्ष द्वारा शासन की नीतियों, कार्यक्रमों आदि की आलोचना का होता है जब विपक्ष सरकार को उसकी कमि्याँ बता कर उसे घेरने का प्रयास करता है। विपक्ष एक प्रकार से विधायी नियंत्रण का हिस्सा बन जाता है।

2. बजट पर चर्चा

बजट भी एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके माध्यम से नियंत्रण को प्रभावी बनाया जाता है। बजट के द्वारा सरकार अपने वार्षिक आय-व्यय का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। संविधानिक प्राविधान के अनुसार बिना संसदीय अनुमोदन के सरकारी व्यय नहीं किया जा सकता। इस प्रकार वित्त मंत्री द्वारा आम बजट को लोकसभा में प्रस्तुत करने के पश्चात् उस पर पर्याप्त चर्चा एवं वाद-विवाद होता है

क्योंकि वार्षिक आय-व्यय का यह ब्यौरा देश के आर्थिक विकास को सर्वाधिक प्रभावित करता है। बजट पर कटौती प्रस्ताव के माध्यम से सरकार की आलोचना की जाती है। वस्तुतः सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन पर विधायिका का कठोर नियंत्रण होता है क्योंकि स्वीकृत अनुमानों के अतिरिक्त एक पाई भी कम नहीं की जा सकती है क्योंकि यह जनता का पैसा है और जनता के प्रतिनिधियों द्वारा इसे स्वीकृति प्रदान करना आवश्यक माना जाता है।

3. प्रश्न काल (Question Hour)

संसदीय प्रक्रिया में प्रश्न काल को विधायी नियंत्रण का अत्यधिक लोकप्रिय तथा प्रभावी माध्यम माना जाता है। संसद के सत्रकाल में उसके प्रत्येक दिन का पहला एक घण्टा प्रश्नों के लिये निश्चित रहता है। सामान्यतया तीस मौखिक प्रश्न प्रतिदिन पूछे जाते हैं जिनका उत्तर दिया जाता है। यद्यपि सभी प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं होते हैं क्योंकि कुछ जिज्ञासा के कारण ही होते हैं। परन्तु कुछ गम्भीर प्रश्न सरकार को अक्सर परेशानी में डाल देते हैं। सामान्यतः प्रश्न पूछने के लिये सम्बंधित मंत्री को 10 दिन का समय देना आवश्यक होता है किन्तु अत्यन्त गम्भीर तथा तात्कालिक महत्व के प्रश्नों पर यह बाध्यता लागू नहीं होती है। संसदीय प्रश्न दो प्रकार के होते हैं–

(अ) तारांकित प्रश्न (Starred) वे होते हैं जो तारे के चिन्ह से चिन्हित होते हैं और जिनका मौखिक उत्तर दिया जाता है।

(ब) अतारांकित (Unstarred) प्रश्नों पर तारे का चिन्ह अंकित नहीं किया जाता तथा उनका उत्तर लिखित रूप में दिया जाता है।

इस प्रकार प्रश्न काल के दौरान प्रश्न पूछ कर दबाव बनाया जाता है जो नियंत्रण की विधा के रूप में देखा जा सकता है।

4. शून्य काल (Zero Hour)

बहुधा यह देखा गया है कि प्रश्न काल में सभी सदस्य जनहित सम्बंधित प्रश्न नहीं पूछ पाते हैं। परिणामस्वरूप वे प्रश्न काल के समाप्त होने के बाद भी चर्चा करते रहते हैं। इस स्थिति के निराकरण हेतु अब प्रश्नकाल का एक घण्टा समाप्त होने के तुरन्त बाद शून्य काल आरम्भ हो जाता है। यह व्यवस्था वर्ष 1966 से लागू हुई। शून्य काल प्रायः आधा घण्टा से लेकर दो घण्टे की अवधि का हो सकता है। यह समय कार्यपालिका को विवादित मुद्दों पर घेरने तथा सचेत करने का होता है।

5. काम रोको प्रस्ताव या स्थगन प्रस्ताव (Adjourment Motion)

विधायी नियंत्रण का यह भी एक प्रभावी अस्त्र है। किसी सार्वजनिक महत्व के मुद्दे पर सदन में बहस कराने के लिये सामान्यतया दोपहर 12 बजे से पूर्व अध्यक्ष से 'काम रोको प्रस्ताव' की अनुमति मांगी जाती है। यदि 40 या अधिक संसद इसका समर्थन करें तो सदन के समस्त कार्यों को रोक कर 'काम रोको' या 'स्थगन प्रस्ताव' पर चर्चा की जाती है जो अधिकतम तीन घण्टे की हो सकती है। इस प्रस्ताव का महत्व इस बात से आंका जा सकता है कि चर्चा के पश्चात् इस पर मतदान करवाया जाता है जो बहुमत से पारित होने पर सरकार को संकट में डाल सकता है।

6. ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (Calling Attention Motion)

यह प्रस्ताव किसी गम्भीर तथा तात्कालिक महत्व के प्रश्न पर कोई भी संसद सदस्य ध्यानाकर्षण प्रस्ताव ला सकता है। इस प्रस्ताव में सम्बंधित मंत्री से स्पष्टीकरण मांगा जाता है जिसका वह तुरन्त या कुछ समय के पश्चात् स्पष्टीकरण दे सकता है।

7. अविश्वास प्रस्ताव (No Confidence Motion)

संसदीय प्रणाली में अविश्वास प्रस्ताव एक महत्वपूर्ण विधा है जिसके माध्यम से विपक्ष सरकार को गिराने का प्रयास करता है। जब सरकार की कोई नीति दोषपूर्ण तथा आपत्तिजनक हो तो विपक्षी दल अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं। अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा के पश्चात् मतदान होता है। यदि विपक्षी दल जीतते हैं तो सरकार को त्याग पत्र देना पड़ता है। प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय कम से कम 50 सांसदों का समर्थन आवश्यक होता है।

(ब) संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण

संसदीय समितियों की स्थापना के पीछे मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि ये समितियाँ प्रशासन की गतिविधियों का विस्तृत अध्ययन करके उनके द्वारा की गयी अनियमितताओं और अधिकारों के दुरुपयोग के सन्दर्भ में प्रतिवेदन प्रस्तुत करें। एम0एन0शैल के अनुसार "इन सीमाओं की रचना से न केवल प्रशासन की कार्य कुशलता बढ़ी है बल्कि इसने पहले की व्यवस्था में निहित दोषों को भी दूर कर दिया है।" संसदीय समितियों में मुख्य तौर पर आश्वासन समिति (Committe on Assurances) अनुमान समिति (Estimates Committee) लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) अधीनस्थ विधायन समिति (Subordinate Legislation committee) आदि प्रमुख हैं।

आश्वासन समिति का प्रमुख कार्य यह देखना है कि संसद में मंत्री द्वारा दिये गये आश्वासन पूरे किये गये हैं अथवा नहीं एवं पूरे किये गये हैं तो किस सीमा तक। आश्वासन को पूरा करने में कितना समय लगा है। इन समितियों से मंत्री सावधान रहते हैं और बहुत सोच समझकर संसद में आश्वासन देते हैं एवं आश्वासन देने के पश्चात् उसे शीघ्रतिशीघ्र पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। सार्वजनिक लेखा समिति, अनुमान समिति एवं सार्वजनिक उद्योग समिति वित्त प्रशासन से सम्बन्धित हैं जो प्रशासन को वित्तीय अनुशासन में रखती हैं। इन समितियों के अतिरिक्त संसद विशेष मामलों की छानबीन करने के लिए विशेष समितियाँ (Special Committee) भी गठित करती है। इन समितियों द्वारा जाँच के बाद जो प्रतिवेदन संसद में रखा जाता है उस पर वाद-विवाद एवं आलोचना होती है। जिससे प्रशासन संसदीय नियन्त्रण के दायरे में रहता है एवं सतर्कतापूर्वक अपने कार्यों को सुचारु रूप से करने हेतु सन्नद्ध रहता है। प्रशासन पर नियंत्रण का यह एक महत्त्वपूर्ण साधन बन जाता है।

14.3.2 कार्यपालिका नियंत्रण के विविध आयाम एवं विधियाँ

लोक प्रशासन पर न केवल विधायिका एवं न्यायपालिका द्वारा ही नियंत्रण स्थापित किया जाता है अपितु कार्यपालिका भी प्रशासन पर अपना नियंत्रण बनाये रखती है। प्रशासन को उत्तरदायी बनाये रखने हेतु उसके विभागों के अन्दर होने वाले सम्पूर्ण कार्य का उत्तरदायित्व विभागीय मंत्री का होता है जो प्रत्यक्ष रूप में संसद के प्रति उत्तरदायी रहता है क्योंकि मंत्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व संसदीय प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। कार्यपालिका को संसद में सवालों का जवाब देने के लिए तथा संसदीय उत्तरदायित्व निभाने के लिए यह आवश्यक है कि कार्यपालिका अपने विभाग के कार्यकलापों, उच्चाधिकारियों एवं नीतियों का पर्यवेक्षण और निरीक्षण के माध्यम से विभाग पर अपना नियंत्रण बनाये रहे। इसके लिये मन्त्री का विभाग पर नियंत्रण होना आवश्यक है क्योंकि लोकसेवा से सम्बद्ध किसी अधिकारी और कर्मचारी को उसके द्वारा किये गये कार्यों के उत्तरदायित्व के लिए संसद के समक्ष नहीं बुलाया जा सकता है। विभाग के समस्त सफलताओं एवं असफलताओं का उत्तरदायित्व सम्बन्धित विभाग के मंत्री का होता है। यदि वह संसद में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दे पाने में असमर्थ रहता है अथवा विभाग पर लगाये गये आरोपों के सम्बन्ध में संसद को सन्तुष्ट नहीं कर पाता है तो उसे

त्यागपत्र देना पड़ सकता है। कभी-कभी तो सामूहिक उत्तरदायित्व के तहत सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् को ही त्यागपत्र देना पड़ता है जिससे सरकार का स्थायित्व भी प्रभावित होता है। अतः इतने बड़े उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशासन पर मंत्री का नियंत्रण बना रहे। प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण में मुख्य कार्यपालिका तथा राजनीतिक कार्यपालिका दोनों ही नियन्त्रण करते हैं।

कार्यपालिका प्रशासन पर निम्न विधियों के आधार पर नियंत्रण करती है–

1. नीतियों के निर्माण द्वारा नियंत्रण
2. नियुक्ति एवं विमुक्ति द्वारा नियंत्रण
3. बजट का संचालन
4. प्रदत्त विधायन के माध्यम से नियंत्रण

(1) नीतियों के निर्माण द्वारा नियंत्रण (Control Through Policy-Making)–नीतियों के निर्माण में कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संसदीय प्रणाली में मंत्रिमण्डल द्वारा ही नीतियों की रूपरेखा तैयार की जाती है और सदन में बहुमत दल की सरकार के सदस्य होने के नाते उन नीतियों को संसद से स्वीकृत भी करा लेती है। इसके अतिरिक्त विभागीय मन्त्री मुख्य कार्यपालिका एवं मंत्रिमण्डल से सलाह लेकर स्वयं भी अनेक नीतियों को निर्धारित करके विभागों में लागू करती है। मंत्री विभाग की गतिविधियों को सुचारु रूप से संचालित करने हेतु निर्देशन, निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण आदि शक्तियों का प्रयोग करता है। विभाग का उच्चाधिकारी एवं उसके अधीनस्थ विभागीय मंत्री के प्रति जवाबदेह होते हैं। मंत्री अपने मंत्रालय के अधीन विभागों का औचक निरीक्षण भी करता है और दोषी पाये जाने वाले कर्मचारियों एवं अधिकारियों पर तत्काल अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करता है। रहने का तात्पर्य यह है कि मंत्री अपने विभाग पर पूर्ण नियंत्रण रखता है।

(2) नियुक्ति एवं विमुक्ति द्वारा नियंत्रण (Control through Appointment and Dismissed)–यह कार्यपालिका का प्रशासन पर नियंत्रण का एक प्रमुख साधन है। मंत्री अपने विभाग के सचिव एवं विभागाध्यक्ष का चयन अपनी इच्छा से करते हैं जिससे उनका मंत्री के साथ सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध बना रहे एवं विभाग का कार्य सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में सम्पन्न किया जा सके। लोक सेवा के कार्मिकों की नियुक्ति प्रायः संघ लोक सेवा आयोग या राज्य लोक सेवा आयोगों द्वारा की जाती है, परन्तु भर्ती के नियम कार्यपालिका द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। इस सम्बन्ध विभिन्न सेवाओं के लिये योग्यता, अनुभव, उम्र सीमा आदि बातों का निर्धारण सामान्यतः कार्यपालिका द्वारा ही किया जाता है। विभागीय मन्त्री द्वारा कई प्रकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को निलम्बित या निष्काषित करने का भी अधिकार प्राप्त है। इसके माध्यम से कार्यपालिका विभागों पर अपना प्रभावकारी नियंत्रण बनाये रखती है।

(3) राष्ट्रीय बजट का संचालन (Operation of National Budget)–प्रत्येक विभाग अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए अपनी वित्तीय एवं विभागीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यपालिका द्वारा निर्मित बजट पर निर्भर रहते हैं। कार्यपालिका ही आय के स्त्रोतों एवं व्यय के मदों को निर्धारित कर बजट का प्रारूप तैयार संसद से स्वीकृति प्राप्त करती है। कार्यपालिका द्वारा निर्धारित विभागीय खर्च की सीमा के अनुरूप धन आवंटित किये जाते हैं और संसदीय अनुमोदन के पश्चात विभागीय उच्चाधिकारी अपने कार्यों का संचालन करते हैं। अर्थात् धन वित्तीय अनुशंसाओं के अनुसार ही खर्च किया जाता है और आगे चलकर लेखा-परीक्षण भी होता है अतएव बजट प्रणाली भी प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण का एक साधन।

(4) प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा नियंत्रण (Control Through Delegated Legislation)– विधायिका कानूनों का विनिर्माण कर अनेक मामलों में कार्यपालिका को आवश्यकतानुकूल विधि-निर्माण करने की शक्ति प्रदान कर देती है क्योंकि इसके पास न तो पर्याप्त समय होता है और न ही तकनीकी मामलों से समझ रखने वाले तकनीकी विशेषज्ञ ही। विधायिका द्वारा कार्यपालिका को प्रदत्त शक्ति को ही प्रदत्त व्यवस्थापन कहा जाता है। यद्यपि कानूनों का निर्माण तो विधायिका ही करती है किन्तु इसका मोटा प्रारूप तैयार कर इससे सम्बन्धित बारीकियों पर विधि-निर्माण का अधिकार कार्यपालिका को सौंप देती है। कार्यपालिका मूल विधायन के अन्तर्गत ही अपनी आवश्यकताओं एवं उपयोगिताओं के अनुसार विधियों का निर्माण करती है। जिसके अन्तर्गत अनेक विभागों के संगठन, अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति और सेवा-शर्तें, अधिकार-क्षेत्र और कर्त्तव्य को भी निर्धारित किया जाता है। भारत तथा अन्य अनेक देशों में कार्यपालिका जब सदन का सत्र नहीं चल रहा हो तो अध्यादेश भी जारी कर सकता है। लेकिन यह अध्यादेश अस्थाई प्रकृति का होता है क्योंकि अगर अध्यादेश को निर्धारित समय-सीमा के भीतर यदि विधायिका द्वारा पारित नहीं कराया जाता है तो वे निष्प्रभावी हो जाते हैं। इस प्रकार प्रदत्त व्यवस्थापन तथा कार्यपालिका द्वारा जारी किया गया अध्यादेश भी प्रशासन पर नियंत्रण का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन जाता है।

इस प्रकार हमने देखा कि किस-किस तरह से संसदीय/विधायी नियंत्रण प्रशासन पर किया जाता है या किया जा सकता है। यह एक अत्यन्त प्रभावी नियंत्रण माना जाता है जिसके माध्यम से विधायिका प्रशासन पर अपना नियंत्रण रखती है।

14.3.3 न्यायिक नियंत्रण के विविध आयाम एवं विधियाँ

जैसा कि हम पहले अध्ययन कर चुके हैं कि शासन के तीन अंगों में न्यायपालिका का एक विशिष्ट स्थान है। शासन के तीनों अंगों को स्वतंत्र रखा जाता है जिससे उन्हें अपने दायित्वों के निर्वहन में कोई कठिनाई न हो। परन्तु एक दूसरे पर नियंत्रण की व्यवस्था भी आवश्यक मानी जाती है। लोक प्रशासन में प्रशासनिक संगठनों तथा पदाधिकारियों पर कानूनों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी रहती है परन्तु प्रशासनिक तंत्र कानूनों के सम्बंध में पूर्णतया निरंकुश नहीं है। न्यायपालिका के द्वारा न केवल कानूनों की एक व्याख्या की जाती है बल्कि प्रशासन द्वारा किये गये अवैधानिक कृत्यों पर भी अंकुश लगाया जाता है ताकि आम नागरिक के अधिकार सुरक्षित रहे तथा विधि के शासन में कोई कठिनाई न हो।

जैसा कि हम जानते हैं कि न्यायपालिका न केवल नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करती है बल्कि कार्यपालिका द्वारा बनायी गयी नीतियों, कार्यक्रमों तथा प्रक्रियाओं को देश के संविधान की कसौटी पर परखती है। उदाहरण के तौर पर भारत के संविधान का अनुच्चेद 14 सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान करता है। साधारण न्यायालयों तथा कतिपय न्यायाधिकरणों के द्वारा नागरिकों के मुकदमों की सुनवाई की जाती है। साथ ही राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय परामर्श भी प्रदान करता है। विगत कुछ वर्षों से न्यायिक सक्रियता के चलते सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों ने लोक प्रशासन को अनेक प्रकार के दिशा निर्देश भी दिए हैं ताकि कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य प्राप्त हो सकें। भारत में तथा अन्य देशों में भी जहाँ प्रशासनिक न्यायालय की अलग से व्यवस्था नहीं है, सामान्य विधि के अन्तर्गत सामान्य न्यायालय ही प्रशासनिक नियंत्रण में भूमिका निभाते हैं।

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी प्रशासनिक संस्था का प्राधिकारी मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकता है और न ही किसी व्यक्ति के विधि सम्मत अधिकारों का उल्लंघन कर सकता है। आइये उन परिस्थितियों का संक्षिप्त अध्ययन करे जिनके अन्तर्गत न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है–

1. वैधानिक त्रुटि

इसके अन्तर्गत हम उस कृत्य को लेते हैं जब कोई प्रशासनिक अधिकारी या संगठन ऐसे कार्य करते हैं जो विधि तथा नियम की दृष्टि से गलत है अथवा किसी कानून का गलत रूप में क्रियान्वयन करते हैं जिसमें नागरिकों पर किसी प्रकार के बंधन लगते हैं तो यह वैधानिक त्रुटि कहते हैं। पीड़ित व्यक्ति ऐसा करने वाले अधिकारी के विरुद्ध न्यायालय से हस्तक्षेप की मांग कर सकता है।

2. अधिकारी द्वारा स्वविवेकीय शक्तियों का दुरूपयोग

अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन में प्रत्येक प्रशासनिक अधिकारी के पास सत्ता एवं प्राधिकार होता है। साथ ही अनेक मामलों में स्वविवेक से निर्णय लेने की भी शक्ति होती है। किन्तु इसका प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिये। किसी भी अधिकारी को यह शक्ति नहीं है कि वह अपने अधिकारों का तथा स्वविवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से किया जाय। यदि बदले की भावना द्वेष, स्वार्थ या पद के अहंकारवश कोई कार्य किया जाता है तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है। चूंकि स्वविवेकीय निर्णयों का क्षेत्र बड़ा होता है अतः इस प्रकार के नियंत्रण का विशेष महत्व रहता है।

इनके अतिरिक्त अन्य कई क्षेत्र ऐसे हैं जो न्यायिक नियंत्रण की परिधि में आते हैं जैसे कि अधिकतर क्षेत्र का अभाव, तथ्य-अन्वेषण में त्रुटि, प्रक्रिया सम्बंधी त्रुटि आदि। इन अनेक दशाओं में न्यायालय हस्तक्षेप कर प्रभावित पक्ष को न्याय प्रदान कर सकता है।

न्यायिक नियंत्रण के कई प्रकार विश्लेषित किये जाते हैं किन्तु निम्न दो प्रकार के साधन प्रमुख माने जा सकते है–

- सामान्य साधन
- विशेष साधन अथवा संवैधानिक उपचार

● सामान्य साधन

इसके अन्तर्गत हम निम्न को सम्मिलित कर सकते हैं–

1. प्रशासनिक कार्यों एवं निर्णयों की न्यायिक समीक्षा

भारत जैसे देश में कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के कार्यों में न्यायालयों का हस्तक्षेप कम ही देखने को मिलता है क्योंकि संविधान न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) के सम्बंध में अनेक प्रकार की मर्यादायें स्थापित करता है। परन्तु नागरिकों के हितों की रक्षा तथा कानूनी प्रक्रियाओं में आस्था प्रकट करने के लिए कई बार प्रशासनिक कार्यों एवं निर्णयों की न्यायिक समीक्षा की गई है।

2. सरकार के विरुद्ध अभियोग

संवैधानिक प्राविधानों के अनुसार लोक सेवकों को अवैधानिक कार्यों के लिये सामान्य नागरिक की भांति अभियोगों का सामना करना पड़ता है। पद पर रहते हुए अपेक्षित दायित्वों की पूर्ति तथा सत्ता का उपयोग के क्रम में राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के अतिरिक्त अन्य सभी मंत्री एवं अधिकारी कानून के प्रति उत्तरदायी है। कानून के अनुसार अनुपालन न होने पर उनके विरुद्ध कानूनी कार्रवाही की जाती है। इस प्रकार यह भी न्यायिक नियंत्रण का एक पक्ष माना जाता है।

3. प्रत्यायोजित विधान की मीमांसा

संवैधानिक प्राविधानों के अनुसार किसी उच्च सत्ता द्वारा निम्न प्राधिकारी को विधान एवं निम्न निर्माण आदि की प्रत्यायोजित शक्तियों के क्रम में न्यायालयों को यह अधिकार है कि वे प्रत्यायोजित विधान की वैधानिकता को उचित करार दें अथवा नहीं। उचित मापदण्डों पर खरे न उतरने वाले प्रत्यायोजित

विधानों का न्यायालय द्वारा परीक्षण हो सकता है।

4. कार्यपालिका के कानूनों या नियमों को अवैध घोषित करना

कार्यपालिका द्वारा बनाये गये कानूनों अथवा अध्यादेशों को भी न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। ऐसे अध्यादेश जिनसे संविधान के किसी प्राविधान का उल्लंघन होता है तो न्यायालय द्वारा इसे असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है।

● **विशेष साधन या संवैधानिक उपचार**

भारतीय संविधान के प्राविधान में सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों के हनन के मामलों की सुनवाई का अधिकार प्राप्त है तथा इस क्रम में सर्वोच्च न्यायालय को परमादेश (Writ) निकालने का भी अधिकार है। असाधारण उपचार अथवा परमाधिकार के रूप पाँच प्रकार के परमादेश की व्यवस्था है जो निम्न प्रकार से है–

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)
2. परमादेश (Mandamus)
3. निषेधाज्ञा (Prohibition)
4. उत्प्रेषण (Certiorari)
5. अधिकार पृच्छा (Quo Warrants)

यहाँ पर हम इन पाँचों प्रकार की रिटों की अलग से व्याख्या नहीं करेंगे। हमारे लिए न्यायिक नियंत्रण के इस विशेष साधन की जानकारी पर्याप्त है। इस संवैधानिक उपचार के माध्यम से उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय सरकार के नियम विरुद्ध कार्यों पर नियंत्रण रखते हैं।

14.3.4 प्रशासन पर जन नियंत्रण (Citizen's Control over Administration)

वर्तमान समय में प्रत्येक राष्ट्र अपने को जनतांत्रिक कहलाने में गौरव की अनुभूति करता है। आज का दौर प्रजातन्त्रों का दौर है। रहने का तात्पर्य है कि प्रजातान्त्रिक व्यवस्था आज विश्व की सर्वमान्य शासन-व्यवस्था मानी जाती है। प्रजातन्त्र जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन है। अतएव जनता अपने प्रशासन पर नियंत्रण रखे तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि प्रजातन्त्र में शासन व्यवस्था अन्तिम रूप से अपने नागरिकों के प्रति ही उत्तरदायी होती है। पं० जवाहर लाल नेहरू का भी यह मानना है कि लोक प्रशासन को अपने सामान्य विशेषताओं के अलावा जनता के सहयोग से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होना चाहिए।" अतएव कुछ विद्वानों का ऐसा मानना है कि प्रशासन पर कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका का ही नियंत्रण नहीं होता अपितु नागरिकों की सहभागिता के बिना प्रारम्भ का सफलतापूर्वक संचालन करना संभव नहीं हो पाता।

स्विट्जरलैण्ड के कुछ कैण्टनों में आप भी जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी है। वहाँ जनता सरकार के गठन में प्रत्यक्ष रूप से भागीदारी करती है, निर्णय लेती है और शासन पर अपना प्रत्यक्ष नियंत्रण रखती है। ऐसी व्यवस्था को प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र कहा जाता है। यद्यपि प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की व्यवस्था अमरीका, भारत तथा ब्रिटेन जैसे विशाल राष्ट्रों में संभव नहीं हैं क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से छोटे राष्ट्रों में ही यह व्यवस्था लागू की जा सकती है। इसी कारण विश्व के अधिकांशतः बड़े राष्ट्रों में वहाँ की जनता अप्रत्यक्ष रूप से प्रजातंत्र के माध्यम से प्रशासन पर नियंत्रण रखती है।

प्रशासन पर जनता का नियंत्रण निम्न विधियों से लागू किया जाता है–

1. राष्ट्राध्यक्षों के चुनाव के माध्यम से नियंत्रण (Control through the election of Head of Government or Nations)
2. हित-समूहों और दबाव समूहों (Interest group and Prssuve Group) के माध्यम से
3. शासन के विभिन्न स्तरों पर स्थापित सलाहकार समितियों (Advisory Committees) के माध्यम से
4. जन प्रतिनिधियों के चुनाव अथवा वापिस बुलाने के अधिकार के माध्यम से
5. जनमत (Public opinion) के माध्यम से।

1. राष्ट्राध्यक्षों के चुनाव के माध्यम से नियंत्रण (Through the election of Head of States)–विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में वहाँ के राष्ट्राध्यक्षों या सरकार के अध्यक्षों (राष्ट्रपति अथवा प्रधानमंत्री) का निर्वाचन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा ही किया जाता है। भारत, अमरीका आदि अनेक देशों के राष्ट्राध्यक्ष या शासनाध्यक्ष अप्रत्यक्ष ढंग से जनता द्वारा चुने जाते हैं। जनता द्वारा इनके चुनाव में की जाने वाली सहभागिता के कारण ये जन-नियंत्रण की परिधि में रहते हैं एवं इन देशों में नियमित अन्तराल पर जनता इनके चुनावों में भाग लेती है एवं अपने मत द्वारा पक्ष या प्रतिपक्ष का निर्णय करती है।

2. हित समूहों एवं दबाव समूहों के माध्यम से नियंत्रण (Control through Interest Groups and Pressure Groups)–प्रत्येक समाज में कुछ हित-समूह और दबाव समूह होते हैं। ये अपने सदस्यों के समान हितों के आधार पर गठित किये जाते है। दबाव समूह विभिन्न तरीकों से दबाव डालकर अपने समूह के सदस्यों के हितों की पूर्ति व खाने में सक्रिय रहते हैं। जिनके दबाव के चलते सरकार को अपनी घोषित नीतियों में यथा सम्भव परिवर्तन-संशोधन करने पड़ते हैं। अतः यह भी नियंत्रण का एक मजबूत साधन है जो सरकार को जनता के हितों की दृष्टि से निर्णय करने हेतु मजबूर करता है।

3. शासन के विभिन्न स्तरों पर स्थापित सलाहकार-समितियों के माध्यम से नियंत्रण (Control through the Advisory Committees at different levels of the Government)–अनेक सलाहकार समितियों का गठन इस प्रकार किया जाता है के शासन के सुचालन में जनता एवं प्रशासन दोनों के ही सदस्य उसमें रखे जाते हैं। ये सलाहकार समितियाँ जनता एवं प्रशासन के मध्य प्रत्यक्ष एवं मजबूत सम्बन्ध स्थापित करती है। विभिन्न प्रशासकीय समस्याओं के प्रति जनता का दृष्टिकोण व्यक्त करना तथा जन समस्याओं एवं सुविधाओं की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करना होता है। इस दृष्टि से इन सलाहकार समितियों का परामर्श शासन एवं प्रशासन को गतिमान बनाता है। दूसरी तरफ प्रशासन जनसमस्याओं को ध्यान में रखकर जो कार्य सम्पादित करता है उसकी जानकारी आमजन तक इन समितियों के सदस्य पहुँचाते हैं और जनता एवं अधिकारियों के बीच सम्पर्क सूत्र का कार्य करते हैं। अतएव इन समितियों में शामिल आम जनता के लोगों की सलाह पर प्रशासन ध्यान देकर उनका निवारण करता है।

4. जन प्रतिनिधियों के चुनाव अथवा वापिस बुलाने के अधिकार के माध्यम से नियंत्रण (Control through the election of Peple's Represantatives or Recall)–विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में चुनाव के माध्यम से ही जनता अपने प्रतिनिधियों का चयन करती है, जो संसद के सदस्य एवं सम्प्रति मंत्री या प्रधानमंत्री चुने जाते हैं। जनता द्वारा निर्वाचित बहुमत दल का नेता ही प्रधानमंत्री होता है। जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि परोक्ष रूप से जन-नियंत्रण की परिधि में आ ही जाते है। वहीं स्विट्जरलैण्ड सहित कुछ देशों में निर्वाचकों को न सिर्फ अपने प्रतिनिधियों के चयन का अधिकार होता है, अपितु निर्वाचकों को 'जन-प्रतिनिधियों को वापिस बुलाने (Recall or

Representaties) का अधिकार भी होता है। इस व्यवस्था के तहत यदि निर्वाचक ऐसा समझते हैं कि उनके द्वारा चुना हुआ प्रतिनिधि अपनी जिम्मेदारियों एवं उत्तरदायित्वों का उचित ढंग से निर्वहन कर पाने में समर्थ नहीं है अथवा अपना कार्य सन्तोषजनक ढंग से नहीं कर रहा है तो उसे निर्धारित प्रक्रिया का पालन करके पुनः वापिस बुला लेते हैं। एवं उसके स्थान पर अपने दूसरे प्रतिनिधि को निर्वाचित करके सदन में भेज देते हैं।

5. जनमत के माध्यम से नियंत्रण (Control through the Public Opinion)–प्रशासन पर जनता का नियंत्रण तभी प्रभावकारी ढंग से लागू किया जा सकता है जब शिक्षित एवं जागरुक जनमत उपलब्ध हो, क्योंकि जनता जब तक अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को नहीं समझेगी, तब तक उससे सरकार के दायित्वों एवं कर्त्तव्यों की समझ हो इसकी उम्मीद करना बेमानी होगा। साथ ही जनता प्रशासन एवं सरकार पर अपना प्रभावकारी नियंत्रण स्थापित कर पाने में भी समर्थ नहीं हो सकती। आज हम जिस प्रशासकीय राज्य में रहते हैं उसमें कोई शासन जनमत की अवहेलना एवं जन-सम्पर्क के बिना अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकती है अतः सफल शासन-व्यवस्था के लिए जनमत की सहभागिता एवं सहयोग आज के जनतन्त्रों की प्रबल माँग है जिसके इबना शासन अनियंत्रित एवं अन्यायपूर्ण मार्ग पर जाने का भय सदैव बना रहता है।

14.4 प्रशासन पर आन्तरिक नियंत्रण : प्रशासनिक नियंत्रण के विविध आयाम एवं विधियाँ

पूर्व में जिन नियंत्रणों की चर्चा की गई है, वे बाह्य नियंत्रण की श्रेणी में आते हैं। अर्थात् विधायिका, **कार्यपालिका**, न्यायपालिका और नागरिकों द्वारा नियंत्रण प्रशासन बाहर से किए जाते हैं। प्रशासन के अन्दर कुछ ऐसे प्रशासनिक यन्त्र हैं जिनसे स्वयं प्रशासन के अन्दर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। उन्हें प्रशासन के आन्तरिक नियन्त्रण कहा जाता है।

नियंत्रण की आवश्यकताओं में प्रशासन पर नियंत्रण को काफी महत्व दिया जाता है। प्रशासन के पास उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिये बहुत से अधिकार प्राप्त रहते हैं। इन अधिकारों का प्रयोग ठीक से हो रहा है, उत्तरदायित्वों का निर्वहन प्रभावी ढंग से हो रहा है आदि ऐसे बिन्दु है जिनके कारण नियंत्रण का महत्व बढ़ जाता है जिससे प्रशासन मनमानी न कर सके तथा अधिकारों का भी दुरुपयोग न हो। लोक प्रशासन तथा राजनीति शासन के अनेक विचारकों ने शक्ति, सत्ता, प्राधिकार पर नियंत्रण को आवश्यक बताया है। नियंत्रण के अभाव में सत्ता एवं शक्ति के निरंकुश एवं अराजक होने की सम्भावना रहती है। अतः प्रशासन पर प्रशासनिक नियंत्रण को महत्व दिया जाता है। आइये इस नियंत्रण के विभिन्न पहलुओं का संक्षिप्त अध्ययन करें।

प्रशासनिक नियंत्रण को हम आन्तरिक नियंत्रण के रूप में भी देखते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रशासनिक व्यवस्था एक पदसोपानिक व्यवस्था होती है। इसमें उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों के कार्यों आदि पर नियंत्रण रखते हैं। इसके अन्तर्गत ऊपर से लेकर नीचे तक एक कड़ी सी बनती है और सभी अधिकारी कर्मचारी वर्ग इससे जुड़ा रहता है। इस प्रकार यह एक सुनिश्चित मशीन की तरह कार्य करता है। कार्मिकों की पदोन्नति, अवनति सेना में प्रगति आदि सभी इसी नियंत्रण का अंग बनते हैं। इस आन्तरिक नियंत्रण को हम कई भागों में बाँट कर अध्ययन कर सकते हैं।

1. बजट द्वारा नियंत्रण
2. सेवी वर्ग पर नियंत्रण
3. कुशलता सर्वेक्षण व्यवस्था

4. नेतृत्व

1. बजट द्वारा नियंत्रण–प्रशासन पर नियंत्रण का एक मुख्य अस्त्र बजट को माना जाता है। अध्याय के पिछले पृष्ठों पर हमने बजट द्वारा नियंत्रण का विश्लेषण विधायी नियंत्रण के परिप्रेक्ष्य में किया है। यहाँ हम संक्षेप में अन्य सम्बंधित बिन्दुओं की व्याख्या करेंगे।

बजट को हम केवल एक आय-व्यय का लेखा-जोखा ही नहीं समझते हैं बल्कि बजट सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रारूप की प्रस्तुत करता है। सरकार की नीतियों के अनुरूप ही विभिन्न कार्यक्रमों की रूपरेखा बनती है तथा उस पर होने वाले व्यय के सम्बंध में प्रावधान भी किये जाते हैं। इस प्रकार हम बजट को शासन पर नियंत्रण के रूप में देखते हैं। सरकारी धन का व्यय केवल नियमानुसार होना अपेक्षित है। जैसा कि हम जानते हैं कि समस्त सरकारी आय-व्यय का लेखा परीक्षण होता है। यह भी एक प्रकार का नियंत्रण है जो मनमाने ढंग से कम कर अंकुश लगाता है। इसे हम एक प्रभावी नियंत्रण के रूप में देखते हैं।

2. सेवीवर्ग पर नियंत्रण

प्रशासनिक व्यवस्था एक पदसोपानिक व्यवस्था है। ऊपर से लेकर नीचे तक सभी पद एक सोपान की तरह जुड़े हुए हैं। इसे हम सत्ता तथा उत्तरदायित्व की व्यवस्था कह सकते है। ऊपर के पद धारकों को आदेश देने का अधिकार/दायित्व होता है इसी प्रकार अधीनस्थों का दायित्व उन आदेशों के पालन का। इस प्रकार यह व्यवस्था उतरदायित्व एवं जवाबदेही के बिना सम्भव नहीं है। इस उत्तरदायित्व के निर्वहन एवं जवाबदेही के यादगार से सेवीवर्ग प्रबंधन होता है। यह एक प्रकार से सेवीवर्ग पर नियंत्रण भी रखने में सक्षम होता है जिसके कारण कार्मिक अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन में मनमामा करने से बचेंगे। प्रशासनिक अधिकारीवर्ग नियमों से अवगत रहते हैं। अतः उन्हें यह जानकारी भी होती है कि नियमानुसार कार्य न होने पर वे कठिनाई में पड़ सकते हैं। यह एक प्रकार का नियंत्रण है जिसे हम आन्तरिक नियंत्रण कहते हैं।

3. कुशलता सर्वेक्षण व्यवस्था

समय-समय पर कार्मिकों के कार्यों का निरीक्षण आन्तरिक नियंत्रण की एक विधा मानी जाती है। बड़े प्रशासनिक ढाँचे में जहाँ सीधा/प्रत्यक्ष नियंत्रण सुगम नहीं है ऐसी स्थिति में कुशलता सर्वेक्षण व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। दूरस्थ कार्यालयों में कार्मिकों के कार्यों की कुशलता की जाँच-परख प्रशासन के लिये आवश्यक है। अतः उच्च अधिकारी विभागों में कार्यरत लोगों के दायित्व निर्वहन का निरीक्षण कर अपनी संस्तुति प्रस्तुत करते हैं। इससे कार्मिकों की पदोन्नति। पद-अवनति व्यवस्था करने में सहायता मिलती है। इस व्यवस्था से कार्मिकों पर एक प्रकार का नियंत्रण सा रहता है। कुशलता सर्वेक्षण व्यवस्था को प्रभावी ढंग से लागू करना उतना ही आवश्यक माना जाता है जिससे कि अपेक्षित परिणाम निकल सकें।

4. नेतृत्व

प्रशासकीय नेतृत्व को आन्तरिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावी अंग माना जाता है। उच्च पदाधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को अपने व्यवहार/आचरण से प्रेरित करते हैं कि वे अपने दायित्वों को कुशलतापूर्वक पूरा करें। नेतृत्व के गुण के कारण ही अनेक अधिकारी उच्चस्तरीय सहयोग प्राप्त कर लेते हैं। यद्यपि इसमें अलग से कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती है। लोग प्रशासन की संरचना एक पद-सोपानिक संरचना है। इसी संरचना के अंतर्गत नेतृत्व के गुण रखने वाले अधिकारी प्रभावी ढंग से अधीनस्थों से दायित्वों का निर्वहन करवा लेते हैं। इस गुण के कारण हम इसे नियंत्रण का एक अंग मानते हैं।

ऊपर विश्लेषित नियंत्रणों को हम आन्तरिक नियंत्रण के अन्तर्गत एवं उनका अध्ययन करते हैं। दूसरे

प्रकार के नियंत्रण को हम बाह्य नियंत्रण के रूप में देखते हैं जिसके अन्तर्गत विशेष रूप से विधायी नियंत्रण आता है। इसका अध्ययन हम पहले कर चुके हैं। अतः यहाँ पर इसकी पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं है।

14.5 प्रशासन पर इन नियंत्रणों का मूल्यांकन

यद्यपि प्रशासन पर विधायी, प्रशासनिक एवं न्यायिक नियंत्रण को महत्वपूर्ण माना जाता है परन्तु आलोचकों ने कई बिन्दुओं पर इसकी आलोचकों की है। आइये उन विशिष्ट बिन्दुओं का अध्ययन करें।

विधायी नियंत्रण की अपनी सीमायें रहती हैं जिसके कारण यह बहुत प्रभावी नहीं रह पाता है। संसद सदस्य संसद की कार्यवाहियों में कम ही रुचि प्रकट करते है। लगभग सभी दलों के कतिपय दो-चार सदस्य ही पूर्ण रूप से मुखर एवं सक्रियता से भाग लेते हैं। आलोचकों का यह भी कहना है कि संसद सदस्यों के लिये न्यूनतम शैक्षिक योग्यता निर्धारित न होने के कारण सभी सदस्य विधायिका तथा कार्यपालिका की तकनीकी शब्दावली एवं प्रक्रियाओं से पूर्णतया भिज्ञ नहीं होते हैं। इस कारण वे बहुत प्रभावी नहीं होते हैं। अधिकांश सदस्य दलीय राजनीति के संकीर्ण दायरे से बाहर नहीं निकल पाते जिस कारण पूर्ण सक्रियता लुप्त सी हो जाती है। नीति निर्धारण एवं कानून निर्माण में लोक सेवक ही सक्रिय भूमिका निभाते हैं। ऐसी स्थिति में विधायिका की भूमिका गौड़ा हो जाती है। यद्यपि विधायी। संसदीय नियंत्रण के अनेक पहलुओं को हमने पहले देखा है, परन्तु इन बिन्दुओं पर इस नियंत्रण प्रक्रिया की आलोचना की जाती है। विधायी नियन्त्रण को प्रशासन पर नियंत्रण को महत्वपूर्ण माना जाता है परन्तु इसकी सीमायें हैं, इनमें भी कंमियाँ है जिनके कारण यह बहुत प्रभावी नहीं हो पाता है।

प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों ही रूपों में देखने को मिलता है, परन्तु यह नियंत्रण कतिपय अपनी कमियों के चलते प्रभावी तरीके से अपने परिणाम नहीं दे पाता। आज कार्यपालिका के संचालन में मंत्रियों की विशेष भूमिका है जो चुनावी चालबाजियों, भ्रष्ट उपायों एवं गुटबन्दी के शिकार हो जाते हैं इनमें योग्यता एवं अनुभव का प्रायः अभाव पाया जाता है, अप्रशिक्षित एवं तकनीकी विशेषज्ञता के अभाव के कारण प्रायः ये अधिकारी वर्ग द्वारा बताये गये तथ्यों एवं आँकड़ों पर निर्भर होते हैं, जिससे प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने के स्थान पर उनकी उचित-अनुचित सलाहों पर आश्रित रहते हैं। साथ ही सरकारों का अस्थायित्व एवं मंत्रियों के विभागों में परिवर्तन दो ऐसे तथ्य हैं जो कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण के मार्ग में बाधा बन जाते हैं। कार्यपालिका पर प्रशासन के समुचित नियंत्रण के अभाव का विवरण सिडनी लोके इस कथन से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है "इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में लो का कथन है कि 'वित्त मंत्रालय में द्वितीय श्रेणी के क्लर्क का पद प्राप्त करने के लिए एक नौजवान को अंकगणित की प्रतियोगिता परीक्षा में पास होना पड़ता है, किन्तु वित्त मन्त्री अधेड़ उम्र का ऐसा सांसारिक व्यक्ति भी हो सकता है जो अंकों के विषय की उस थोड़ी बहुत जानकारी को भी भूल चुका हो जो उसने ईटन अथवा आक्सफोर्ड में प्राप्त की थी और उन दशमलव में खजाने का लेखा जब उसके सामने पहली बार रखा जाता है तब वह छोटे-छोटे बिन्दुओं का अर्थ जानने के लिए उत्सुक हो जाता है।"

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की भी आलोचना कई बिन्दुओं को लेकर की जाती है। जैसे कि घटना की न्यायालय स्वयं रुझान नहीं लेता जब तक कि उसके पास पीड़ित व्यक्ति अपनी शिकायत लेकर न आये। यह भी कहा जाता है कि न्यायिक नियंत्रण का लाभ व्यक्ति को घटना घटित होने के बाद ही मिल पाता है। इसमें बचाव पक्ष कमजोर है। इसके साथ ही हम यह भी देखते हैं कि प्रशासन के समस्त कार्य न्यायिक नियंत्रण के अधीन नहीं है। इस कारण इसका दायरा भी सीमित माना जाता है। वास्तव में स्वतंत्र न्यायपालिका किसी भी व्यवस्था का आधार मानी जाती है। निष्पक्ष न्याय प्रणाली से

जनमानस का व्यवस्था में विश्वास बढ़ता है। परन्तु इन बिन्दुओं पर बहुधा आलोचक कहते हैं कि व्यवहार में इसकी कमी रहती है। न्याय का देर से मिलना तथा इसका महंगा होना दोनों ही इस नियंत्रण प्रक्रिया को कमजोर करते हैं।

लोकतांत्रिक शासन को उत्तरदायी शासन भी कहा जाता है। ऐसे शासन में सरकार अपने हर कार्य व गतिविधि के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी रहती है। यह उत्तरदायित्व लोकमत के द्वारा ही व्यावहारिक बन पाता है। यह सरकार के कुशल प्रहरी का कार्य करता है। अतः प्रबुद्ध व सजग लोकमत, लोकतन्त्र की प्रथम अनिवार्यता है। लोकमत के प्रतिकूल होने पर लोकतान्त्रिक सरकार तो क्या निरंकुश सरकार भी अधिक दिनों तक टिक नहीं सकती। परन्तु जागरुक जनमत के निर्माण में अनेक बाधाएं रहती हैं। राजनीतिक दल अपने स्वार्थों के चलते इनमें फूट पैदा करते हैं विशेष रूप से जाति, रंग, धर्म, क्षेत्र, आदि के आधार पर जो स्वस्थ लोकमत एवं जनता में एकमतता के मार्ग के बाधक हैं एवं प्रशासन के जाति, धर्म आदि के आधार पर बँट जाने का खतरा पैदा हो जाता है। प्रशासन भी श्रेष्ठता के अहम भाव से ग्रसित होकर विभाजित जनता को अधिक से अधिक विभाजित कर अपने स्वार्थों की खुलेआम भय रहित होकर संपूर्ति में सन्नद्ध हो जाता है। ऐसा सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवेश शासन अथवा प्रशासन की दृष्टि से भले ही अत्यन्त अनुकूल हो, परन्तु लोकतन्त्रों के विकास एवं उन्नयन के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। ऐसी बाधाओं को दूर करने एवं स्वस्थ्य लोकमत के निर्माण के लिए यह परमावश्यक है कि समाज के सदस्य क्या चाहते हैं इसका उनको सुस्पष्ट ज्ञान हो, साथ ही जनता जो चाहती हो उसमें उसकी स्पष्ट रुचि हो तथा अपनी रुचि को प्रकट करने के लिए अभिव्यक्ति के अवसर उसे प्राप्त हों अर्थात् इन लक्षणों की प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं एवं रुकावटों–निरक्षरता, निर्धनता, दूषित शिक्षा-प्रणाली, गैर-जिम्मेदार समाचार-पत्र, नागरिक उदासीनता और दलगत राजनीतिक दलों का समय में अभाव हो।

इसी प्रकार प्रशासनिक नियंत्रण की भी आलोचना की जाती है। इसके अन्तर्गत हमने विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों का अध्ययन जिनके माध्यम से प्रशासनिक नियंत्रण किया जाता है। इसके अन्तर्गत हमने बजट, सेवीवर्ग, कुशलता सर्वेक्षण तथा नेतृत्व आदि का अध्ययन किया। किन्तु आलोचक इस नियंत्रण को बहुत प्रभावी नहीं मानते हैं। जैसे हम बजट को एक प्रभावी प्रशासनिक नियंत्रण के रूप में देखते हैं। परन्तु बजट बनाते समय इतने प्रकार का दबाव रहता है जिसके कारण वित्त मंत्रालय पूरी तरह से अपनी बात बजट के माध्यम से नहीं रख पाता। इसी प्रकार यदि सेवी वर्ग की बात देखें तो उसमें भी अनेक प्रकार की कमियाँ हमें देखने को मिलती है। इस वर्ग की अपनी सीमायें होती है जिसके अन्तर्गत उन्हें कार्य करना होता है। अतः यह भी बहुत प्रभावी नियंत्रण रखने में कठिनाई महसूस करते हैं। विभिन्न प्रकार के विधायी नियंत्रण हों या प्रशासकीय नियंत्रण आलोचक मानते हैं कि इनकी अपनी सीमायें हैं जिस कारण यह बहुत कारगर नहीं हो पाते हैं।

अतः प्रशासन पर नियंत्रण के विभिन्न विधियों की अपनी सीमायें हैं तथा कमियाँ है। यही इसकी आलोचना का कारण एवं बिन्दु बनते हैं।

14.6 सारांश

प्रशासन पर नियंत्रण एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया मानी जाती है। आज के लोकतंत्रों के विकास एवं राज्यों तथा शासन-प्रशासन द्वारा लोक कल्याण के कार्यों को अपने कन्धों पर लेने के कारण प्रशासन के स्वरूप एवं भूमिका में व्यापक वृद्धि हुई है। वस्तुतः आज हम प्रशासनिक राज्य में निवास कर रहे हैं अतएव प्रशासन को लोकतान्त्रिक उत्तरदायी एवं जनाभिमुखी बनाने हेतु नियंत्रण की विविध विधियाँ अपनायी जाती हैं।

प्रशासन गैर-जिम्मेदार एवं निरंकुश न होने पाये इसलिए उस पर बाह्य तथा आन्तरिक दोनों तरीकों से

नियंत्रित करने के लिए विधिक, कार्यपालिका, न्यायिक एवं जननियंत्रण स्थापित किया जाता है वहीं आन्तरिक दृष्टि से प्रशासनिक संरचनाओं, सेवीवर्ग, बजट, कुशलता सर्वेक्षण तथा नेतृत्व आदि को नियंत्रित करने हेतु विविध विधियों को अपनाया जाता है, जिससे प्रशासन जागरुक, कुशल, जनाभिमुखी बन सके।

सार रूप में हम यह पाते हैं कि इतने सारे नियंत्रणों के बावजूद भी आज यह रहना उचित नहीं है कि हमारा प्रशासन लोकतांत्रिक, उत्तरदायी एवं जनाभिमुख है आज भी प्रशासन की शैली जन-उदासीनता, गैर-जिम्मेदराना, लेट-लतीफी, आत्मश्लाघा एवं अभिमान पूर्ण, पक्षपात, बेईमानी और घुसखोरी के बदनुमा दागों को धो पाने में समर्थ नहीं हो पायी है विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देशों में तो प्रशासनिक सेवाएँ नौकरशाही निरंकुशतावाद' के हद तक पहुँच जाती हैं। यद्यपि वर्तमान में परिस्थितियों में बदलाव के चिह्न स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहे हैं। प्रशासन पर उद्यमी प्रशासन अथवा ई-गर्वनेन्स की दिशा में बढ़ने हेतु दबाव है परन्तु स्वभावतः. परिवर्तन विरोधी होने एवं अपनी अभिजनवादी मनोवृत्ति के बदलाव हेतु वह सहज ही तैयार होने के लिए प्रस्तुत नहीं है अतएव इस दूषित मनोवृत्ति से ग्रस्त प्रशासन को विवादग्रस्तता से मुक्त करना आधुनिक समाज एवं लोकतंत्र के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। इस चुनौती का सामना मात्र प्रशासन को बाहरी या आन्तरिक आधारों पर कर पाना कठिन भले ही हो असंभव नहीं है।

14.7 उपयोगी पुस्तकें

1. P.H. Appleby, Public Administration for a Welfare state, Bombay, Asia Publishing House, 1961
2. E.N. Gladden, The Essential of Public Administration, London, Staples Press 1958.
3. S. Krislov, Represetative Bureauucracy, Engle wood Cliffs NJ, Printice Hall 1974.
4. P. Datta, Decentralisation : Expenditure Pattern Organisational Realities Delhi, Wily Eastern, 1988.
5. B.K. Dey, ``Conflict Management in Government : J.C.M. Style," Indian Journal of Public Administration, July-Sept 1985
6. J.G. Jabbra and O.P. Davedi (eds.) Public Service Accountatrilly : A Comparative Perspective, West Hertford, Kumarian Press, 1998.
7. D. Bravtigam, Governance and Economy : A Review, Washington D.C., JBRD 1991
8. C.P. Bhambri, Parliamentory Control Over Finance in India, Jaiprakash Nath Meerut, 1959.
9. Plunned Committee Report, Control of Public Expenditure, 1961
10. A. Awasthi and S.R. Maheshwari, Public Administration, Agra, Laxmi Narain Aggarwal, 1996.

14.8 सम्बंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रशासन पर संसदीय/विधायी नियंत्रण के प्रकारों का विश्लेषण कीजिए।

2. प्रसासन पर विधायी नियंत्रण की कमियों की विवेचना कीजिए।
3. प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की विधियों की व्याख्या कीजिए।
4. प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की कमियों की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रशासन पर विधायी नियंत्रण के महत्व की व्याख्या कीजिए।
2. प्रशासन पर प्रशासनिक नियंत्रण की आवश्यकता की विवेचना कीजिए।
3. प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण से आप क्या समझते हैं?
4. प्रशासन पर प्रशासनिक नियंत्रण की सीमायें बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौन विधायी नियंत्रण का अंग नहीं है?
   (अ) बजट पर चर्चा
   (ब) राष्ट्रपति का अभिभाषण
   (स) प्रधानमंत्री का भाषण
   (द) प्रश्न काल
2. निम्न में से कौन न्यायिक नियन्त्रण का अंग नहीं है?
   (अ) नियमों को अवैध घोषित करना
   (ब) नियमों का निर्माण करना
   (स) संवैधानिक उपचार
   (द) परमादेश
3. निम्न में से कौन प्रशासनिक नियंत्रण का अंग नही है।
   (अ) सेवी वर्ग पर नियंत्रण
   (ब) बजट द्वारा नियंत्रण
   (स) संसद सदस्यों द्वारा नियंत्रण
   (द) नेतृत्व द्वारा नियंत्रण
4. निम्न में से कौन प्रशासन पर नियंत्रण का अंग नहीं है–
   (अ) प्रश्न काल
   (ब) लोक लेखा समिति
   (स) कर्मचारी संघ
   (द) न्यायिक समीक्षा

14.9 प्रश्नोत्तर

1. (स)
2. (ब)
3. (स)
4. (स)

इकाई–15 : प्रशासन पर नियंत्रण से सम्बन्धित विषयवस्तु क्षेत्र, न्यायिक सक्रियता

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 प्रशासन पर नियंत्रण से संबंधित विषय-वस्तु क्षेत्र के प्रमुख बिन्दु

15.3 प्रशासन पर नियंत्रण से संबंधित विषय-वस्तु क्षेत्र की आलोचना

15.4 न्यायिक सक्रियता : पृष्ठ भूमि एवं आवश्यकता

15.5 न्यायिक सक्रियता विचार से प्रमुख आयाम

15.6 न्यायिक सक्रियता का मूल्यांकन

15.7 सारांश

15.8 उपयोगी पुस्तकें

15.9 संबंधित प्रश्न

15.10 प्रश्नोत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- प्रशासन पर नियंत्रण से जुड़े विषय-वस्तु क्षेत्र एवं प्रमुख मुद्दों की विवेचना कर सकेंगे।
- विषय-वस्तु क्षेत्र एवं उनसे जुड़े मुद्दों की जानकारी के पश्चात् उनकी समालोचना कर सकेंगे।
- न्यायिक सक्रियता के विचारों की पृष्ठभूमि एवं आवश्यक दशाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- न्यायिक सक्रियता विचार से संबंधित विविध आयामों एवं उनसे जुड़े मुद्दों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- न्यायिक सक्रियता के आलोक में न्यायपालिका की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

लोक प्रशासन के विषयवस्तु में प्रशासन पर नियंत्रण का अपना विशिष्ट स्थान है। प्रशासन पर नियंत्रण आवश्यक होने के साथ-साथ इसकी अनेक विधायें हैं तथा अनेक प्रकार से इसे प्रभावी बनाने के प्रयास होते हैं। यद्यपि यह सभी विधायें महत्वपूर्ण हैं परन्तु सबकी अपनी सीमायें हैं। हर एक नियंत्रण-विधा की अपनी कमियाँ है। इस इकाई में हम प्रशासन पर नियंत्रण से सम्बन्धित विषय-वस्तु क्षेत्र का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही साथ हम न्यायिक सक्रियता सम्बन्धी विचार का भी विश्लेषण करेंगे। विषय-वस्तु क्षेत्र के अन्तर्गत उन समस्याओं को समझने का प्रयास करेंगे जो प्रशासन पर नियंत्रण के विचार से सम्बंधित है। न्यायिक सक्रियता विचार का अध्ययन करने के साथ ही इसके आर्विभाव के

कारणों को भी जानने का प्रयास करेंगे।

15.2 प्रशासन पर नियंत्रण से सम्बंधित विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Areas) के प्रमुख बिन्दु

प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व का हमने अध्ययन किया। प्रशासन पर नियंत्रण की विभिन्न विधाओं की जानकारी हमने प्राप्त की। इन विधाओं की अपनी सीमायें है जिनसे जुड़े अनेक मुद्दे रहते हैं। इस अध्याय में हम उन विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Areas) के प्रमुख बिन्दुओं का अध्ययन करेंगे। इस सम्बंध में हम विभिन्न विधाओं से जुड़े बिन्दुओं को अलग से रेखांकित कर उनका अध्ययन करेंगे। यह इसलिये भी आवश्यक है कि अलग-अलग विधायों की समस्यायें अलग हो सकती है अतः उन्हें अलग से विश्लेषित कर समझते में आसानी होती है।

सबसे पहले विधायी नियंत्रण का जिसे हम संसदीय नियंत्रणं भी कहते हैं, इससे सम्बन्धित विषय वस्तु क्षेत्र के बिन्दुओं का अध्ययन करे। जैसा कि हम जानते हैं विधायी नियंत्रण प्रशासन पर नियंत्रण की एक महत्वपूर्ण अंग है जो अनेक विधाओं द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। हम इसी से सम्बंधित कुछ प्रमुख विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Areas) को रेखांकित कर विश्लेषित करते हैं। इसके अन्तर्गत हम बजट पर चर्चा को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा इसका प्रभावी होना आवश्यक माना जा सकता है। परन्तु बजट पर अपनी कभी-कभी समयाभाव के कारण अथवा अन्य राजनीतिक कारणों से प्रभावी नहीं हो पाती है। अतः प्रशासन पर नियंत्रण के विचार के सम्बंध में इस विषय-वस्तु को प्रभावी होना चाहिए। बजट पर नियंत्रण यदि कमजोर हो जाता है तो सरकार मनमानी करने की छूट सी मिल सकती है। बजट पर नियंत्रण कहा किया जाय अथवा बजट पर प्रभावी चर्चा के माध्यम से नियंत्रण कहा किया जाय, इसे आवश्यक माना जाना चाहिये। जैसा कि हम जानते कि प्रशासन में वित्त कितना महत्वपूर्ण होता है, इसलिये इसके माध्यम से प्रशासन पर नियंत्रण को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

विधायी नियंत्रण के अन्तर्गत अनेक विधायी/संसदीय प्रक्रियायें है जिनके माध्यम से प्रशासन पर नियंत्रण को क्रियान्वित किया जाता है। विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Areas) के अन्तर्गत हम इसे भी रखना आवश्यक समझते हैं। यद्यपि यह प्रक्रियायें विधायी नियंत्रण का अंग है, परन्तु बहुधा अनेक कारणों से प्रभावी नहीं हो पाती हैं। यह चाहे प्रश्न काल हो या शून्य काल यह सभी प्रशासन पर नियंत्रण के प्रभावी अंग तभी बन पाते हैं जब संसदीय प्रक्रिया सुचारुरूप से चले तथा सदस्यगण इसमें प्रभावी भूमिका निभाये। इन प्रक्रियाओं में शिथिलता आने से नियंत्रण भी शिथिल हो सकता है जो प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। अतः हम इसे विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Areas) के अन्तर्गत रखते हैं जिससे प्रशासन पर विधायी नियंत्रण को प्रभावी बनाने हेतु और चर्चा हो सके।

लोक प्रशासन में नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र के अध्ययन की दृष्टि से प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है। एक उत्तरदायी शासन व्यवस्था में तो प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण न सिर्फ अपेक्षित समझा जाता है, अपितु 'नौकरशाही राज' की स्थापना होने से बचाव की दृष्टि से समुचित प्रणाली की खोज अति आवश्यक समझी जाती है। इससे प्रशासन प्रभावी ढंग से क्रियाशील हो सके एवं अपने उत्तरदायित्वों का समुचित रीति से निर्वहन कर सके। इस कारण प्रशासन को कार्यकुशल एवं प्रभावी बनाये रखने हेतु प्रशासन को उत्तरदायी एवं जवाबदेह बनाये रखना, के सिद्धान्त की एक प्रमुख समस्या है जिस पर विचार एवं चर्चा वर्तमान में कार्यपालिकीय नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। वैसे उत्तरदायी (लोकतन्त्रात्मक) शासनों में प्रशासन की स्थिति कार्यपालिका की तुलना में बेहतर होती है जिससे उस पर नियंत्रण स्थापित कर पाना एक कठिन कार्य हो जाता है। प्रशासनिक कार्मिक-वर्ग स्थायी अवधि

के लिए नियुक्त किये जाते हैं जबकि कार्यपालिका की अवधि सामान्यतया अनिश्चित अथवा थोड़े समय की होती है। अतः स्थायी कर्मचारी कभी-कभी कार्यपालिका के निर्देशों का पालन करने से कतराते हैं अथवा उनके निर्देशों की अवहेलना करने लगते हैं, जिससे कार्यपालिका का नियंत्रण प्रभावशाली नहीं रह पाता। इस कारण अनेक प्रकार की समस्याएँ उठ खड़ी होती जैसे अनुशासन हीनता की कार्य के प्रति समर्पण की तथा नागरिकों में असन्तोष आदि की जिनसे राजनीतिक कार्यपालिका दुष्प्रभावित हो जाती है। अतएव उत्तरदायित्व, कार्मिक वर्ग पर समुचित नियंत्रण आदि विषयों का चयन कार्यपालिका के विषय-वस्तु क्षेत्र अध्ययन को प्रभावशाली एवं नियंत्रण को समुचित रीति से लागू करने की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन का विषय-क्षेत्र बन जाता है।

इसी प्रकार कार्यपालिका के विषय-वस्तु क्षेत्र के निर्धारण की दृष्टि से लोकनीतियों के निर्धारण एवं इससे जुड़ी हुई समस्याओं का अध्ययन भी एक महत्त्वपूर्ण चर्चा का बिन्दु है। सामान्यतया शासन की समस्त नीतियों के निर्माण का दायित्व कार्यपालिका पर होता है। लोकतान्त्रिक प्रणाली में यह अपेक्षा की जाती है कि राजनीतिक कार्यपालिका लोकनीतियों के निर्माण का दायित्व निभायेगी, परन्तु वास्तव में यह दायित्व प्रशासनिक कार्मिकों द्वारा ही व्यवहार में लाया जाता है। तकनीकी ज्ञान, स्थायी कार्यकाल, लम्बे समय से विभागीय कार्य-अनुभव आदिकतिपय ऐसे कारण है जो प्रशासन को नीति-निर्माण की दृष्टि से लगभग सम्पूर्ण दायित्वों के निर्वहन हेतु अविशेषज्ञ राजनीतिक कार्यपालिका अपने ऊपर आश्रित बना लेती है और अपने विशेषज्ञ सलाहों एवं परामर्शों से अपनी बात नीतियों निर्माण के सम्बन्ध में मानने हेतु लगभग उसे बाध्य कर देती हैं। यह एक ऐसा कटु यथार्थ है जो कार्यपालिका के द्वारा प्रशासन के ऊपर उसके वास्तविक नियंत्रण को शिथिल बनाता है एवं साथ ही कार्यपालिका की नीति-निर्धारण के क्षेत्र में वास्तविक एवं व्यवहारिक भूमिका पर एक प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है। यह एक ऐसा विषय-वस्तु क्षेत्र है जिसका अध्ययन लोक प्रशासन के प्रभावशाली विकास एवं उन्नयन की दृष्टि से ही आवश्यक नहीं अपितु प्रशासन पर कार्यपालिकीय नियंत्रण को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक भी है।

न्यायिक नियंत्रण प्रशासन पर नियंत्रण की एक और महत्वपूर्ण विधा है। परन्तु इसकी अपनी समस्यायें है तथा सीमायें है। इसी दृष्टि से इसे हमें प्रशासन पर नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Areas) के अन्तर्गत सम्मिलित कर इसका अध्ययन महत्वपूर्ण समझते हैं। इस विषय-वस्तु क्षेत्र में दो बिन्दुओं को मुख्य रूप से रेखांकित कर सकते हैं। एक बिन्दु सम्बन्धित है शिथिल एवं खर्चीली न्यायिक प्रक्रिया से तथा दूसरी इसके क्षेत्र से जिसमें हम देखते है कि प्रशासन के समस्त कार्य न्यायिक नियंत्रण में न हो।

न्यायिक प्रक्रिया सामान्यतया विशेष रूप से भारत में, ऐसी है जिसके अन्तर्गत अत्यधिक समय लगता है। वाद के सुलझने में बहुधा वर्षों का समय लग जाता है। इस कारण यह कहा जाने लगता है कि देर से न्याय मिलना न्याय न मिलने के समान है इस कारण जब हम प्रशासन पर नियंत्रण के विषय-वस्तु (Issue areas) का अध्ययन करते हैं तो इसके अंतर्गत इस प्रश्न का आना स्वाभाविक हो जाता है। इसी के साथ एक और जुड़ा हुआ बिन्दु न्याय के खर्चीले होने से सम्बंधित कहा जाता है यह आम जानकारी है कि तीसरी दुनिया के देश जैसे भारत, गरीब देश ही कहलाते हैं। यहाँ करोड़ों की जनसंख्या गरीबी-रेखा के नीचे जीवन यापन करती है। ऐसी स्थिति में न्याय प्रक्रिया का खर्चीला होना या उसका महंगा होना न्याय पाने को दुर्लभ बना देता है। यदि सामान्य नागरिक को अपने सीमित साधनों में न्याय नहीं मिलता तो न्यायिक नियंत्रण की विधा पर प्रश्न चिन्ह लगता है। अतः हमें इसे विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue area) के अन्तर्गत रखकर अध्ययन करना महत्वपूर्ण माना जाता है।

वर्तमान समय में प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी रखना एवं वन नियंत्रण को प्रभावी बनाना एक भारी चुनौती है। यह सत्य है कि वर्तमान दौर प्रजातन्त्रों के निकास का दौर है। प्रजातन्त्र लोक

(Public) या जन (People) का तन्त्र (System) है, अतएव तंत्र या व्यवस्था पर जन-नियंत्रण आवश्यक है। यह किस प्रकार सुचारु रूप से स्थापित किया जाये, यह प्रशासन पर जन-नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र के निर्धारण का प्रमुख विचार-बिन्दु है। इस विषय-वस्तु क्षेत्र के अन्तर्गत हम जन प्रतिनिधियों के चुनाव एवं उनके वापिस बुलाने के अधिकार सहित अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को रख सकते हैं एवं हम उनसे जुड़े हुए अनेक मुद्दों का विश्लेषण कर सकते हैं क्योंकि यह वह प्रारम्भिक बिन्दु है जहां से कार्यपालिका का गठन उसकी प्रतिनिध्यात्मकता तथा भूमिका पर विचार प्रस्तुत करके उसमें अन्तर्निहित अन्तर्विरोधों को उजागर किया जा सकता है एवं साथ ही उन पर गहन विचार-विनिमय करके कार्यपालिका की प्रभावी भूमिका का श्री गणेश किया जा सकता है। जनतन्त्रों में कार्यपालिका का चुनाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही तरीकों से किया जाता है एवं चुनाव द्वारा गठित कार्यपालिका को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाये रखने हेतु ही जनता को उनको चुनने का अधिकार दिया जाता है। परन्तु वास्तव में चयन का यह अधिकार प्रभावी जन-नियंत्रण को स्थापित कर सुयोग्य प्रतिनिधियों को ही विधायिकाओं में भेजे अथवा उनसे लोक-नीतियों के निर्माण में सच्चरित्रता एवं ईमानदारी से अपनी भूमिका के निर्वहन की अपेक्षा रखना या प्रशासन को जनता के प्रति दायित्वपूर्ण बनाये रखना आज के सन्दर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं जिनके अध्ययन विश्लेषण में हम इसमें अर्न्तनिहीत विरोधाभाषों को स्पष्ट रूप से देखते हैं। इन विरोधाभाषों पर विचार-विमर्श, इनकी कमियों एवं दोषों के निराकरण के उपाय ढूँढ़े बिना हम कार्यपालिका की प्रभावी भूमिका की कल्पना नहीं कर सकते हैं। सिद्धान्त रूप में ये अधिकार जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से कार्यपालिका को सौंपती है परन्तु व्यवहार में इनसे प्राप्त परिणामों का विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि चयन के पश्चात् जनहित को भूलकर स्वहित के पोषण में वे लग जाते हैं, अनेक बुराइयों के शिकार हो जाते हैं और अपने मूल उत्तरदायित्व से भटक जाते हैं जैसा कि आज वे स्टिंग द्रोण एवं अन्य आपरेशनों के माध्यम से इन जन-प्रतिनिधियों की वास्तविकता से हम सभी परिचित हैं। यह सबकुछ ऐसे परिवेश का विनिर्माण करता है जिसमें कार्यपालिका का प्रशासन पर नियंत्रण बने रह पाना बुरी तरह प्रभावित होता है। साथ ही प्रत्यक्ष प्रजातंत्रों को छोड़कर अपने इन प्रतिनिधियों को वापिस बुला लेने का अधिकार सामान्यतया अप्रत्यक्ष लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में जनता को प्राप्त नहीं होता जिससे इनका कार्यपालिका पर एवं कार्यपालिका के माध्यम से जनता का प्रशासन पर नियंत्रण ढीला हो जाता है। ये सभी प्रश्न ऐसे वातावरण का निर्माण करते हैं जिसमें लोकतन्त्रों का सफल संचालन एक मजाक बन कर रह जाता है। अतएव ये ऐसे कुछ गम्भीर मुद्दे हैं जिन्हें आप हम कार्यपालिका नियंत्रण के प्रभावी बनाये जाने की खोज के विकल्पों के रूप में इस पर गहन विचार मन्थन द्वारा किसी समुचित क्रियाविधि की तलाश में रूप में इसके विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Areas) के अन्तर्गत सम्मिलित कर इसका अधययन-विश्लेषण प्रस्तुत कर एक बेहतर उत्तरदायी शासनिक-प्रशासनिक व्यवस्था के विनिर्माण की ओर कदम बढ़ा सकते हैं।

विधायी नियंत्रण से सम्बंधित विषय-वस्तु क्षेत्र में हम दूसरे प्रकार के नियंत्रण जिसे हम प्रशासनिक नियंत्रण करते हैं, उससे सम्बंधित बिन्दुओं को रेखांकित कर उनका अध्ययन करते हैं जैसा कि हम जानते हैं कि प्रशासनिक नियंत्रण के अन्तर्गत एक प्रमुख नियंत्रण सेवी वर्ग पर नियंत्रण के माध्यम से होता है। अतः हम इस विषय से सम्बंधित विषय-वस्तु क्षेत्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रशासनिक व्यवस्था एक पदसोपानिक व्यवस्था होती है जो अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों के आधार पर ऊपर से लेकर नीचे तक व्यवस्थित होती है। इसी प्रकार उनकी जवाबदेही भी ऊपर से लेकर नीचे तक रखी जाती है जिससे प्रशासन पर नियंत्रण बना रहे। परन्तु हमें बहुधा ऐसे दृश्य देखने में आते हैं जब इन बिन्दुओं की अनदेखी होती है जिससे प्रशासन की कुशलता के साथ-साथ उसकी उपादेयता प्रभावित होती है। ऐसी स्थिति के कारण हम प्रशासन पर नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Areas) के अन्तर्गत रखते हैं। वर्तमान प्रशासनिक प्रक्रिया में इस जवाबदेही की

कमी दिकाई देती है। घटनाओं के घटित होने पर आरोप-प्रत्यारोप होता रहता है। परन्तु मात्र नागरिक प्रताड़ित होता रहता है। सेवी वर्ग प्रशासन पर नियंत्रण एक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि इसके माध्यम से ही प्रशासनिक प्रक्रिया पूरी होती है और फलित होती है। इस विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue Area) के अन्तर्गत हम सेवी वर्ग से जुड़े हुए अनेक प्रश्न हम रख सकते हैं। हम उनके सभी प्रश्नों का विश्लेषण कर सकते हैं क्योंकि यह प्रारम्भिक बिन्दु है जहाँ से आने के प्रश्न जुड़ते हैं। हम उनके प्रशिक्षण के प्रश्न को देख सकते हैं कि कहीं, उसमें तो कमी नहीं पाई है। हम उनके अधिकारों एवं दायित्वों का अध्ययन कर सकते हैं कि कहीं उससे तो व्यवस्था प्रभावित नहीं हो रही है। यहाँ कहने का तात्पर्य इतना है कि सेवीवर्ग प्रशासन पर नियंत्रण को हम विषय-वस्तु क्षेत्र के अंतर्गत रखना महत्वपूर्ण समझते हैं क्योंकि इसने कई नये प्रश्नों का उजागर किया है जिनका अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

प्रशासन पर प्रशासनिक नियंत्रण के कई अन्य प्रश्न भी है जिन्हें हम विषय-वस्तु क्षेत्र के अन्तर्गत रख सकते हैं। उदाहरण के तौर पर इसकी कुशलता सर्वेक्षण व्यवस्था। यह भी एक महत्वपूर्ण अंश माना जाता है जिसके माध्यम से प्रशासनिक नियंत्रण को प्रभावी बनाया जाता है। परन्तु इसके अन्तर्गत भी कमियाँ है, इसकी अपनी सीमायें है जिसके कारण हम इस शीर्षक में रखकर गम्भीर विश्लेषण कर सकते है।

इस प्रकार हमने देखा कि प्रशासन पर नियंत्रण से संबंधित अनेक प्रश्न ऐसे हैं जो स्तर की अपेक्षा में लगते हैं। यद्यपि हम प्रशासन पर नियंत्रण के विभिन्न विधानों के महत्व को समझते हैं फिर भी यह कुछ बिन्दु ऐसे हैं जिसे हम विषय वस्तु क्षेत्र के अन्तर्गत रख कर दोबारा सोचते हैं कि किस प्रकार प्रशासन पर नियंत्रण को प्रभावी बनाया जाय तथा बनाये रखा जाय जिससे उसकी कुशलता एवं गुणवत्ता बनी रहे और सुशासन प्रभावित न हो।

15.3 प्रशासन पर नियंत्रण से सम्बंधित विषय-वस्तु क्षेत्र की आलोचना

प्रशासन पर नियंत्रण से सम्बंधित विभिन्न विषय वस्तु क्षेत्रों (Issue areas) के बारे में हमने संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की। यह सभी विषय-वस्तु क्षेत्र अपने में महत्वपूर्ण है परन्तु किसी न किसी कमी के कारण इन बिन्दुओं की भी आलोचना की जाती है। उदाहरण के लिये हम इनमें से कुछ को रेखांकित कर उनका विश्लेषण करेंगे। विधायी नियंत्रण से सम्बंधित विषय-वस्तु क्षेत्र को प्रमुख रूप से चिन्हित किया गया। परन्तु लोकतांत्रिक प्रक्रिया में इसका अपना महत्व है। भारत जैसे देश में अभी लोकतांत्रिक मान्यतायें बहुत सुदृढ़ न होने के कारण आलोचक उन कमियों को रेखांकित करने का प्रयास करते हैं। इसी कारण हमने इस विधा को विषय-वस्तु क्षेत्र का एक प्रमुख बिन्दु माना है। इस कमी के कारण ही यह आलोचना का पात्र भी बनता है।

विषय-वस्तु क्षेत्र में हमने कार्यपालिका नियंत्रण से सम्बन्धित बिन्दुओं को शामिल किया है। इसके अन्तर्गत हमने अनेक मुद्दों में से कुछेक मुद्दों जैसे कार्यपालिका चयन, नियुक्ति एवं निष्कासन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण विषयों को ही सम्मिलित नहीं किया है अपितु कार्यपालिका के नीति-निर्धारण जैसे क्रियान्वयन की विवेचना एवं विश्लेषण को भी इसके विषय-वस्तु क्षेत्र में रखकर इनका विश्लेषण किया है। साथ ही इन विषयों की आलोचना एवं कमियों पर भी विचार किया है जिससे कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित कर पाने के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों के फलस्वरूप कार्यपालिका नियंत्रण की उपयोगिता एवं सार्थकता पर ही आज प्रश्नचिह्न खड़ा हो चला है। परिणामस्वरूप नये विषय-वस्तु क्षेत्रों की उपादेयता की त्रुटिहीन लोकतांत्रिक व्यवस्था और स्थापना कर

पाये इस पर शंका का उत्पन्न होना एवं इसकी आलोचना होना स्वाभाविक है क्योंकि पहले तो कार्यपालिका के विषय-वस्तु का निर्धारण ही एक प्रमुख समस्या है फिर उस पर विषय-वस्तु क्षेत्रों की पुर्नखोज (Reinventing) वरना तो उससे भी बड़ी समस्या है। कार्यपालिका नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र की तलाश एक ऐसा यक्ष-प्रश्न खड़ा करता है कि कार्यपालिका किस प्रकार प्रशासन पर अपना नियंत्रण प्रभावी बनाये रखे? यह यक्ष-प्रश्न समस्या के निराकरण का हल प्रस्तुत करने के स्थान पर नियंत्रण के क्षेत्र को लेकर एक नये विवाद को ही जन्म दे देती है। फलस्वरूप अपेक्षित विषय-वस्तु क्षेत्र की खोज अधूरी रह जाती है एवं स्वयं अपनी ही आलोचना का कारण बन जाती है। अतएव कार्यपालिका नियंत्रण के माध्यम से सुशासन की स्थापना का लक्ष्य प्राप्त कर पाना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि आज कार्यपालिका नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र के निर्धारण करने का प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकंता बन चुकी है जिसके हल की खोज विषय-वस्तु क्षेत्र की प्रमुख समस्या है।

विषय-वस्तु क्षेत्र में हमने न्यायिक नियंत्रण के बिन्दुओं का भी अध्ययन किया है। न्यायिक नियंत्रण की भी अपनी सीमायें है जिनका संक्षिप्त अध्ययन हमने किया। इन्हीं सीमाओं तथा कमियों के आधार पर आलोचक इस विषय वस्तु क्षेत्र की आलोचना प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में कोई भी नियंत्रण अपने आप में पूर्ण नहीं हो सकता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में हर विधा की संवैधानिक सीमायें रहती हैं। इस कारण आलोचक कमियों को रेखांकित करते हैं जिससे कि उन कमियों को जहां तक सम्भव हो दूर किया जा सके।

आज के लोकतांत्रिक युग में प्रशासन पर जन-नियंत्रण का न होना, एक गम्भीर शासनिक-प्रशासनिक अव्यवस्था को जन्म देता है जिसमें प्रशासन के अनुत्तरदायी आचरण एवं निरंकुशतंत्र की ओर उन्मुख हो जाने का खतरा पैदा हो जाता है। इस दृष्टि से विषय-वस्तु क्षेत्र के अन्तर्गत जनमत की जागरुकता के माध्यम से योग्य, ईमानदार एवं कुशल जन प्रनिनिधियों के चयन में लोक विकल्प की आवश्यकता एवं इसके विपरीत आचरण करने पर जन प्रतिनिधियों के वापिस बुलाने (Right to Recall) जैसे अधिकारों के समुचित प्रयोग से प्रशासन में उत्तरदायित्व की भावना को बनाये रखने पर बल दिया जा रहा है। इससे जन प्रतिनिधि एवं प्रशासन जनता की माँगों एवं आवश्यकताओं के प्रति सदैव सचेष्ट एवं चौकन्ने बने रहते हैं। अब यदि जनता जागरुक एवं चैतन्य है तो प्रशासन भी अपने दायित्वों के प्रति उदासीन एवं निरंकुश नहीं होने पाता। फिर भी विषय-वस्तु क्षेत्र इस बात को उजागर करता है कि इसके अन्तर्गत प्रभावी जन-नियंत्रण को स्थापित कर पाना एक महत्वपूर्ण एवं विकट समस्या है जिससे इसकी कमियां उजागर होती है। जनता में चेतना के अभाव के कारण जन-नियंत्रण कमजोर पड़ने लगता है और प्रशासन अनुत्तरदायी बनने की दिशा में अग्रसर हो जाता है। इसी दृष्टि से आलोचक विषय-वस्तु क्षेत्र की कमियों को रेखांकित करते हैं जिससे इन कमियों को दूर किया जा सके और जन-नियंत्रण को प्रभावी बनाया जा सके और प्रशासन कार्य कुशल एवं अल्पव्ययी होकर परिणामोन्मुखी बन सके।

इसी प्रकार हम दूसरे बिन्दुओं को देख सकते हैं जो प्रशासनिक नियंत्रण से सम्बंधित है तथा प्रशासन पर आन्तरिक नियंत्रण स्थापित करते हैं। इसके अन्तर्गत हमने अनेक बिन्दुओं में से एक बिन्दु सेवीवर्ग प्रशासन पर नियंत्रण से सम्बंधित है जिसका हमने अध्ययन किया। यद्यपि यह एक महत्वपूर्ण बिन्दु माना जाता है, परन्तु आलोचकों ने इस नियंत्रण की कमियों को रेखांकित कर आलोचना की है। यह आलोचना उनके भर्ती व्यवस्था से लेकर कार्य प्रणाली आदि सभी को जोड़ती है। अतः विषय-वस्तु क्षेत्र में इस प्रमुख बिन्दु की भी कमियों को दृष्टिगत रखते हुए आलोचना होती है।

हम यह कह सकते हैं कि प्रशासन पर नियंत्रण के अन्तर्गत अनेक कमियाँ है जिनसे कई विषय-वस्तु क्षेत्र उभरते हैं। इन विषय-वस्तु क्षेत्रों की अपनी सीमायें हैं जिनके कारण यह आलोचना का पात्र बनते हैं। यह अवश्य है कि इस आलोचना से बिन्दुओं को समझने और उनके विश्लेषण में सहायता मिलती

है। जैसा कि हमने देखा कि यह आलोचना नियंत्रण की तीनों विधाओं से जुड़ी हैं जो सामान्य लोकतांत्रिक व्यवस्था के ही अंग हैं।

15.4 न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता

प्रशासन पर जन उत्तरदायित्वों के निर्वहन की सम्पूर्ण जिम्मेदारी होती है। कतिपय कारणों से प्रशासन अपने दायित्वों को निभा पाने में जहाँ असफल रहता हैं वहीं उसमें अपनी विफलता को छिपाने या दूसरों पर उसकी जिम्मेदारी डालने की प्रवृत्ति पैदा होती है। इस घातक मनोवृत्ति के शिकार होने के साथ ही प्रशासनिक कर्मचारी एवं अधिकारीगण अभिजनवादी प्रवृत्ति के चलते अहंवादी (Complened) हो जाते हैं एवं जनकार्यों के प्रति उदासीन भी। जहाँ एक ओर ये जनकार्यों को शीघ्रता पूर्वक एवं कुशलता के साथ पूर्ण नहीं कर पाते वही अपने ही अहंवाद के शिकार होकर स्वयं को सेवक के स्थान पर मालिक मान बैठते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था की सर्वमान्य परिकल्पना है कि ऐसी प्रणाली में लोकशाही की स्थापना होगी न कि नौकरशाही की नौकरतन्त्र जनतन्त्र के अधीन कार्य करेगा न कि जनता नौकरशाही के अधीन। वर्तमान समय में राज्य के उत्तरदायित्वों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण जनतंत्रों की स्थापना की आवश्यकता की पूर्ति हेतु शासन एवं प्रशासन के कार्यों एवं भूमिका में असीमित वृद्धि पर नियंत्रण करना है। पूर्व के अध्याय में हमने प्रशासन पर नियंत्रण के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही तरीकों का विस्तार से अध्ययन किया है और इस निष्कर्ष पहुँचे कि ये नियंत्रण इसी अवस्था में प्रभावी तरीके से लागू किये जा सकते हैं जबकि प्रशासनिक व्यवस्था एवं सेविवर्ग जनता के साथ समुचित सहभागिता एवं सहयोग के माध्यम से अपने दायित्वों का निर्वहन करने हेतु स्वयं तत्पर रहे अथवा जागरुक जनमत उसे कुशलता एवं अल्पव्ययता के साथ प्रभावोत्पादक कार्यों को सम्पन्न करने हेतु बाध्य करे। वास्तव में दोनों ही छोरों (ends) से शिथिलता देखी जा सकती है। जहाँ सेविवर्ग अपने मूल कर्त्तव्य 'सेवा' को छोड़ अन्य प्रकार के स्वहितकारी कार्यों में संलग्न है तो जनमत भी अशिक्षा, जातियता, क्षेत्रीयतावाद जैसे असामाजिक बन्धनों में जकड़ा होने के कारण वास्तविक रूप में प्रशासन पर अपना नियंत्रण स्थापित कर पाने में सफल नहीं हो पा रहा है यह ऐसी विषादमय स्थिति है इसमें आम लोगों में अपनी सुरक्षा, अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं को लेकर चिन्ता व्याप्त रहती है। इस चिन्ता से मुक्ति का प्रयास सामान्य जन विधायिकाओं एवं न्यायिक संरक्षण के अन्तर्गत खोजता है। विधायी नियंत्रण प्रशासनिक गतिविधियों को अपरोक्ष रूप में ही नियंत्रित करती है जबकि प्रत्यक्षतः संसदीय व्यवस्तताओं एवं इसके समयाभाव का लाभ उठाकर प्रशासन हस्तांतरित विधायन के माध्यम से अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर लेता है एवं आम नागरिक संत्रस्त ही अधिक होता है उसका विकास तो यथास्थिति वाद का ही शिकार रहता है। इस कारण विधायी नियंत्रण भी प्रशासन को नियंत्रित कर प्रभावी शासन की ओर ले जाने में असफल रहता है। ब्राईस से अपनी पुस्तक 'माडर्न डेमोक्रेसीज' में 'व्यवस्थापिकाओं का रोग विज्ञान' (Pathology of Legislatur's) समझाने का प्रयास किया है अर्थात् उसने उन रोओं व राखों को खोजने का प्रयास किया है जिनसे व्यवस्थापिकाएं पीड़ित होकर पतन की ओर जा रही है। आज अक्सर यह कहा जाता है कि संसदों का युग लद गया है, नौकरशाही की विजय हो रही है और कार्यपालिका या कैबिनेट की तानाशाही स्थापित हो रही है जिसके तले आमजन दबकर कराह रह एवं इस वेदना से छुटकारे के लिए छटपटा रहा है। अपने अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं की सुरक्षा की दृष्टि से न्यायपालिकाओं की ओर बड़ी ही आशा भरी नजरों से निहार रहा है। इसकी यह अपेक्षा है कि संभवतः न्यायपालिका प्रशासकीय अधिकारियों को अपनी सीमाओं में रहकर कार्य करने हेतु बाध्य कर सकें। ब्राईस का यह कथन इस दिशा में संकेत करता है कि 'किसी सरकार की कार्यकुशलता को जानने का सर्वश्रेष्ठ मापदण्ड न्यायिक व्यवस्था की कार्य कुशलता ही है।' परन्तु व्यवहार में प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की कई सीमाएँ और समस्याएँ हैं जिनसे प्रभावी न्यायिक नियंत्रण के मार्ग में अनेक रोड़े खड़े हो जाते हैं, यथा–

प्रथम, प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण न्यायपालिका स्वयं नहीं करती है, नियंत्रम के लिए इसके पास आरम्भिक शक्ति नहीं है। यह तभी हस्तक्षेप कर सकती है जब कोई व्यक्ति आवेदन देकर इससे अनुरोध करता है कि प्रशासन के कृत्य असंवैधानिक अथवा अवैधानिक हैं।

दूसरे, न्यायिक प्रक्रिया अत्यन्त ही जटिल एवं उलझी हुई प्रक्रिया है। इसमें नियमों, कानूनों, तथ्यों प्रमाणों और गवाहों इत्यादि की कार्यवाहियों की इतनी उलझने विद्यमान रहती हैं कि प्रशासकीय अन्याय का शिकार व्यक्ति न्यायालय जाने की अपेक्षा चुप रहना ज्यादा बेहतर समझता है।

तीसरे, न्यायिक प्रक्रिया अत्यन्त ही विलम्बकारी क्रिय (Time-Taking Process) होती है कई बार निर्णय में इतना अधिक विलम्ब हो जाता है कि उस समय तक नागरिक को बहुत अधिक मात्रा में हानि पहुँच चुकी होती है। जिसकी भरपाई असम्भव होती है।

चौथे, न्यायिक प्रक्रिया न सिर्फ सुस्त एवं जटिल है बल्कि यह प्रक्रिया बहुत अधिक महँगी पड़ती है। न्यायिक कार्यवाही करने और अदालत में मुकदमा चलाने के लिए स्टाम्प फीस, वकीलों की फीस गवाहों के खर्चे, दौड़ धूप तथा न्यायिक कार्यालयों के नाजायज खर्चे आदि कुल मिलाकर इतना अधिक हो जाता है कि आमजन की कमर ही टूट जाती है। अतएव गरीबों के लिए न्याय का हक पाने की गुंजाईश कम ही रहती है।

पाँचवें, अनेक प्रशासकीय कार्यों को न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार से बाहर ही रखा जाता है। ऐसे प्रशासकीय कार्यों का न्यायिक पुनराविलोकन या न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती।

छठें, आजकल प्रशासन का कार्य अत्यधिक तकनीकी पूर्ण तथा विशेषीकृत (Technical and Specialised) होता जा रहा है। सामान्यतया न्यायालयों के न्यायाधीश विशेष तकनीकी योग्यता के अभाव में समुचित निर्णय देने की स्थिति में नहीं होते हैं। इसलिए वे तकनीकी ढंग के मामलों में प्रार्थियों के साथ पूरा न्याय कर पाने में समर्थ नहीं हो पाते।

सप्तम, न्यायिक नियंत्रण घटना के बाद की प्रक्रिया होती है। जब कोई घटना घट जाती है तब उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत क्रिया जाता है और उसके बाद न्यायिक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। न्यायिक नियंत्रण में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके लागू होने से सम्भावित अव्यवस्था या घटना को नियंत्रण में रखा जा सके।

उपर्युक्त सीमाओं एवं समस्याओं ने प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के समक्ष अवश्य ही प्रश्न चिह्न खड़े कर दिये हैं और इसकी उपयोगिता को कुछ कम कर दिया है। लेकिन इन बाधाओं एवं सीमाओं के बाद जो प्रजातान्त्रिक, संसदात्मक, अध्यक्षात्मक तथा विश्व की समस्त शासन प्रणालियों में कमोबेश न्यायपालिका की उपयोगी भूमिका को स्वीकार किया गया है। भारत के सन्दर्भ में तो निश्चय ही सर्वोच्च न्यायालय नागरिक स्वतन्त्रता एवं मौलिक अधिकारों का रक्षक और संरक्षक दोनों ही है। नागरिक अधिकारों को न्यायपालिका कितना सुरक्षित कर पाने में सफल रहा है अथवा नहीं यह विवाद एवं बहस का मुद्दा हो सकता है। परन्तु आम नागरिकों के अन्दर बदलती परिस्थितियों के सन्दर्भ में एक आशा की किरण पैदा करने में अवश्य सफल रहा है अपनी तमाम कठिनाइयों एवं प्रक्रियागत दोषों के बावजूद न्यायपालिका उनके अधिकारों का संरक्षण करने हेतु तत्पर है। इस दृष्टि से जन अदालतों का गठन, फास्ट ट्रैक न्यायालयों की स्थापना एवं लोकहितकारी वादों के आधार पर प्रशासन, शासन अथवा अधिकारियों को उनके दायित्वों के प्रति सचेत करने जैसे महत्त्वपूर्ण तरीकों के माध्यम से न्यायालयों ने अपनी न सिर्फ सक्रियता बढ़ादी है अपितु आम लोगों को सुस्त, खर्चीली एवं विलम्बकारी प्रवृत्तियों से भी छुटकारा दिलाने के लिये प्रयासरत हैं।

आज न्यायपालकीय सक्रियता का ही परिणाम है कि लोक अधिकारी एवं कर्मचारीगण न सिर्फ अपने दायित्वों के प्रति सचेत ही हो रहे हैं अपितु वे उन दायित्वों के निर्वहन हेतु स्वयं को मानसिक एवं

व्यावहारिक स्तर पर तैयार करने हेतु भी बाध्य हो रहे हैं। चाहे शहरों के व्यस्त क्षेत्रों में लगने वाली जाम की समस्या हो अथवा स्वास्थ्यवर्धक पेयजल की अबाध आपूर्ति हो या निजि विद्यालयों या तकनीकी संस्थानों में दाखिले के समय लगने वाले कैपिटेशन फीस का मामला हो, ऐसे सभी मामलों में न्यायपालिका अब संजीदा है अपने प्रभावी भूमिका एवं दिशा-निर्देशों के माध्यम से व्यापक बदलाव की पृष्ठभूमि तैयार करने हेतु सक्रिय हो चली है। इन्हीं सब कारणों से न्यायिक सक्रियता सम्बन्धी विचारों एवं आयामों का अध्ययन-विश्लेषण अत्यन्त आवश्यक हो चला है, जिससे प्रशासन को न सिर्फ नियंत्रित ही किया जाये अपितु उसे नागरिकोन्मुखी, परिणामान्मुखी, प्रभावी, दर्शी एवं जन उत्तरदायी बनाया जा सके।

अतएव आज यह बीते दिनों की बात हो चली है कि न्यायपालिका को केवल न्यायिक क्षेत्राधिकार के विनिर्दिष्ट क्षेत्राधिकार में ही बँधा होना चाहिए एवं अपने आपको कानून की वैधता एवं अवैधता के सम्बन्ध में केवल इसके निर्वचन पक्ष तक ही सीमित रहना चाहिए। वर्तमान समय में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों एवं परिस्थितियों की मांग को संपूरित किये जाने में प्रजातांत्रिक सरकारों एवं उनके प्रशासकों की भूमिका में क्रान्तिकारी परिवर्तन की माँग को तब तक पूरा नहीं किया जा सकता, जब तक कि सरकार के विभिन्न अंगों द्वारा अपने दायित्वों को उत्तरदायी ढंग से न निभाया जाये। कार्यपालकीय एवं विधायी अंगों द्वारा अपने उत्तरदायित्वों के प्रति दिखाई जा रही उदासीनता की प्रवृति के चलते ही न्यायिक सक्रियता की अवधारणा की लोकप्रियता ही नहीं बढ़ी है अपितु वर्तमान में सामाजिक आर्थिक राजनीतिक न्याय के राज्य के आदर्शों की प्राप्ति की दृष्टि से इन अंगों में पुर्न-सक्रियता पैदा करने हेतु न्यायिक सक्रियता एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन चुकी है।

15.5 न्यायिक सक्रियता विचार के प्रमुख आयाम

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की कार्यप्रणाली ने वर्तमान संदर्भों में कुछ नई समस्याओं को जन्म दिया। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली से कुशलता एवं गुणवत्ता की अपेक्षा करना जनमानस के लिए स्वाभाविक रहता है। जीवन की मूल्यभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा एक सामान्य अपेक्षा कही जायेगी। शासन के विभिन्न अंगों द्वारा अपने दायित्वों के निर्वहन में कहीं न कहीं कमी दिखाई देती रही है। भारत जैसे देश में विभिन्न स्तरों पर शासन नागरिक जीवन से सम्पर्क में रहता है। वह चाहे शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने सम्बंधी कार्य हों अथवा नागरिक सुविधाओं से सम्बंधित कार्य हो। शासन के विभिन्न अंगों का संवैधानिक दायित्व उल्लिखित है।

गत कुछ वर्षों में बहुधा यह देखने में आता रहा है कि शासन के आगे अपने दायित्वों को पूरी तरह से निर्वाइन नहीं कर रहे थे। उदाहरण के लिए स्थानीय निकायों पर नगर में सफाई की व्यवस्था करने आदि का दायित्व रहता है। हम यह भी कह सकते हैं कि नगर निकायों पर नागरिक सुविधाओं को नागरिकों को प्राप्त करने का प्रमुख दायित्व होता है। यह जब नगर में गन्दगी बहुत हो जाती है, सफाई का कार्य ठीक से नहीं हो पाता है तो इससे नागरिक जीवन प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति में कोई भी नागरिक न्यायालय की शरण में जाकर नगर निकाय के विरुद्ध उत्तरदायित्व न निभाने सम्बंधी याचिका दायर कर न्यायालय के हस्तक्षेप के लिये निवेश करता है अब नागरिक की इस याचिका पर अपना निर्णय देकर नगर निकाय को आदेशित करता है!

हम यह भी देखते हैं कि अनेक सामाजिक कुरीतियों पर समाज सेवी लोग अनेक प्रकार से आपत्ति करते है तथा उन्हें रोकने का प्रयास करते हैं। इस प्रयास में न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप भी शामिल रहता है। इसी प्रकार शासन द्वारा अपेक्षित विभिन्न कार्यों में जब सुनवाई नहीं होती है तो ऐसी स्थिति में लोग न्यायालय की शरण में जाकर उससे हस्तक्षेप के लिये याचिका दायर कर देते है। इस तरह के प्रयास इधर बढ़े हैं। कुछ विचारकों ने इसे कार्यपालिका तथा विधायिका के कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप की

संज्ञा दी है और इसे 'न्यायिक सक्रियता' कहा है।

न्यायिक सक्रियता नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही प्रकार की हो सकती है। नकारात्मक दृष्टि से न्यायपालिका विधायिका एवं कार्यपालिका दोनों को बाध्य कर सकती है कि उन्हें क्या करना है और किस सीमा तक। जिसे उन्हें जनहित की दृष्टि से करना चाहिए और ये संस्थाएं कर पाने में असमर्थ हैं। सकारात्मक दृष्टि से न्यायपालिका अपने न्यायिक निर्णयों के माध्यम से यह व्यवस्था देती है कि सरकार उन कार्यों एवं भूमिकाओं को जिन्हें वह निभाने के लिए निर्मित है एवं करने में अनिच्छुक है परन्तु उन्हें कर सकती है उसे अवश्य सम्पादित करे। उदाहरण स्वरूप 18 मार्च 1985 को भारतीय उच्चतम न्यायालय ने 1964 के पूर्व के पेन्शन भोगियों, उनकी विधवाओं एवं उनके आश्रित बच्चों को सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के अनुकूल उनके अधिकारों एवं पेन्शन आदि सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान करने हेतु केन्द्रीय सरकार को दो माह के अन्दर अपना दृष्टिकोण एवं कार्य-मूल्यांकन प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया। उपर्युक्त उदाहरण न्यायपालिका की न्यायिक सक्रियता के सकारात्मक पहलू को उजागर करता है क्योंकि मूलतः यह सरकार का दायित्व था कि उन पेन्शन भोगियों को उनका हक मिले परन्तु कतिपय कारणों से सरकार अपने दायित्व का निर्वहन कर पाने में समर्थ नहीं हो पा रही थी परन्तु न्यायपालिका के हस्तक्षेप के बाद उनकी दशा में व्यापक बदलाव आया।

रूडोल्फ यूकेन ने सक्रियता को 'व्यावहारिक आदर्शवाद' (Practical Idealism) के दर्शन के रूप में स्वीकार किया है और माना है कि यह विभिन्न रूपों एवं आयामों के सन्दर्भ में अनेक देशों में दिखाई पड़ता है। जहाँ तक न्यायिक क्षेत्र का प्रश्न है यह सिद्धान्त अमरीका, भारत एवं अनेक देशों की व्यवस्थाओं में मूल्यवर्धी न्यायिक निर्णयों के रूप में देखा जा सकता है ऐसे में जबकि सरकार की कार्यपालिका शाखा अपने निर्धारित दायित्वों यथा लोक नीतियों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में शिथिलता, अधिकता अथवा असफलता से पीड़ित हो जाती है तो न्यायिक सक्रियता के माध्यम से ही उसे समुचित राह पर लाये जाने का प्रयास किया जाता है। आस्ट्रेलिया के न्यायाधीश माईकेल खौरा मानना है कि न्यायिक निर्णय द्वारा कानून का विनिर्माण सरकार के अन्य रंगों द्वारा अपने दायित्वों के उचित निर्वहन न किये जाने के कारम आने वाली रिक्तता (Vaceum) का सम्पूरित किये जाने से होता है। अन्यथा सामाजिक आवश्यकताओं एवं तात्कालिक परिस्थितियों में कानूनी आवश्यकताओं की रिक्तता से सामाजिक असन्तोष की उग्रता को राहत पहुंचाने के सभी मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं एवं प्रजातांत्रिक सरकारों के समक्ष अपने अस्तित्व को बचाये रख पाने का घोर संकट उठ खड़ा होता है। 'न्यायिक सक्रियता' ऐसे संकट से प्रजातांत्रिक सरकारों को पहुँचाने का व्यावहारिक हल प्रस्तुत करने में मदद पहुँचाती है।

न्यायिक सक्रियता के विचार को हम दो बिन्दुओं के माध्यम से विश्लेषित कर सकते हैं। एक विचार तो यह है कि न्यायिक सक्रियता क्यों आई तथा दूसरा कि क्या यह सामान्य नागरिक के हित में है? यह दो प्रमुख आयाम हैं जिनके पृष्ठभूमि में हम न्यायिक सक्रियता के विचार का अध्ययन कर सकते हैं। जब हम पहले बिन्दु का विश्लेषण करते हैं तो हमें शासन के विभिन्न अंगों के उत्तरदायित्वों तथा उनके प्रभावी अनुपालन का ध्यान करना पड़ता है। चूँकि न्यायिक सक्रियता का विचार अभी नया ही कहा जायेगा इसलिये हमें उन कारणों का तथा इसकी पृष्ठभूमि का भी ध्यान रखना होगा। जब हम उन कारणों की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं तो यह देखना आवश्यक है कि कार्यपालिका तथा विधायिका ने पिछले वर्षों में कहाँ तक अपने दायित्वों को ठीक प्रकार से निभाया है। क्योंकि इसी पर आधारित होगा कि न्यायिक सक्रियता कहा है और क्यों आई।

नागरिक सुविधाओं के साथ-साथ नागरिकों की सुरक्षा में गिरावट अब सामान्यतया देखी जाती है। इन तमाम सुविधाओं को लेकर नागरिक अनेक माध्यमों से अपनी शिकायतें शासन के विभिन्न अंगों तक पहुंचाने का प्रयास करते रहे हैं। समाचार पत्र दूरदर्शन अनेक ऐसा माध्यम है जो नागरिकों की

सुविधाओं, सुरक्षा एवं उनकी समस्याओं को लेकर मत बनाते रहे हैं। इन सबके साथ-साथ नागरिकों ने इन समस्याओं से सम्बंधित जन-हित याचिकायें भी दायर करना आरम्भ कर दिया जो इस बात का प्रमाण बनी कि शासन के कार्यपालिका तथा विधायी अंग अपने दायित्वों के कुशल निर्वहन में कदाचित असफल रहे हैं। जब न्यायालयों ने इन तमाम जनहित याचिकाओं पर सुनवाई कर कार्यपालिका तथा विधायिका को निर्देशित किया तो इसे न्यायिक सक्रियता की संज्ञा प्रदान की जाने लगी। इसके अन्तर्गत प्रमुख विचार यही है कि न्यायालय ने कार्यपालिका को केवल अपने दायित्वों को कुशलतापूर्वक निर्वाह करने की संस्तुति दी। परन्तु इसे कुछ लोगों ने कार्यपालिका के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप कहा। अब एक प्रश्न यहां यह भी है कि यदि कार्यपालिका अपने उत्तरदायित्व को ठीक से न निबाहे और जिससे सामान्य जन-जीवन प्रभावित होता हो तो क्या न्यायपालिका का हस्तक्षेप असंवैधानिक माना जायेगा? संविधान ज्ञाता यह बताते हैं कि संविधान के क्रियान्वयन का औपचारिक दायित्व न्यायपालिका पर ही है और न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) इस बात की ओर संकेत भी करता है। ऐसी स्थिति में न्यायपालिका के हस्तक्षेप तथा न्यायिक सक्रियता को केवल सामयिक आवश्यकता के रूप में देखा जा सकता है। इसका तात्पर्य यह भी है कि यदि कार्यपालिका लोगों की अपेक्षाओं को पूरा करने में किसी सीमा तक सफल होतो जो न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता न होती।

कुछ विचारकों का यह मानना है कि शासन द्वारा अपने दायित्वों एवं कर्त्तव्यों के निर्वहन में कमी के कारण जब उसका प्रभाव जन जीवन पर पड़ने लगा तो इसने न्यायिक सक्रियता को जन्म दिया। इसका प्रमुख कारण यह कहा जा सकता है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में शासन को जन भावनाओं का, उनके उन्नत जीवन का ध्यान रखना पड़ता है। जो सरकारें उनकी उपेक्षा करती हैं उन्हें इसका परिणाम भुगतना पड़ता है जो कई प्रकार से आता है जिसमें से एक न्यायिक सक्रियता भी है। अतः न्यायिक सक्रियता के मूल में जनहित को सुनिश्चित करना कहा जा सकता है। यद्यपि कुछ राजवेत्ता इसे कार्यपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप कहते हैं, परनतु यह हस्तक्षेप कार्यपालिका द्वारा अपने दायित्वों की अनदेखी के कारण ही आता है, ऐसी स्थिति में हम न्यायिक सक्रियता के सामान्य नागरिकों के हितों की रक्षा के रूप में देखते हैं। यदि यह हस्तक्षेप भी है तो नागरिक हितों के लिए ही कहा जाता है जिसे हम लोकतांत्रिक शासन प्रक्रिया के अनुकूल कह सकते हैं।

15.6 न्यायिक सक्रियता का मूल्यांकन

लोकतांत्रिक शासन प्रक्रिया मूलतः शक्तियों के विभाजन सिद्धान्त पर आधारित होती है। इसका एक तात्पर्य हम यह भी लगा सकते हैं कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत सत्ता किसी एक व्यक्ति अथवा एक अंग में केन्द्रित नहीं होनी चाहिए। लोकहित को ध्यान में रखते हुए शक्ति शासन के तीनों अंगों में विवेकपूर्ण ढंग से विभाजित हो जिससे कोई भी अंग मनमाने से सत्ता का प्रयोग कर निरंकुश न हो जाय। अतः जिन विचारकों ने न्यायिक सक्रियता की आलोचना के बिन्दु प्रस्तुत किये हैं उनमें प्रमुख रूप से इसी सिद्धान्त को आधार बताया है। न्यायिक सक्रियता एवं ऐसी मानसिकता से ग्रसित लगती है कि पूरी शासन प्रणाली में न्यायपालिका ही अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सचेत है तथा उसे ठीक ढंग से निभा रही है। शेष दोनों अंग अपने दायित्वों को लेकर गम्भीर प्रतीत नहीं होते। न्यायपालिका शासन के अन्य अंगों पर अपना वर्चस्व भी स्थापित करना चाहती है इसी कारण शासन के अन्य अंगों की कमियों को उजागर कर अपने निर्णयों से उनमें सुधार का मार्ग प्रशस्त करने की बात करते हैं। आलोचकों का यह मानना है कि लोकतंत्र में शासन प्रक्रिया ऐसी होती है जिसमें सभी अंगों की भागीदारी होती है। सत्ता का विवेकपूर्ण क्रियान्वयन आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति में किसी एक अंग का अधिक सक्रिय होना तथा दूसरे अंगों में कमियाँ डालना, आलोचना का कारण बनता है।

न्यायिक सक्रियता को 'न्यायिक तानाशाही' शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन करने वाले विद्वान विलियम जे०क्विर्क ने माना कि सरकार के तीनों अंगों में संवैधानिक नियंत्रण एवं संतुलन ही प्रजातांत्रिक सरकारों का आधार है। शेष दो अंगों की क्रिया को वैयक्तिक या सामूहिक न्यायिक निर्णयों पर छोड़ना एक ऐसी स्थिति का निर्माण करेगा जिसमें न्यायिक 'निरंकुशता' (Tyranmy of Judiciary) की ओर प्रजातांत्रिक व्यवस्था के जाने का खतरा सदैव उपस्थित रहता है। इस स्थिति से बचने के लिए दूसरे अन्य आधारों का भी उल्लेख किया जाना आवश्यक है। ये बिन्दु निम्नवत हैं।

(1) प्रथम, न्यायपालिकाएँ अपने ही न्यायिक कार्यों के अतिभार से दबी हुई है। सर्वोच्च न्यायालय से लेकर निचली अदालतों तक हजारों-लाखों में नहीं अपितु करोड़ों में बाद लम्बित है। अनेक पीढ़ियों न्याय की बाट जोहते गुजर चुकी हैं, आगे भी वर्तमान या भावी पीढ़ियाँ न्याय प्राप्त कर सकेंगी, इस पर प्रश्न चिह्न लगा है। ऐसे में न्यायालय अपने दायित्वों को छोड़कर सरकार के अन्य अंगों के उत्तरदायित्वों का निर्वहन किस सीमा तक ईमानदारी से कर पायेगा, यह आलोचना का विषय है।

(2) दूसरे, न्यायिक सक्रियता का सर्वाधिक प्रबल उदाहरण कार्यपालिका क्षेत्र में उसके द्वारा प्रशासन को क्रियाशील एवं प्रभावी बनाये जाने के विशेष सन्दर्भ में दिया जाता एवं इसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता के ऊपर बल दिये जाने है। परन्तु कार्यपालिका को निर्देशन, नियंत्रण, पर्यवेक्षण के क्रिया क्षेत्र में न्यायिक हस्तक्षेप परा-संवैधानिक (Extra-contitutional) सत्ता का विकास है जिसमें सरकार के चुने हुए प्रतिनिधियों को वैयक्तिक न्यायाधीशों के विवेक एवं अविवेकपूर्ण फैसलों पर छोड़ दिया जाना प्रजातांत्रिक मूल्यों एवं लोकहित की सुरक्षा कर पाने में कितना सफल सिद्ध होगा, यह भी आलोचना का व्यापक बिन्दु है।

(3) तीसरे, न्यायपालिका का विधायी नीति-निर्माण एवं उद्यमी प्रशासन के सुसंचालन की दृष्टि से उन क्षेत्रों में किया जाने वाले घुसपैठ को प्रजातांत्रिक प्रक्रिया एवं संवैधानिक सरकार के ऊपर एक प्रहार के रूप में देखा जा रहा है। आलोचकों का मानना है कि न्यायपालिका के पास विकासशील राज्यों की आवश्यकताओं के अम्बार, इसके विशाल क्षेत्र की व्यापकता एवं जनसंख्या अतिभार इससे उपजने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए न तो आवश्यक मशीनरी और न ही इतना कार्मिक वर्ग होता है जिससे वह इन समस्याओं का निदान व्यावहारिक स्तर पर स्वयं कर सके।

(4) चौथे, न्यायिक सक्रियता की आलोचना इस आधार पर भी किया जाता है कि यदि न्यायपालिका दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में अपने आपको उलझा लेगी तो कार्यपालिका अथवा विधायिका द्वारा किये जाने वाले असंवैधानिक कृत्यों पर रोक लगाये जाने के लिये आमजन किसके पास जायेगा क्योंकि न्यायपालिका के पास इतने वाद लम्बित हैं कि नया समस्याओं कब कितने समय पश्चात् न्यायिक सूची में स्थान पायेंगी, यह एक बड़ा यक्ष प्रश्न है। फिर न्यायपालिका द्वारा कोई गलत कार्य नहीं किया जाता, वे सभी ईमानदारी एवं लगन से कार्य करने वाले ही हैं, इसकी कोई गारण्टी नहीं है। न्यायिक सक्रियता इसका निदान दे ही देवे यह कदापि व्यावहारिक हल नहीं प्रतीत होता, यह एक विकल्प प्रस्तुत अवश्य करता है, वह भी सीमित अर्थों में।

(5) पाँचवें, न्यायपालिका अपने दिशा-निर्देशों के लागू किये जाने के लिए कार्यपालिका के ऊपर निर्भर रहती है। सामान्यतया यह देखा गया है कि सर्वोच्च न्यायिक पीठ द्वारा दिये गये अनेक दिशा-निर्देशों के क्रियान्वयन में प्रसासन जाने-अनजाने अनावश्यक विलम्ब या लापरवाही बरतता है। अब न्यायपालिका की प्रशासन पर यह निर्भरता न्यायपालिका की सीमा को इंगित करता है, जिसे विद्वान शासन के नियंत्रण एवं सन्तुलन के आधार पर उचित ठहराते हैं। इसमें शक्ति का झुकाव किसी एक पलड़े को भारी और दूसरे को हल्का कर देता है जिससे संवैधानिक सरकारों की स्थापना का लक्ष्य दुष्प्रभावित हो जाता है। न्यायिक सक्रियता की अवधारणा का इसी आधार पर आलोचना किया जाता है कि इससे न्यायपालिका की प्रभुता एवं आतंक कायम हो जाने का खतरा संभाव्य रहता है।

इस प्रकार न्यायिक सक्रियता की आलोचना में मुख्य बात सत्ता के बंटवारे के सिद्धान्त को ही आधार मान कर होता है। शासन प्रक्रिया में सभी अंगों की अपनी भूमिका है और सभी महत्वपूर्ण मानी जाती है। ऐसे में जब एक अंग अधिक प्रभावी होता है या अधिक सक्रिय होता है तो आलोचना होती है।

इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि न्यायिक सक्रियता की अवधारणा नितान्त सारहीन एवं अनावश्यक है। वर्तमान समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शासन-प्रशासन का भूमिका का बदलते सामाजिक–आर्थिक परिवेश में अध्ययन से इसकी सार्थकता एवं उपयोगिता पर प्रकाश पड़ता है। साथ ही यह तथ्य भी उजागर होता है कि यदि न्यायपालिका अपनी परम्परागत भूमिका तक ही सिमटी रहती तो जनाकांक्षाओं की बलि प्रशासनिक 'नौकरशाही प्रवृत्ति' की विलम्बकारी एवं लकीर की फकीर तथा उचित प्रक्रिया की सोपानात्मक व्यवस्था अथवा प्रशासनिक उदासीनता की प्रवृत्ति के द्वारा लगातार जारी रहती। जनतन्त्र भीड़तंत्र का पर्याय बन अराजक अवस्था का शिकार बना रहता। विधायिकाएँ समयाभाव एवं नैतिक संकट के दौर से गुजरने के कारण कार्यपालिका एवं प्रशासन पर अपना प्रभावी नियंत्रण बनाये रख पाने में असमर्थता की सूचक एक प्रतीक मात्र दिखाई देती प्रतीत होतीं और विधायी नियंत्रण के अभाव में प्रशासन अनुत्तरदायी एवं निष्प्रभावी बन जाने की दिशा में अग्रसर हो जाता। न्यायिक सक्रियता से प्रशासन में उदासीनता एवं लापरवाही से बचने एवं जन उत्तरदायित्वों को पूरा करने के प्रति तत्परता एवं लगन का उत्साह अवश्य दिखाई पड़ने लगा है जो न्यायिक सक्रियता के सकारात्मक प्रभाव का सूचक है। परन्तु इस सक्रियता की भी अपनी एक सीमा है जिसका अतिलंघन राजनीतिक एवं प्रशासनिक संरचना एवं व्यवस्था में नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न कर देता है। अतएव न्यायिक सक्रियता एक साधन के रूप में जहां अपनी आवश्यकता एवं उपादेयता बनाये रखने में सफल है वहीं लक्ष्य के रूप में बदल जाने पर न्यायपालिका में अनेक दोष एवं कमियाँ पैदा कर देता है–न्यायिक निरंकुशता की दिशा में अग्रसर हो जाता है। जो प्रजातंत्र एवं जनहित दोनों ही दृष्टियों से अनपेक्षित है।

15.7 सारांश

इस अध्याय में हमने मुख्य रूप से दो विचार-बिन्दुओं का अध्ययन किया। पहला प्रशासन पर नियंत्रण से सम्बन्धित विषय-वस्तु क्षेत्र (Issue areas) से जुड़ा हुआ था तथा दूसरा न्यायिक सक्रियता से। यह दोनों ही विचार बिन्दु बहुत महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं क्योंकि लोकतांत्रिक शासन पद्धति में इन दोनों प्रकार के विचारों का विशिष्ट स्थान है। पहले के अन्तर्गत हमने उन विचार बिन्दुओं का अध्ययन किया जो वर्तमान परिवेश में प्रशासन पर नियंत्रण के लिये आवश्यक समझे जाते हैं। जो समस्यायें हैं उनका विश्लेषण किया। इसके अतिरिक्त उनसे सम्बंधित आलोचनात्मक पहलू भी देखे। दूसरा विषय न्यायिक सक्रियता से सम्बन्धित रहा जिसका हमने अध्ययन किया। इसके अन्तर्गत हमने न्यायिक सक्रियता विचार से जुड़े अनेक बिन्दुओं का विश्लेषण किया तथा इसके पनपने के कारणों पर ध्यान दिया गया। इसके अतिरिक्त न्यायिक सक्रियता के आलोचनात्मक पहलुओं का भी अध्ययन किया गया। इस प्रकार इस अध्याय में हमने प्रशासन पर नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र एवं न्यायिक सक्रियता के सम्बंध में संक्षिप्त ज्ञान प्राप्त किया।

15.8 उपयोगी पुस्तकें

1. Laski, Harold J., Parliamentary Government in England, Allans Union. London, 1952.

2. Nathan Glazer and Irwin Kristol, the Americal Common wealth, New York, 1976. 'Towards an Imperial Judiciary?'

3. B.B. Iyer, The Court Rules, Pioner, Lucknow, 23 January, 1996.

4. William J. Quirk, Judicial Dictatorship, Reprinted by permision from Society, by tranction Publishers, New Brunwick, NJ, January/February, 1994.

5. Paul Hollander, Decline and Disconitent, New Brunswick, N.J.: Transaction Publisher, 1992.

6. Rober f. Nagel, Constitutional Culturver, Berkeley, Califormia University of California Press, 1989.

7. William L. RanJom, Majoritu rule and Judiciary, New York, Saharbs Scribner's Sons, 1912.

8. Sangeeta Ahuja, 'People, Law and Justice, Orient Longman, 1997.

9. Shrish Mani Tripathi, the Human Face of Mr Supreme Court of India, Ganga Kaveri Publishing House, Varanasi, 1993.

10. Nilangana Jain, The problem of Justice is Political Theory and State Practice, Anamika Publishers, N. Delhi, 2005.

15.8 सम्बंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रशासन पर नियंत्रण के विषय वस्तु क्षेत्र के अध्ययन के महत्व को समझाइये।
2. प्रशासन पर नियंत्रण के विषय-वस्तु क्षेत्र विचार की आलोचना कीजिए।
3. न्यायिक सक्रियता के महत्व की व्याख्या कीजिए।
4. न्यायिक सक्रियता के आलोचनात्मक पक्ष की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रशासन पर नियंत्रण के विषय वस्तु क्षेत्र (Issue Area) में से एक की व्याख्या कीजिए।
2. प्रशासन पर नियंत्रण के विषय वस्तु क्षेत्र की आलोचना का एक प्रमुख बिन्दु विश्लेषित कीजिए।
3. न्यायिक सक्रियता को स्पष्ट कीजिए।
4. न्यायिक सक्रियता विचार में किसी एक कमी की व्याख्या कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मिश्र में से कौन प्रशासन पर नियंत्रण के विषय-वस्तुओं से सम्बंधित नहीं है?

   (अ) विधायी

   (ब) प्रशासनिक

   (स) न्यायिक

   (द) सामाजिक

2. प्रशासन पर नियंत्रण न होने से निम्न में से किस पर अधिक प्रभाव पड़ता है?

   (अ) विधायिका पर

   (ब) समाज पर

   (स) प्रशासन पर

   (द) न्यायपालिका पर

3. न्यायिक सक्रियता सम्बन्धित है–

   (अ) प्रशासन पर नियंत्रण से

   (ब) प्रशासनिक सुधार से

   (स) सामाजिक नियंत्रण से

   (द) विधायिका पर नियंत्रण से

4. न्यायिक सक्रियता आवश्यक हो जाती है क्योंकि इससे–

   (अ) विधा प्रसन्न रहते हैं।

   (ब) कुशलता कम होती है।

   (स) प्रशासन उत्तरदायी हो जाता है।

   (द) भ्रष्टाचार बढ़ता है।

15.9 प्रश्नोत्तर

1 (द)

2. (ब)

3. (ब)

4 (स)